निराला का परवर्ती काव्य

परम श्रद्धेय डा० क० मा० मुन्शी
(कुलपति, भारतीय विद्याभवन)
को
सादर एवं सविनय

रमेशचंद्र मेहरा

य दस रुपये

प्रकाशक :
अनुसन्धान-प्रकाशन
८७/२५६, आचार्यनगर, कानपुर
प्रकाशन तिथि :
६ मार्च, १९६३
मुद्रक :
अनुपम प्रेस, चन्द्रिकादेवी रोड, कानपुर

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी
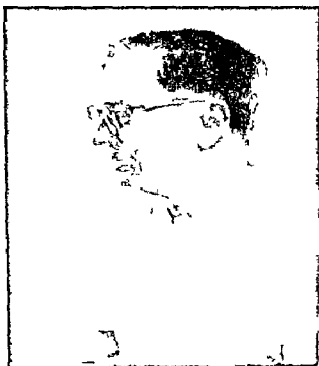
समर्पण

अपने गुरुदेव, पूज्य पण्डितजी
को
जिनकी स्नेह-छाया में मेरी
साहित्य-चेतना को अभिनव
प्रकाश मिला है

शुभाशंसा

निराला के परवर्ती काव्य पर लिखे गए अपने प्रिय छात्र श्री रमेशचंद्र मेहता के प्रबंध को पुस्तक रूप में प्रकाशित होते देख कर मुझे विशेष प्रसन्नता हो रही है। श्री मेहता ने यह प्रबंध एम.ए. परीक्षा के लिए मेरे ही निरीक्षण-निर्देशन में तैयार किया था। उस समय जिस तत्परता, अध्यवसायशीलता, सूक्ष्म-संपन्नता और विवेचनक्षमता का परिचय रमेशचंद्र ने दिया था, उससे आकृष्ट होकर मैंने इस प्रबंध के निर्माण में व्यक्तिगत अभिरुचि दिखाई थी और निराला के जीवन और व्यक्तित्व से संबंधित अनेक संस्मरण प्रबंध-लेखक को सुनाए थे, जिनका उपयोग इस प्रबंध में यथास्थान किया गया है। निराला के परवर्ती काव्य की प्रेरक परिस्थितियों और विकास-गतियों का प्रत्यक्ष परिचय भी मौखिक रूप से प्रबंधकर्ता को मुझसे ही प्राप्त हुआ था, जिसे अन्य साक्ष्य का आधार लिए बिना ही, इस प्रबंध में स्थान दिया गया है। इस प्रकार इस प्रबंध में सहायक साक्ष्य के स्थान पर प्रत्यक्ष साक्ष्य का योग हो सका है, जिससे प्रबंध-लेखन में एक ऐसी रोचकता आ सकी है, जो इस प्रक्रिया से ही संभव थी। निराला के परवर्ती काव्य की सीमा-रेखा और उसकी आरंभिक रचना तिथि का निर्देश प्रबंध-लेखक ने बड़ी खोजबीन और साहित्यिक विवेक के साथ किया है, जो निराला-काव्य के अध्ययन में एक उल्लेखनीय स्थापना है। पूर्ववर्ती काव्य से परवर्ती काव्य का संबंध निर्धारित करते हुए श्री रमेशचन्द्र ने जिन तर्कों का आधार लेकर परवर्ती काव्य को भी स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा का ही एक अंग सिद्ध किया है, वे भी विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं। शैली और स्थापत्य भेदों के रहते हुए भी, निराला के पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य में जीवनदृष्टि का अंतर नहीं है, यह स्थापना भी नवीन और विचारोत्तेजक है। इस प्रकार इस संपूर्ण प्रबंध के

प्राक्कथन

प्रस्तुत प्रबंध सागर विश्वविद्यालय के एम० ए० द्वितीय वर्ष (हिन्दी) के वैकल्पिक-प्रश्न-पत्र के उत्तर के रूप मे लिखा गया है। इस विषय का निर्वाचन मेरे गुरुदेव आचार्य वाजपेयीजी द्वारा मेरे लिए किया गया था और उन्हीं के निरीक्षण मे इसका वर्तमान रूप निर्मित हुआ है। पंडित वाजपेयीजी आधुनिक साहित्य के विशिष्ट और मर्मज्ञ विद्वान तो है ही, निराला-साहित्य के तो वे अन्यतम विशेषज्ञ हैं। अतएव उनके निर्देशन मे इस प्रबन्ध का लिखा जाना, प्रबन्ध-लेखक के लिये सौभाग्य की बात रही है। निरालाजी के साथ अपने व्यक्तिगत संपर्कों के कारण इस प्रबन्ध की बहुत सी सामग्री उनके निजी वक्तव्यो के आधार पर प्रस्तुत की गई है। इसके लिये किसी अन्य साक्ष्य का निर्देश इसलिए नही किया गया कि पंडितजी स्वय ही सबसे प्रधान साक्ष्य हैं। उनके निजी वक्तव्यो के बल पर अनेक तिथियो और घटनाओ का निर्धारण इस प्रबन्ध मे किया गया है। उक्त समस्त सामग्री के लिए प्रबन्ध-विद्यार्थी उनका कृतज्ञ है।

अध्यायो का वर्गीकरण और निर्धारण पंडितजी के द्वारा स्वय किया गया है। प्रथम अध्याय मे विषय की स्थापना की गई है। निराला के परवर्ती काव्य के अध्ययन की सार्थकता क्या है, यह प्रदर्शित किया गया है। इस प्रबन्ध मे उस साहित्यिक सिद्धात को आधार माना गया है, जो साहित्य का अध्ययन देश और काल की सापेक्षता मे करने का समर्थक है। इस अध्याय मे निराला के परवर्ती काव्य की आरम्भिक तिथि का, उनकी एक विशिष्ट कविता के आधार पर निरूपण किया गया है।

द्वितीय अध्याय मे निराला-काव्य का क्रम-विकास दिखाते हुए पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य की मुख्य भिन्नताएँ प्रस्तुत की गई हैं। विचारधारा और जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण के अन्तर के साथ विषयवस्तु और शैली मे आने वाले परिवर्तन का स्वरूप-निर्देश किया गया है। साथ ही यह भी स्पष्ट किया गया है कि इन समस्त परिवर्तनो के बावजूद निराला की मूल जीवन-दृष्टि मे एकरूपता बनी रही है।

तीसरे अध्याय मे परवर्ती काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियो पर प्रकाश डाला गया है। हास्य, व्यग और विनोद निराला के परवर्ती काव्य की एक मुख्य प्रवृत्ति है। इसके साथ ही विनय, आत्मनिवेदन और प्रार्थनापरक भावना उनकी दूसरी प्रमुख विशेषता है। इन परस्पर-विरोधी प्रतीत होने वाली प्रवृत्तियो का पारस्परिक सम्बन्ध

अनेकानेक मौलिक विचार, वस्तुनिर्देश और निरूपण आए हैं जिनसे लेखक की साहित्यिक अध्ययनशीलता और विवेक-बुद्धि का परिचय मिलता है। पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य के तुलनात्मक साहित्यिक उत्कर्ष के संबंध में श्री रामेश्वरजी ने अधिक नहीं लिखा, इस प्रश्न को यह कह कर टाल दिया है कि यह कार्य विद्वानों का है, विद्यार्थियों का नहीं। फिर भी कुछ चुने हुए वाक्यों में इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर भी कुछ विचार व्यक्त किए गए हैं जिन्हें आगे चल कर पल्लवित किया जा सकता है। विशेष प्रसन्नता की बात यह है कि इस प्रबन्ध के लिखने और प्रथम श्रेणी में एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् श्री रामेश्वर मेहता ने निराला की जीवनी और उनके सम्पूर्ण काव्य पर पी-एच० डी० का शोधप्रबन्ध लिखना भी प्रारंभ कर दिया है। आशा की जा सकती है कि यह शोधप्रबन्ध लेखक की प्रौढ़ होती हुई विवेचना-शक्ति और अधिकाधिक विस्तृत होती हुई अध्ययनशीलता के परिणाम-स्वरूप हिन्दी के साहित्यिक अध्ययनों में एक नवीनतर और उच्चतर पुलिन का निर्देशक बन सकेगा। हमें यह भी आशा है कि निराला के परवर्ती काव्य पर लिखा गया यह विवेचनात्मक प्रबन्ध हिन्दी के साहित्यिक पाठकों के बीच उचित मात्रा में लोकप्रिय और समादृत हो सकेगा।

नन्ददुलारे वाजपेयी

सागर,
१.९.६२
नवम्बर

अंतिम एकादश अध्याय मे निराला के परवर्ती काव्य का मूल्य और महत्व प्रतिपादित किया गया है। इसी प्रसंग मे निराला के परवर्ती काव्य की वाद-भूमिका का निरूपण करते हुए हमने उनके परवर्ती काव्य-निर्माण को स्वच्छंदतावादी ही माना है। उनके विविध काव्य-रूपों पर प्रकाश डालते हुए हमने उन्हे प्रगीत-काव्य के स्रष्टा की मुख्य भूमिका दी है; यद्यपि उनकी काव्य-रचना मे वीर-गीत या 'बैलेड'-काव्य की मौलिक स्थितियाँ भी मिलती है। अंततः आधुनिक विश्व-काव्य में निराला-काव्य की स्थिति पर विचार किया गया है और उन्हे मूलतः मानवतावादी स्रष्टा या कवि बताया गया है। निष्कर्ष मे हमने आचार्य वाजपेयीजी के हाल के वक्तव्य के अनुसार निराला को 'शताब्दी का कवि' कहकर और उन्हे युग-प्रतिनिधि काव्य-स्रष्टा मानकर अपनी अभ्यर्थना प्रस्तुत की है।

अत्यंत खेदपूर्वक कहना पडता है कि जिस कवि के काव्य पर उसकी जीवितावस्था मे इस प्रबन्ध का लेखन आरम्भ किया गया था, प्रबन्ध समाप्त होने के पूर्व ही उसका आकस्मिक निधन हो गया। हिन्दी-काव्य का एक अन्यतम आलोक शिखर सहसा निर्वापित हो गया। जिस कवि के काव्य-विवेचन मे हमने आरम्भ मे वर्तमानकालिक क्रिया का प्रयोग किया था, प्रबन्ध के अतिम अध्यायो मे उसी के लिये भूतकालिक क्रिया का प्रयोग करना पड़ा है; यह हमारा दुर्भाग्य और हमारी विवशता रही है। परन्तु सतोष इतना ही है कि इस प्रबन्ध के व्याज से हम अपने युग के एक महान कवि और कलाकार के प्रति अपनी साहित्यिक श्रद्धाजलि अर्पित कर सके हैं। यह कहना तो सर्वथा अनुचित होगा कि अपने प्रबन्ध द्वारा हम निराला के परवर्ती काव्य के समस्त सौंदर्य और विशेषताओं का उद्घाटन कर सके हैं; पर आचार्य वाजपेयीजी के अभिभावकत्व में हमने उन्ही के निर्देशानुसार जो कुछ सोचने, समझने और लिखने का प्रयत्न किया है, वह इस प्रबन्ध के रूप में विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत है। इसके गुण-दोष का निर्णय वे ही कर सकते हैं।

इस प्रबन्ध के परिशिष्ट भाग मे हमने निराला के परवर्ती काव्य की समस्त रचनाओं का, जो पुस्तकाकार प्रकाशित हुई हैं, यथासभव तिथिक्रम से, विषय-विभाजन किया है और भिन्न-भिन्न वर्गों मे रखकर उन्हे प्रस्तुत किया है, जिससे एक ही दृष्टि मे निराला की समस्त परवर्ती रचनाओ को देखा जा सके। प्रत्येक कविता के साथ दिये गये अक सम्बन्धित पुस्तक मे उस विशेष कविता के अनुक्रम के सूचक हैं। आशा है, इससे निराला-काव्य के विद्यार्थियो और अनुसधायको को कुछ-न-कुछ सहायता मिलेगी और हमारा श्रम सफल होगा। प्रबन्धान्त मे हमने सहायक ग्रंथो की समग्र सूची दी है, जिसमे निराला की समस्त काव्य-पुस्तको के अतिरिक्त हिन्दी और अंग्रेजी के सहायक ग्रथो का नाम-निर्देश किया है। इन सहायक पुस्तको के लेखको के प्रति प्रबन्ध-लेखक अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता है। साथ ही सागर

विश्वविद्यालय के केन्द्रीय और विभागीय पुस्तकालयों तथा पंडितजी के निजी पुस्तकालय से निर्बाध रूप में प्राप्त पाठ्य-सामग्री के लिये लेखक विश्वविद्यालय के अधिकारियों तथा श्रद्धेय पंडितजी के प्रति अपना आभार प्रकट करता है।

हिन्दी-विभाग
सागर विश्वविद्यालय
सागर

रमेशचंद्र मेहरा

विषय-सूची

पृ० सं०

१

विषय प्रवेश

पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य
विभाजन का औचित्य और सार्थकता

❶ साहित्यिक अध्ययन के दो आदर्श

यों तो प्रत्येक कवि की प्रत्येक काव्य-रचना अपने मे स्वतन्त्र होती है और उसका स्वतन्त्र रीति से पाठ भी किया जाता है। कविता के तत्व उसमे रहते हैं और उसका आनन्द भी पाठको को मिलता है। इस दृष्टि से देखने पर किसी कवि की पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य-रचना का विभाजन करना और उनमे से किसी एक को स्वतन्त्र अध्ययन का विषय बनाना बहुत उचित नही कहा जा सकता। काव्य,काव्य है और समय या रचना-तिथि की दृष्टि से उसका अध्ययन करने से उसके प्रभाव मे कोई अन्तर नही आता। समीक्षको का एक वर्ग यह आग्रह करता आया है कि कविता या साहित्य का अध्ययन, कविता और साहित्य के रूप मे ही होना चाहिये। इस अध्ययन मे किसी अपर वस्तु का योग उचित नही है क्योकि अपर वस्तु के मिलाने से कविता के अध्ययन मे कोई लाभ नही हो सकता, उसके आस्वाद मे कमी ही आ सकती है। कविता तो कविता, उपन्यासो के अध्ययन मे भी ई० एम० फार्स्टर ने युगो मे विभाजित कर उपन्यासिक कृतियो के अध्ययन का निषेध ही किया है।[1] उसका मत यह है कि विभिन्न युगो मे लिखे गये उपन्यास अतत उपन्यास ही है। मानव-जीवन के अनुभूत अशो का, परिस्थितियो का, आलेख प्रत्येक उपन्यास मे रहता है। हमे किसी विशेष कृति की साहित्यिक विशिष्टता की जानकारी इस बात से नही होती कि वह एक

1 We can not consider fiction by periods, we must not contemplate the stream of time. Another image better suits our powers · that of all the novelists writing their novels at once. They come from different ages and ranks, they have different temperaments and aims, but they all hold pens in their hands and are in the process of creation.

—E. M. Forster : Aspects of the Novel-Introductory, P. 17

विशेष समय मे लिखी गई थी, वल्कि इस बात से होती है कि उसमे मानव-जीवन की विभिन्न दशाओ का आलेखन कितनी सच्चाइयो और गहराइयो से हुआ है। जो बात ई० एम० फार्स्टर ने उपन्यासो के सम्बन्ध मे लिखी है वह कविता के सम्बन्ध मे और भी चरितार्थ होती है, क्योकि उपन्यास मे तो थोडी इतिवृत्तात्मकता, थोडा देश काल का प्रभाव रह सकता है, पर काव्य तो विशुद्ध रूप से कवि की भाव-स्थिति का ही उद्घाटन है। अतएव काव्य का अध्ययन समय की भूमिका पर करना फलप्रद नही हो सकता।

यह काव्य और साहित्य के विवेचन की एक दृष्टि है जिसमे प्रत्येक रचना को स्वतन्त्र और आत्मसपूर्ण मानकर उसके स्वतन्त्र आस्वादन का लक्ष्य रखा जाता है। हम यह मान लेते हैं कि इस दृष्टि का अपना स्वतन्त्र स्थान और मूल्य है, परन्तु हम देखते हैं कि आज के साहित्यिक अध्ययन मे कवियो और लेखको के क्रमिक मानसिक विकास या ह्रास के विवरण दिये जाते हैं और उनके आधार पर उस कवि या लेखक की कला का समग्र मूल्य आका जाता है। इसके साथ ही देश और काल की बदलती हुई स्थितियो का प्रभाव भी साहित्यिक रचनाकारो पर पडता है जिसके कारण वे रचनाएँ नया-नया आकार ग्रहण करती हैं। पुरानी साहित्यिक परम्परा का कालगत प्रभाव भी नये साहित्य-स्रष्टाओ पर पडता है, इसीलिये साहित्यिक परम्पराओ का अध्ययन भी किया जाता है। इस प्रकार का अध्ययन निरर्थक नही कहा जा सकता। साहित्य के इतिहास-लेखक विभिन्न युगो के साहित्यिको का उल्लेख, युग के परिवेश मे करते हैं और इस आधार पर कुछ निष्कर्ष भी निकालते हैं। वर्तमान समय मे तो साहित्य के सामाजिक और आर्थिक आधारो की भी द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के स्तर पर चर्चा की जाती है, और उसी भूमिका पर किसी कृति की प्रगतिशीलता या अप्रगतिशीलता परखी जाती है। साहित्यिक मूल्यो के निर्धारण मे इस प्रकार के पैमाने भी अपनी स्थिति रखते हैं। साहित्य या काव्य को सामाजिक और युगगत परिवर्तन के साथ-साथ देखने का यह दृष्टिकोण बहुप्रचलित भी है।

हमारी दृष्टि मे उपरिलिखित दोनो साहित्यिक आदर्श एक दूसरे से भिन्न तो हैं, पर परस्पर विरोधी नही कहे जा सकते। हम तो यह भी कह सकते हैं कि इन दोनों को मिलाकर चलने से किसी काव्य-रचना का सौन्दर्य, किसी कलाकार का वैशिष्ट्य और भी स्पष्टत और समग्रता से आकलित हो सकता है। ई० एम० फार्स्टर ने इतना तो स्वीकार ही किया है कि साहित्य मे मूलतत्व नहीं बदलते पर कला निर्माण की शैलिया और पद्धतियां बदलती है।[1] फिर युग मे किस प्रकार का

1 Apart from schools and influences and fashions, there has been a technique in English fiction, and this does alter from generation to generation

—E M. Forster : Aspects of the Novel, Introductory, P. 24

लोक-व्यवहार रहा है और उसके अनुसार लेखकों की निर्माणशैली कौन-कौन से नये रूप धारण करती है, यह अध्ययन तो उसी समय हो सकता है। यह ठीक है कि देश और काल की सापेक्षिक भूमिकाओं पर काव्य का अनुशीलन करने पर बहुत सी नई बातें ज्ञात हो सकती हैं, जिनका उपयोग हम विशुद्ध साहित्यिक विवेचन में कर सकते और इस प्रकार कृति के आस्वाद को और भी सजग बना सकते हैं। परन्तु उसके लिये अधिक विस्तृत अध्ययन और स्मृति-शक्ति की आवश्यकता है। बिना इसके हम इस प्रकार के विवेचन में बहुत दूर तक आगे नहीं जा सकते।

किसी कवि की आरंभिक रचनाओं से आगे बढ़कर उसकी प्रौढ़ रचनाओं तक पहुंचना भी तुलना का ही कार्य है। इसी प्रकार एक ही युग के दो या अधिक कवियों का अनुशीलन भी तुलनात्मक भूमिका पर ही हो सकता है। जब हम किसी पूर्व-युग की कृति से किसी परवर्ती युग की कृति का अन्तर देखने बैठते हैं, तब अन्य तत्वों के साथ देश और काल के बदलते हुये तत्व हमारे सामने आ ही जाते हैं। इससे साहित्यिक इतिहास के निर्माण में, तुलनात्मक विवेचन में, परम्परागत शैलियों और जीवन-व्यवहारों की अभिज्ञता में, सहायता तो मिलती ही है, विशुद्ध साहित्यिक सौन्दर्य की परख में भी योग प्राप्त होता है।

(ख) कालगत अध्ययन की उपयोगिता

कभी-कभी ऐसे कवियों का काव्याध्ययन भी हमें करना पड़ता है, जो आरंभ में कुछ बहुत सुन्दर कृतियाँ दे जाते है, पर कुछ ही वर्षों में उनके काव्य में क्षीणता आने लगती है। कभी उपदेशात्मकता और कभी कृत्रिम नैतिकता का आक्रमण होने लगता है। कभी अकालवृद्धता दिखाई देने लगती है। यह सब विकार तभी अच्छी तरह जाने और परखे जा सकते है, जब हमें कवि की जीवनी का निकट से ज्ञान हो। यों किसी श्रेष्ठ भावक को तो कविता पढ़ते ही उसकी गहराइयों का अथवा हलकेपन का आभास मिल जाता है, पर इस गहराई या हलकेपन का कारण क्या है? कवि के व्यक्तित्व में कौन से मोड़ कब आये हैं? इनका परिचय मिलने पर श्रेष्ठ भावक को भी अधिक स्पष्ट और निर्भ्रान्त अभिज्ञता होती है, किन्तु सामान्य भावक के लिये तो इन बाह्य स्थितियों और परिचालक शक्तियों का जानना किसी कवि के अध्ययन में अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। भय यह नहीं है कि इन बातों की जानकारी से कविता के मूल प्रभावों के अध्ययन में बाधा पड़ेगी। भय यह है कि इस जानकारी के बिना कम-से-कम सामान्य पाठकों को, उस कविता के मूल प्रभाव का अभिज्ञान ही न होगा।

कवि अनेक प्रकार के होते हैं। बहुत थोड़े कवियों की काव्य-रचना आदि से अंत तक एक सी विकासमान रहती है। अधिकतर कवि असमान भूमिका पर काव्य-रचना करते हैं। उनकी कुछ कविताएँ बहुत सुन्दर और कुछ अतिशय सामान्य होती

हैं। कुछ कवियो की काव्य-रचना के प्रथम छद से ही श्रेष्ठ कविता प्रस्तुत होती है। कुछ अन्य कवियो के मध्यकाल मे प्रौढतम रचनाएँ उत्पन्न होती है तथा कुछ कवियो की प्रौढावस्था मे गम्भीर कविताओं की सृष्टि होती है, पर इसका भी कोई एक नियम नही है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि २-४ वर्षों तक अच्छी कविताएँ लिखने के पश्चात् फिर २-४ वर्ष मध्यम श्रेणी की कविताएँ लिखी जाती हैं। फिर एक उन्मेष होता है, जिसमे कवि की कविता अपने पहले स्तर को प्राप्त करती है या उससे भी ऊँची आ जाती है। इस प्रकार कवियो के काव्य-निर्माण में कोई सुव्यवस्थित नियम नही होता। इस उतार-चढाव की जानकारी के लिये केवल इतना ही आवश्यक नहीं है कि हम श्रेष्ठ काव्य के अनुशीलन से अपनी साहित्य-मर्मज्ञता बढाते जाए, बल्कि यह भी आवश्यक है कि हम कवि की जीवन-रेखाओं का अध्ययन करें तथा उसके व्यक्तित्व तथा परिवेश से अधिकाधिक परिचय प्राप्त करें।

ऊपर के विवेचन से हम जिन दो निष्कर्षों पर पहुचते हैं वे ये हैं—

(१) किसी कवि के काव्य के अनुशीलन के लिये उस कवि के व्यक्तित्व और परिस्थिति से परिचित होना लाभदायक होता है।

(२) इस प्रकार का परिचय उस कवि के काव्य की विशुद्ध साहित्यिक समीक्षा मे योग ही दे सकता है, बाधा नही डाल सकता। इन दो तथ्यो के आधार पर कालगत अध्ययन को उपयोगी मानकर हम उस ओर प्रवृत्त हो सकते हैं।

समयानुक्रम से किसी कवि की काव्य कृतियो का अध्ययन करने से जो लाभ होते हैं, उनका कुछ आभास ऊपर दिया गया है। सक्षेप मे कह सकते हैं कि इस प्रकार का अध्ययन किसी काव्यकृति के वास्तविक सौन्दर्य और मूल्य को समझने मे अधिक सहायक होता है। युग-जीवन के परिपार्श्व म किसी कवि की कृतियों को देखना हमारी साहित्यिक चेतना को अधिक तथ्य मूलक बनाता है। जैसा कि हम कह चुके हैं, इस प्रकार के अध्ययन से हमारी तुलनात्मक दृष्टि अधिक सक्रिय होती है। हमारा साहित्यिक परम्पराओ का बोध बढता है और बदलते हुये जीवन-व्यवहारो की वास्तविक झाकी देखकर हम कवि के अधिक समीप पहुचते हैं। युग-सभ्यता के अनुरूप अभिव्यक्ति की नई शैलिया, नये मुहावरे और नवीन उक्ति-कौशल हमारे साहित्यिक मानदण्डो को अधिक जागरूक बना देते हैं। यह मानी हुई बात है कि किसी भी कवि की दो कृतियाँ एकदम समान विशेषता की नही होती। काव्य का वास्तविक स्वारस्य लेने के लिये भी हमे साहित्यिक विवेचन के इन तुलनात्मक आधारों को देखना और समझना पडता है।

चार कवियो का दृष्टांत

कुछ कवियों के काव्यानुशीलन मे तो कवि के बदलते हुए मनोभावो और युग की बदलती हुई परिस्थितियों का ज्ञान अनिवार्य हो जाता है। इस ज्ञान के

बिना हम उसके काव्य के वास्तविक स्वारस्य को जान ही नही सकेंगे। यदि हम उदाहरण स्वरूप छायावाद युग के ४ कवियों को अपने दृष्टिपथ में रखें, तो चारों की काव्य-विकास की भूमिकायें बहुत कुछ भिन्न दिखाई देंगी। जयशंकरप्रसाद का काव्य आरभ मे अतिशय सामान्य प्रतीत होता है। 'आसू' तक आते-आते उनमे एक गंभीर मार्मिकता आती है। 'लहर' मे कवि की भावना में और भी वैविध्य और परिष्कार आया है और इन सबके शीर्ष पर हम उनकी प्रबन्ध-रचना 'कामायनी' को देखते हैं, जिनकी तुलना मे उनकी पूर्ववर्ती सभी रचनायें हलकी जान पडने लगती हैं। यदि हमने 'कामायनी' को न पढ़ा होता, तो प्रसाद जी की अन्य रचनाओं का तुलनात्मक बोध हमें कैसे होता? और हम यह कैसे जानते कि प्रसाद का काव्य उनके व्यक्तित्व के विकास के साथ निरन्तर विकसित होता गया है और अन्तिम रचना 'कामायनी' मे वह शीर्ष बिन्दु पर पहुँचा है। प्रसाद का काव्य-विकास बहुत कुछ समरस है।

परन्तु यही बात महादेवी जी के काव्य के सम्बन्ध मे नही कही जा सकती। यद्यपि भावना की गहनता उनकी परवर्ती कृतियो मे अधिक है, परन्तु यदि निर्माण-तिथि की सूचना दिये बिना उनकी दो सुन्दर रचनायें हमे पढने को दी जायें, तो हम उन्हें पढ़ कर यह शायद ही बता सकें कि उनमें से कौन-सी रचना पूर्ववर्ती है और कौन-सी परवर्ती। महादेवी का काव्य एक दूसरे अर्थ मे समरस है। प्रसाद का काव्य क्रमिक विकास मे समरसता रखता है। महादेवी का काव्य भिन्न-भिन्न समयो मे एक-सी ऊचाइयों पर पहुँचा है और समयानुक्रम से उनकी कृतियो को देखने से कोई चढ़ाव और उतार नजर नही आते। यह अवश्य है कि प्रतिभा और एकाग्रता की स्थितियों मे लिखी गई उनकी कुछ रचनायें पिष्टपेषित भावनाओ से भरी हुई हैं। महादेवी जी का काव्य 'प्रतिभा की जागृति और प्रतिभा की सुपुप्ति' की भूमिकाओ पर पढ़ा जा सकता है।

इन दोनो कवियो से भिन्न पत और निराला की स्थिति है। पत जी के प्रायः सभी पारखी, काव्य समीक्षक, यह स्वीकार करते हैं कि उनकी 'पल्लव' तक की रचनाओ मे जो सहज सौंदर्य है, जो नैसर्गिक उद्भावनायें हैं, जो सहज प्रवाहमयी भाषा हैं, वह परवर्ती कृतियो मे दुर्लभ हो गई है। आरभ की कृतिया वायवीय ही सही, अधिक आस्वाद्य हैं क्योकि अधिक सहज और मार्मिक है। उनकी परवर्ती कृतिया भले ही वह गम्भीर तत्व-चिन्तन पर आश्रित हों, अधिक बोझिल है। अनेक बार इतिवृत्तात्मक हैं और कही-कही तो दर्शनशास्त्र का अनुवाद मात्र हैं। ऐसी स्थिति मे पत जी के पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य का पृथक-पृथक अध्ययन और परीक्षण आवश्यक हो जाता है। यदि हम ऐसा न करें और पंत के काव्य को प्रसाद के काव्य की भाति एक क्रमिक विकास की भूमिका पर देखना चाहे, तो सभावना यह है कि तथ्य की अपेक्षा भ्रांतियाँ ही हमारे हाथ लगेंगी। प्रसाद के काव्य को

तिथि-क्रम से पढते जाइये, उत्तरोत्तर विकास स्पष्ट होता जायगा। पत जी के काव्य को तिथि-क्रम से पढिये, प्रत्येक काव्य-रसिक पाठक के समक्ष एक प्रश्न-चिन्ह बनता चला जायेगा। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कुछ कवियो की काव्य-रचनायें स्वाभाविक गति से विकसित न होकर ऐसी टेढी-मेढी गतियों और दिग्भ्रात स्थितियो का आभास देती हैं कि सहसा हम विश्वास नही कर पाते कि ये सारी कृतिया एक ही कवि की हैं। ऐसे कवियो के काव्य को पूर्ववर्ती और परवर्ती विभागों में बाँट कर पढना, प्रत्येक दृष्टि से लाभकर होगा। कदाचित यही कारण है कि पत जी के परवर्ती काव्य पर स्वतत्र निबन्ध और पुस्तकें प्रस्तुत की गयी हैं।

निराला के काव्य की स्थिति इन तीनो से भिन्न है। न तो वे प्रसाद की भाति एक सामान्य स्तर से आगे बढते हुये क्रमश उच्च स्तर पर पहुँचते हैं और न प्रसाद की भाति उनकी आरभिक कविताओ मे विन्यास की शिथिलता दिखाई देती है। स्तर की उच्चता उनकी आरम्भिक कविताओ से ही दिखाई देने लगती है। इस अर्थ मे वे प्रसाद से भिन्न हैं। महादेवी की भाति निराला जी की रचनाओ म प्रतिभा के क्षणों मे और प्रतिभाहीन क्षणो म की गई सृष्टियो का भेद नहीं मिलता। उनकी अधिकाश कृतियाँ समान प्रतिभा की सूचना देती हैं। पत जी की काव्य-कृतियो की भाति निराला की कृतियों म काव्य और दर्शन का द्वद्व नहीं है। पत की कुछ रचनायें विशुद्ध काव्यात्मक हैं। सुन्दरतम प्रगीत हैं। परन्तु कुछ रचनायें उपदेश-बहुल हैं। कोरी दार्शनिक हैं। निराला की काव्य-कृतियो म काव्य और दर्शन का मणिकाचन योग आद्यन्त बना हुआ है। फिर भी निराला जी के काव्य मे कुछ एसे मोड मिलते हैं, जो एक ओर युग की बदली हुई परिस्थितियो के प्रभाव के सूचक हैं, तो दूसरी ओर निराला जी की परिवर्तित मानसिक भूमिका के द्योतक हैं। जब कि उनकी आरभिक कवितायें एक अपूर्व उल्लास प्रखरता और पौरुष से सम्पन्न हैं, शृगार और वीर रस की आलोकमयी और शक्तिशालिनी प्रेरणाओं से आपूरित हैं, तब उनकी परवर्ती काव्य रचनायें अधिकतर करुण, शान्त और यत्र-तत्र हास्य तथा रौद्र रस की अभिव्यञ्जना करती हैं और इन दोनों धाराओ के बीच मे इनकी मध्य-वर्ती कृतिया कतिपय दीर्घ आख्यानों का आधार लेकर महाकाव्योचित गरिमा और विस्तार का परिचय देती है। उनकी प्रथम चरण की रचनाओ म भाषा का जो प्रवेग और लालित्य है, वह उनकी मध्यवर्ती रचनाओ मे बदल कर किंचित दुरूह और उच्चस्तरीय बन गया है। उनकी परवर्ती रचनाओ में भाषा का स्वरूप फिर बदला है। कहीं हिन्दी-उर्दू मिश्रित भाषा दिखाई देती है और कहीं ऐसे विचित्र भाषा प्रयोग मिलते हैं, जिनका अर्थ सहजगम्य नहीं है। इसके साथ ही इस तृतीय चरण मे विशेषकर उनके गीतों की भाषा अतिशय सरलता भी ग्रहण करती है। निराला का काव्य-विकास एक जीवन की पूरी कहानी को प्रस्तुत करता है जिसम

वसन्त का सौंदर्य, ग्रीष्म की उष्णता तथा शिशिर का शैत्य अपना स्वतंत्र परन्तु स्वाभाविक सौंदर्य ले आये हैं।

ऊपर निराला-काव्य के जिन-जिन चरणों का उल्लेख किया गया है, उनमें प्रथम चरण और तृतीय चरण ही मुख्य हैं। उनके काव्य का द्वितीय चरण, जिसे हम मध्यवर्ती-काव्य कह आये हैं, रचना की दृष्टि, से परिणाम की दृष्टि से, और काव्य-कृतियों की दृष्टि से, इतना अधिक भिन्न या स्वतंत्र रंग रूपो वाला नहीं है कि उसे एक नितांत पृथक स्थिति दी जाय। इन मध्यवर्ती रचनाओं को हम एक दृष्टि से उनकी प्राथमिक रचनाओं का विकास भी मानते हैं। ये मध्यवर्ती कृतियाँ, जो अधिकतर सन् ३५-४० तक की हैं, अपनी आत्यंतिक इकाई नहीं रखतीं, क्योंकि इन्हीं वर्षों मे निराला जी की कुछ ऐसी रचनायें भी उपलब्ध हैं, जो अपने प्रतीकात्मक सौष्ठव और स्वच्छन्दतावादी भाव-विन्यास के कारण, उनके प्रथम चरण की रचनाओं की कोटि मे जाती हैं, अथवा अपने व्यंग्यात्मक और यथार्थोन्मुख चित्रण-शैली के कारण उनके परवर्ती काव्य की समरूपता ग्रहण करती हैं अपने इस वक्तव्य को हम आगामी विवेचन मे और भी स्पष्ट कर सकेंगे। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि हमारी दृष्टि मे निराला जी के अब तक उपलब्ध काव्य की दो ही मुख्य सा-णिया दृष्टिगत होती हैं। समय की दृष्टि से इनमे से एक सरणी दूसरी सरणी की पदवर्तिनी है। इसलिए हम निराला-काव्य को पूर्ववती और परवर्ती भागों मे रखकर उसके परवर्ती काव्य का अनुशीलन करना चाहते हैं।

निराला के व्यक्तित्व में इस भिन्नता के कारण

(१) निराला का संघर्षमय जीवन— प्रश्न उठता है कि निराला जी के पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य की इस भिन्नता के क्या कारण है? किन परिस्थितियो ने उनके प्रसन्न और उल्लासपूर्ण [illegible] अवसाद और असतुलित मानसिक अवस्था मे परिणत कर दिया? [illegible] परिस्थितियो को देखने के पहले यह आवश्यक है कि हम निराला [illegible] उनके व्यक्तित्व मे होने वाले परिवर्तनों का परिचय प्राप्त कर लें और [illegible] पर भी दृष्टि डालें, जिनमे इस प्रकार का परिवर्तन [illegible]

यद्यपि निराला जी को जीवन के आरम्भ में ही [illegible] पड़ा था; परन्तु तरुणावस्था मे उन्होंने इन सङ्घर्षों को [illegible]

---

१ प्रमाण मे प० नन्ददुलारे वाजपेयी की [illegible] देखिये—हिन्दी-साहित्य बीसवीं शताब्दी, [illegible] जितना प्रसन्न अथवा अस्वस्थचित्त [illegible]

परिस्थितियो के रहते हुये भी निरन्तर शक्ति-सौंदर्य और अह्लाद से भरी काव्य-रचनायें प्रस्तुत करते रहे। कविता के क्षेत्र मे हम देख चुके हैं, कि सन् १९३६ तक की उनकी कविता की मुख्य चेतना उल्लासमयी है। यदि हम उनके गद्य मे देखें तो उपन्यासो मे उनकी अप्सरा (१९३१), अलका (१९३३), प्रभावती (१९३६) और निरुपमा (१९३६) कृतियाँ पूर्ण स्वच्छदतावादी मनोवृत्ति का परिचय देती हैं। इसके पश्चात् उनकी उपन्यास रचना मे नई प्रवृत्तियाँ दिखाई देने लगती हैं। बिल्लेसुर बकरिहा (१९४१), कुल्लीभाट (१९३९) और चमेली (१९४१) की अधूरी रचना मे यद्यपि हास्य के पुट भी हैं, परन्तु इन सभी रचनाओ के केन्द्र मे सामाजिक व्यग्य और जीवन की कुरूपता का निर्देश प्रधान हो गया है। उनके अन्य दो अधूरे उपन्यास चोटी की पकड (१९४६) और काले कारनामे (१९५०) तो स्पष्ट रीति से उनकी अस्वस्थ मनोदशा का परिचय देते हैं। इसी प्रकार उनकी छोटी कहानियो मे भी उनकी आदर्शवादी भावधारा सन् १९३७ तक काम करती रही। इसके पश्चात् उनकी कहानियाँ व्यग्यात्मक हो चली। कहा जा सकता है कि इस प्रकार के परिवर्तन तो किसी भी लेखक या कवि मे स्वाभाविक रीति से हो सकते हैं, परन्तु यहाँ हम निराला जी की जीवनी के उन अशो को देना चाहते हैं, जिनमे यह प्रकट होता है कि यह परिवर्तन स्वत निराला के व्यक्तित्व मे होने वाले परिवर्तन की प्रतिक्रिया है।

सन् १९२७ के आस-पास 'मतवाला' का सपादन कार्य छोडकर निराला जी कुछ दिनो तक अपने गाव गढाकोला (जिला उन्नाव) मे रहने लगे थे। इस समय तक उनकी एक भी उल्लेखनीय पुस्तक प्रकाशित नही हुई थी और उन्हें अर्थागम का कोई साधन न था। इनके दायित्व मे इनका अपना परिवार, एक पुत्र और एक कन्या तो थी ही, इनके कई भतीजे और भतीजिया भी थी, जिनका भरण-पोषण ये ही करते थे। गाव पर खेती-पाती की कोई ग्रामीण व्यवस्था भी न थी। फलत निराला जी लखनऊ की गगापुस्तकमाला प्रकाशन-सस्था मे आये। इसी पुस्तकमाला से 'सुधा' पत्रिका भी प्रकाशित होती थी। उसके लिए लेख, कवितायें, लिखने लगे, परन्तु इस माध्यम से उनकी आय इतनी अल्प थी कि गृहस्थी का काम चलना कठिन था। इसीलिए सन् ३०-३१ मे वे लखनऊ आकर रहने लगे और 'सुधा' पत्रिका के सपादकीय कार्य के अतिरिक्त उन्होंने उपन्यास और कहानियाँ लिखना प्रारम्भ किया। कविता और लेखो से जो काम नहीं चल सकता था, वह अब सम्पादकीय और उपन्यास लेखन से थोडा-थोडा चलने लगा। पर आर्थिक कठिनाइयाँ अब भी दूर नही हुईं। निराला जी के स्वभाव मे मागने की वृत्ति रचनात्र भी नहीं रही है। अतएव जो कुछ मिल जाता था उसी मे सतोष करना पडता था। उनकी उदारता उन्हें बाध्य करती थी, कि वे अपने प्रकाशकों से भी अधिक पैसा न मांगें। क्योंकि गगापुस्तक-माला को छोड कर उनके अन्य प्रकाशक भी साधारण स्थिति मे थे। गगापुस्तकमाला

का व्यवसाय यद्यपि बड़ा था । पर जितना काम निरालाजी उसके लिये करते थे, वह अधिक न था; और उसी अनुपात मे उन्हे द्रव्य भी कम मिलता था । फिर निरालाजी मे स्वाभिमान की वृत्ति भी इतनी प्रमुख रही है कि वे किसी की एक बात सुनने वाले न थे । 'सुधा' के संपादकीय कार्य मे यद्यपि उन्हे यथेष्ट स्वतंत्रता रहती थी, पर वे अपने मालिक को अपना मित्र समझ कर ही व्यवहार करते थे । इस मैत्री मे दूसरे पक्ष से यदि लेशमात्र भी असम्मान का भाव दिखाई दिया तो, निराला जी के लिये वह असहनीय था । इन्ही कारणों से निराला जी अधिक दिनो तक 'सुधा' का सपादकीय कार्य न कर सके ।

सन् ३२ मे उन्हें फिर कलकत्ते का बुलावा आया । 'रंगीला' नाम का एक साप्ताहिक पत्र निकाला गया । पर यह पत्र भी कुछ दिन ही चल पाया, अथवा यों कहे कि निरालाजी का सपर्क इस पत्र से कुछ ही महीनो का रहा । सन् ३३ के पश्चात निरालाजी फिर कुछ वर्ष लखनऊ मे रहे ; परन्तु इस दौर मे उन्होंने कही नौकरी नही की । किसी सस्था से संपर्क नही स्थापित किया । साहित्यिक लेखन के बल पर ही वे लखनऊ का अपना खर्च चलाते रहे; परन्तु उनके यहाँ मेहमानो की कमी न रहती थी कोई-न-कोई आया ही करता था । निरालाजी अपना ध्यान कम रखते थे, अतिथियों का अधिक । अच्छी-से-अच्छी खातिर मे पैसे तो लगते ही थे । पैसे आते कहाँ से ? इसी समय उनका लडका श्रीरामकृष्ण त्रिपाठी भी संगीत की शिक्षा के लिये लखनऊ के 'भातखडे संगीत महाविद्यालय' में अध्ययन करने लगा उसका व्यय भी निरालाजी को वहन करना पडता था ।

(२) पुत्री का निधन परिवर्तित मनोभावना : सन् १९३५ के आसपास उनकी एकमात्र पुत्री सरोज का कुछ बडी कारुणिक परिस्थितियो मे निधन हो गया । 'सरोज स्मृति' कविता मे निरालाजी ने उस घटना को लेकर मर्मस्पर्शी उद्गार व्यक्त किये है । इसी समय से उनकी मनोदशा मे परिवर्तन आने लगा । लखनऊ का लवाजमा उन्हे छोड देना पडा और तब से वह प्रायः अनिकेतन ही हो गये । कुछ दिन वे उन्नाव युग-मन्दिर मे सुमित्राकुमारी सिन्हा तथा उनके पति चौधरी साहब के साथ रहे ।

सन् १९४१–४२ मे निरालाजी एक वर्ष तक पडित वाजपेयीजी के साथ रहे । इसके पहले भी वे काशी के नवाबगज मुहल्ले मे कुछ समय तक रहे थे । 'गीतिका' के अनेक गीत यही लिखे गये थे । इस अवधि मे निरालाजी की व्यक्तिगत मनोदशा भी विकार की सूचना देने लगी थी । वे अकारण ही एक-ब- एक हँस पड़ते थे । कारण पूछने पर कोई उत्तर नही देते थे । कभी कभी अपने आप भी बातें करने लगते थे और अपने आप ही प्रश्न करते, और उत्तर भी दे देते थे । आरम्भ मे वे बड़े

सकोच के साथ कहते थे कि उनका रवीन्द्रनाथ से इतने दिनो का घनिष्ठ सबध है। वे उन्ही के घराने के हैं; परन्तु जब उनके इस कथन का प्रतिवाद किया जाता था, तब वे चुप हो जाते थे। स्पष्ट है कि १६३६से ४१-४२ तक का समय निरालाजी के व्यक्तिगत असतुलन और विक्षेप का पहला चरण था।

(३) विक्षेप की स्थिति. इसमे सदेह नही कि सन् ४१ के पश्चात निरालाजी की मानसिक दशा और भी चिंताजनक होती गई है। वास्तविकता से दूर एक काल्पनिक स्थिति मे अपने को डालकर व्यवहार करने और बरतने की वृत्ति बढती गई है। पहले रवीन्द्रनाथ से जो पारिवारिक सबन्ध की धारणा बनी थी, वह आगे चलकर अन्य क्षेत्रों के लोगो से भी बनती गई। उदाहरण के लिये शारीरिक बल मे वे गामा से बढ कर हैं, उसे पराजित कर चुके हैं। राजनीतिक भूमिका पर उनका मिलन और वार्तालाप चर्चिल अथवा अष्टम एडवर्ड आदि से होता रहा है। ऐसी अतिकल्पनायें धीरे-धीरे जड पकडती गई हैं। सन् ४७ मे जब काशी मे बडे पैमाने पर उनकी जयन्ती मनाई जा रही थी, २-३ हजार जनसमूह के सामने उन्होने अद्वितीय विक्टोरिया क्रास के प्राप्त करने की जो चर्चा की थी, उससे यह स्पष्ट होता है कि आपस की गोष्ठी या मडली मे ही नही, सार्वजनिक रूप मे भी वे अपनी विशृंखल मनोवृतियो का इजहार करने लगे थे। इसके पश्चात निरालाजी की विक्षेप की स्थिति और भी उग्र हुई और उन्होने अपने घनिष्ठ मित्र और आतिथेय उन्नाव के प्रतिष्ठित नागरिक श्री चौधरी महोदय से दुर्व्यवहार किया था, वह घटना साहित्यिको से अविदित नही है।

सन् ५० के आसपास निरालाजी प्रयाग मे रहने लगे। पिछले १० वर्षों मे वे निरन्तर वही रहे हैं। इस अवधि मे उनकी मनोदशा के बहुत से वर्णन पत्र-पत्रिकाओ मे छपे हैं। कुछ लोगो न यह बताने का प्रयत्न किया है कि निरालाजी की मानसिक स्थिति एकदम स्वस्थ है और उसमे विकार देखने वाले स्वय विकृत बुद्धि के है। कभी-कभी उनके वक्तव्यों को जो अपने वास्तविक रूप मे निरे निरर्थक हैं, कुछ लोगो ने गभीर प्रतीक-आशय देकर अथवा आध्यात्मिक भूमिका पर ले जाकर समझाने की चेष्टाएँ की हैं, पर इस प्रकार की टीकाएँ निरालाजी का तो कोई उपकार करती नही, उनके उपचार मे भी बाधक बनती हैं। अपनी वर्तमान दशा मे निरालाजी को मन से निर्लिप्त बताना अथवा उनके किसी भी कार्य मे विक्षेप की रचमात्र भी स्थिति न देखना निरी भ्रांति है। जब निरालाजी अपने वश मे नही, जब उनकी सजग चेतना उनकी अन्तश्चेतना के वशीभूत हो चुकी है, तब उनके कार्य मे किसी उचित या अनुचित को ढूढ़ना ही एक मिथ्या प्रयास है।

यहां एक दृष्टांत जो हमें अपने गुरुदेव पंडित वाजपेयीजी से प्राप्त हुआ है, उपस्थित करना अनुचित न होगा। पंडितजी निरालाजी के अत्यन्त निकटस्थ साथियों में रहे हैं और दोनों की अभिन्नता अशंकनीय रही है। निरालाजी ने पण्डितजी पर एक निबन्ध लिखा था जो 'चाबुक' नामक उनकी पुस्तक मे बाद को प्रकाशित भी हुआ था। इससे दोनों के सम्बन्धो का पूरा पता लगता है। पर सन् १९५६–५७ में जब 'नागरी प्रचारिणी सभा' की ओर से पण्डितजी की स्वर्ण-जयन्ती मनाई जा रही थी, काशी से कई साहित्यिक उन्हे प्रयाग से काशी ले चलने आये थे; पर उस समय अन्य तथाकथित तर्कों के साथ जो विशेष तर्क देकर उन्होंने जाने से इनकार किया था, यह था कि मैं तभी जाऊँगा, जब महादेवीजी भी मेरे साथ चलें। निराश होकर लोगो को लौट आना पड़ा। इस घटना से यह स्पष्ट अनुमित होता है कि इतने अटूट आत्मीय सम्बन्धो को भी निरालाजी विस्मृत कर चुके थे। यह नही जिस तर्क की उन्होने शरण ली, उसमें बौद्धिक तत्व का नितांत अभाव है।

यह उदाहरण केवल इस आशय से दिया जा रहा है कि हम यह अच्छी तरह समझ लें, कि इन वर्षों मे निरालाजी को स्वस्थ और आध्यात्मिक समझने वाले लोग वास्तविक तथ्यो से कितने दूर जा पड़े हैं। बीमारी अन्ततः एक बीमारी है। उसे स्वीकार न करना, बल्कि उसे एक उदात्त या दिव्य स्थिति घोषित करना बीमारी के परिहार का तो साधन नहीं है। किसी वस्तु को उसकी वस्तुमुखी दृष्टि से ही देखना होगा। आज के वैज्ञानिक युग मे प्रत्यक्ष स्थिति का परोक्ष समाधान बताना निरा अवैज्ञानिक है।

हाल ही कुछ घटनाओ से यह भी सूचित होता है कि निरालाजी अब निराला से भिन्न पूर्णतः एक नये व्यक्तित्व का अपने मे प्रत्यय करने लगे हैं और कई बार यह कहते देखे गये है कि निराला या सूर्यकान्त त्रिपाठी प्रयाग मे नही है। वे अन्यत्र चले गये हैं, और जो व्यक्ति वहां उपस्थित हैं, उसके पास केवल अपनी चाभी दे गये है। इस प्रकार की चेतना-परिणति विक्षेप की बहुत गहरी अवस्था की सूचक है। परन्तु उनके विक्षेप की इस परिणति के सामान्य निरूपण के साथ हम उनकी इस बात को नही भूल सकते कि निरालाजी की स्मृति अब भी अत्यन्त पैनी है और वे वर्षों पहले घटित हुई घटनाओ, अनेकानेक व्यक्तियो से वर्षों पहले हुई भेंटो और उस समय की वार्ताओ को भी ज्यों का त्यो स्मरण रखते है। यही नही, जब वे प्रशांत मुद्रा मे रहते है, तब उनकी बातचीत बिल्कुल ही आमफहम होती है। जब कभी वे साहित्यिक चर्चा छोड़कर ताश खेलने बैठते हैं, तब एक सधे हुए खिलाड़ी का सारा कौशल उनमे दिखाई देता है।

देखा यह गया है कि अत्यन्त घनिष्ट मित्रो और परिचितों से मिलने पर निरालाजी कुछ क्षण तो अत्यन्त प्रसन्न और भावान्वित दिखाई पड़ते है; पर कुछ क्षणो बाद उनकी स्थिति बदल जाती है और फिर वे काल्पनिक जगत मे प्रवेश कर

जाते हैं। अपरिचितो या काल्परिचितो के समक्ष इस प्रकार की प्रतिक्रिया कम होती है। खासकर वे लोग, जो साहित्यिक नही हैं, या जिनसे निरालाजी का कोई पुराना परिचय नही है, निराला जी को मानसिक उत्तेजना नही देते। कदाचित ऐसे लोगो के साथ ही वे ताश खेला करते हैं।

पूछा जा सकता है कि एक ओर निराला की यह विक्षेपावस्था और दूसरी ओर उनकी अस्खलित स्मृति-शक्ति, उनकी मार्मिक काव्य-रचना और उनका जमकर ताश खेलना, किस प्रकार एक सम्बन्ध-सूत्र से जोडे जा सकते है ? साधारणत. ये वस्तुएँ एक साथ नही रहा करतीं। इस प्रश्न के उत्तर मे हम अपना यही अनुमान प्रकट कर सकते हैं कि निराला के सम्पूर्ण व्यक्तित्व मे विक्षेप-दशा का आशिक प्रभाव ही पडा है। उनका एक अश, उनकी कुछ घडियाँ निश्चय ही विक्षेप की घडियाँ हैं; परन्तु उनकी दिनचर्या म स्वस्थ क्षण भी आते है। विशेषकर उनकी काव्य-रचना मे उस स्थिति के चिन्ह मिलते हैं, जिसमे वे उत्तेजना के पश्चात् शाति की स्थिति मे आते है। यह शाति की स्थिति जब-जब निर्बाध होती है, तब-तब वे एकदम निर्दोष कविताएँ लिखते हैं, पर ज्यो ही कुछ बाधा आई, तब उनकी कविता मे भी उसके चिन्ह दिखाई देने लगते है। सभवत साधारण व्यक्तियो के पागलपन से निराला का पागलपन भिन्न प्रकार का है। निराला जी एक निसर्गजात कवि और कलाकार भी हैं अत वर्तमान स्थिति मे भी उनकी काव्य और कला-चेतना बरकरार है। उसमे अवरोध अवश्य आते हैं। कदाचित इसीलिए उनकी साहित्यिक रचना इन दिनो न्यून हो गई है, परन्तु वह कला चेतना निष्क्रिय नही हुई है। अब भी वे उत्तम कलात्मक सृष्टियाँ कर लेते हैं, पर अब वे लम्बे बडे मजमून नही लिख पाते। कल्पना-छवियो का वह सग्रथन और प्रवाह अब नही दिखा पाते जो अपनी पूर्ववर्ती रचनाओ मे अबाध रूप से दिखाते रहे हैं। परन्तु छोटी छोटी काव्य-कृतियाँ वे अब भी प्रस्तुत करते हैं, जिनमे उनकी तात्कालिक आत्म-वेदना निहित रहती है। उनमे से अनेक अपनी छोटी सीमा मे अतिशय मार्मिक है। जब कभी वे बडे आख्यानो को लेकर चले हैं, आधी दूर से ही लौट आये है या थककर बैठ गये हैं, जैसे उनके अतिम उपन्यास 'काले कारनामे'[1] और 'चोटी की पकड' है।[2] पिछले कुछ वर्षों से तो उन्होंने आत्म-वेदना की सूचना देन वाले आत्म निवेदन की भावना से ओतप्रोत छोटे-छोटे गीतो की ही रचना की है।

---

१ निराला काले कारनामे (अधूरा प्रकाशित) १९५० इलाहाबाद, केसरवानी प्रेस—पृ० ८०।

२ निराला : चोटी की पकड (अधूरा) १९४९ (प्रथम सात भाग) इला० कि० म०, पृ० १६७।

❸ बाह्य परिस्थितियों में इस भिन्नता के कारण

निरालाजी के व्यक्तित्व मे क्रमशः आने वाली भिन्नता और विशेषकर उनके मानसिक विक्षेप की स्थितियो को देख लेने के पश्चात् अब हम उन स्थितियो को देखना चाहते हैं, जिनके प्रभाव से निराला के व्यक्तित्व मे इस प्रकार का परिवर्तन घटित हुआ है। विद्रोह और सौम्यता का, क्रान्ति और शान्ति का स्वरूप निराला जी के व्यक्तित्व को अन्तर्विरोधात्मक रूपों मे सामने लाता है। अन्तर्विरोधो मे सामंजस्य की स्थिति है तथा उस सामंजस्य की विकट आस्था पर निरालाजी विद्यमान रहे है। यहाँ सामान्य रूप से सपूर्ण भारतीय परिस्थितियो मे होने वाले परिवर्तन का उल्लेख करना भी उपयोगी हो सकता है। परन्तु यहाँ हम विशेषरूप से उन परिस्थितियो का उल्लेख करना चाहते है, जिन्होने निराला के व्यक्तित्व को नये मोड दिये है और उन्हे क्रमशः अवसाद और विक्षेप की स्थिति मे ला पहुचाया है। व्यक्तित्व की पहचान उन्हे सन् १६१५ से होने लगी थी जब कि निरालाजी किशोरावस्था को पारकर तरुण आयु मे प्रवेश करने लगे थे, और जब उन्हे अपने दायित्व को समझने का बोध हो चला था। उनके सभी संस्मरण-लेखको ने और स्वय उन्होने भी इस बात की सूचना दी है कि उनका आरम्भिक समय काफी अच्छी परिस्थितियो मे व्यतीत हुआ था। यद्यपि उनके पिता बगाल के महिषादल स्टेट मे एक साधारण कर्मचारी थे, पर निरालाजी का साहचर्य विशिष्ट व्यक्तियो से हो गया था और वे उनके साथ रहकर अच्छी जानकारी प्राप्त कर लेते थे। फुटबाल खेलने मे ये काफी निष्णात थे और राजदरबार मे उपलब्ध अन्य सुविधाओ का भी वे उपयोग करने लगे थे; परन्तु पिता के निधन (सन्'१६१८-१६) के पश्चात्' उनको स्टेट मे ही नौकरी करने को बाध्य होना पडा; परन्तु जिस स्थान पर वे राजपरिवार के लोगो के समकक्ष होकर रहे थे, वही उनका अनुचर होकर रहना स्वभावतः उनके अनुकूल न था। फिर निरालाजी की प्रकृति मे महत्वाकाक्षा के बीज भी बडी मात्रा मे मौजूद थे। फलतः उन्हे महिषादल की नौकरी छोड देनी पडी। कलकत्ता जाकर स्वतन्त्र लेखन का कार्य अपनाना पडा। सन् १६२३ के आसपास आचार्य महावीर-प्रसाद द्विवेदी के प्रयत्न से रामकृष्ण आश्रम से प्रकाशित होने वाले दार्शनिक, आध्यात्मिक 'समन्वय' पत्र के सम्पादक का कार्य मिल गया।

कुछ ही समय के पश्चात् कलकत्ता से 'मतवाला' नामक साहित्यिक पत्र प्रकाशित हुआ और निरालाजी उसके सम्पादकीय विभाग मे आ गये। सन् २४ से २७ तक निरालाजी की कविताएँ 'मतवाला' मे प्रकाशित होती रही। इसे ही हम उनकी काव्य-रचना का स्वर्णकाल कह सकते है। 'मतवाला' मे रहते हुये निरालाजी

---

१ रामकृष्ण त्रिपाठी का लेख-मेरे पिता निराला-(साप्ताहिक हिन्दुस्तान-निराला-अक) ११ फरवरी ६२, पृ० ३६।

को किसी प्रकार की आर्थिक कठिनाइया नही थी। उनकी सारी आवश्यकताओ की पूर्ति 'मतवाला' के सचालक श्री महादेव प्रसाद सेठ किया करते थे। वास्तविक स्वच्छदतावादी प्रकृति की अधिकाश रचनायें इन्ही दिनो प्रकाशित हुई थी। इस समय निरालाजी युवावस्था के शीर्ष-बिन्दु पर थे और उनकी प्रतिभा अपने पूर्ण उन्मेष मे थी। सन् २८ के पश्चात् भारतीय परिस्थितियो मे और विशेषकर निरालाजी के साथ एक बडा परिवर्तन घटित हुआ। वे कलकत्ता से बीमार होकर घर चले आये और कुछ दिनो तक काशी मे रहे। इसके पहले ही निरालाजी पर और भी पारिवारिक सकट आ चुके थे। उनकी पत्नी तथा अन्य कुटम्बियो का प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् आने वाली महामारी (सन् १८-१९) मे एक साथ निधन हो गया था। इस मानसिक आघात से वे निकल ही रहे थे कि वे कलकत्ता मे एक सक्रामक रोग से आक्रात हो गये। निराला की जीवन-परिस्थितियाँ अधिक गभीर हो चली थी। सन् १९३० के पश्चात् विश्वव्यापी सस्ती का दौर आया। जिसका सबसे बुरा परिणाम यह पडा कि लोगो को नौकरियो की कठिनाई हुई। यद्यपि चीजें सस्ती थी, पर किसान और मध्यवर्ग के लोगो को खरीदने के साधन नही रहे थे। बेरोजगारी अपनी चरम सीमा तक फैल गई थी। सन् ३३ के पश्चात् इस परिस्थिति मे कुछ परिवर्तन हुआ, फिर भी व्यवसाय मदा ही बना रहा। कोई ऐसा साप्ताहिक या मासिक पत्र नहीं था, जिसमे निरालाजी को पूरे समय का कार्य मिल सकता। फलत. इन वर्षों मे निरालाजी को कठिन आर्थिक परिस्थितियो का सामना करना पडा, जिसने उनकी मानसिक स्थिति को काफी विचलित और क्षुब्ध कर दिया। निरालाजी म सामाजिक परिस्थितियो के प्रति व्यग का भाव इसी समय उत्पन्न हुआ था, और उनके काव्य मे दिखाई देने वाली यथार्थोन्मुखी प्रवृत्तिया उदय होने लगी थी। साम्राज्यवादी अनुशासन के पहिये म निरतर घूमता हुआ भारत का भविष्य, भाग्य के सहारे प्रयत्न तो कर रहा था, कर्मशक्ति के अभाव म किसी निश्चित लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पा रहा था। अग्रेजी शासन के प्रति उदारवादियो के सुझावों और सुधारो की मागें तथा मध्यवर्ग की मानसिक दासता से जो पगुता आ गयी थी, उसने जनमानस की आत्मा को केवल चिंतित ही नही किया था, वरन अतीतोन्मुखी आदर्श पर भाग्यवादी भी बना दिया था। निराला का कवि-व्यक्तित्व, अनुभूति की व्यजना मे नही, अनुभवगत विचारधारा म व्यक्त होता है। यही कारण है कि विषय को बौद्धिक धरातल से देखने के कारण शिल्प और निवेदन-योजना मे स्वच्छन्दता दिखायी देती है। निराला के काव्य म जो बौद्धिकता दिखाई देती है, वह हिन्दी प्रदेश के मन पर पडे अनेकमुखी भारवाही स्वरूपो को व्यक्त करती है। गांधीजी से सन् १९३६ की निरालाजी की भेंट और इन्टरव्यु की कटु स्थिति, फिर हिन्दी-हिन्दुस्तानी के मामले में गाधी जी तथा नेहरू जी से उनकी बातचीत और फैजाबाद के अधिवेशन मे राजनीति बनाम साहित्य का उनका विवाद इसी समय की घटनायें हैं। सामान्यत. यह

प्रश्न अपने मे महत्वपूर्ण तो थे, पर निराला जी के लिये इनकी इतनी बड़ी अहमियत कदाचित इसलिये थी, कि उनकी व्यक्तिगत परिस्थितिया उन्हें कठोर यथार्थ के अधिक समीप ले जा रही थी। सन् १६३६ के पश्चात्, जब हिन्दी मे 'प्रगतिवादी आन्दोलन' का सूत्रपात हुआ तब निराला जी ने मार्क्सवाद की द्वद्वात्मक भौतिकवादी विचारणा को कभी नहीं अपनाया, परन्तु वे अपने लेखो और कविताओ म सामाजिक वैषम्य और विडबनाओ को अधिकाधिक चित्रित करने लगे। निरालाजी के इस दृष्टि-परिवर्तन मे भी उनके परवर्ती काव्य के वैचारिक आधार पाय जाते हैं। यद्यपि यह परिवर्तन कोई सैद्धान्तिक परिवर्तन नही था। यह मूलत भावात्मक परिवर्तन ही था। निरालाजी के काव्य-साहित्य मे इसका अपना महत्व है।

सन् १६३६ मे द्वितीय महायुद्ध के प्रारभ हो जाने पर श्रमजीवी लेखको के लिए और भी कठिन परिस्थिति आ गई। वस्तुओ के मूल्य क्रमश बढ़ने लगे और बेकार बैठना किसी के लिये सम्भव न रहा। जो स्वतत्र लेखक कोई नियमित वेतन नहीं पाते थे, नौकरी करने को बाध्य हो गये। जिस मात्रा मे वस्तुओ के मूल्य मे वृद्धि हुई थी, उस मात्रा मे आय मे वृद्धि तो हुई ही नही। अतएव लेखको के लिए युद्ध की परिस्थिति और भी जटिल हो गई। इसी युद्धकाल मे निराला जी ने 'चोटी की पकड' और 'काले कारनामे' उपन्यास लिखने का प्रयत्न किया, परन्तु तब तक उनकी मन. स्थिति इतनी विशृखल हो चुकी थी, कि यह उपन्यास पूरे नही किये जा सके।

द्वितीय महायुद्ध के कुछ आगे बढ़ने पर सन् ४२ के आसपास जब सभी चीजें बहुत महगी हो गई, लेखको और कवियो ने अपने प्रकाशको से रायल्टी नियमित रूप से मागनी शुरू की। इसके पहले न तो पुस्तक का कापीराइट ही किसी बड़े मूल्य पर बिकता था और न रायल्टी के विषय मे लेखको को कोई बड़ी तत्परता रहती थी। पर युद्धकाल मे यह तत्परता बहुत बढ़ गई और लोग एक एक पैसे का हिसाब रखने लगे। पर निरालाजी के प्रकाशक आरभ से ही उनकी पुस्तको के कापीराइट खरीदे बैठे थे। उस समय तक का कापीराइट कानून भी लेखको के पक्ष मे अत्यधिक अनुदार था किसी लेखक को कापीराइट बेचने के बाद अनिर्दिष्ट समय तक एक भी पैसा पाने का हक न था। कापीराइट की इस गड़बड़ी के कारण ही निराला जी को अधिक कष्ट रहने लगा और इसी कारण वे अपना स्वतत्र वास स्थान छोड़कर अपने मित्रो के साथ रहने लगे। सन् ४७ के पश्चात यद्यपि वस्तुओ के मूल्य मे कोई विशेष कमी नहीं आई, पर स्वतत्रता प्राप्ति के पश्चात कापी राइट कानून मे कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये, जिससे लेखको को थोड़ी बहुत राहत मिली। निरालाजी के सम्बन्ध मे तो कुछ प्रमुख राष्ट्रीय नेताओ ने भी व्यक्तिगत ध्यान दिया, जिसके कारण निरालाजी को नियमित आर्थिक सहायता मिलने लगी। उनकी चिकित्सा की समुचित व्यवस्था की गई और उनके प्रकाशको से भी उनकी पुस्तको के कापीराइट उठा लेने का प्रस्ताव किया गया, जिससे निरालाजी [illegible]

कुछ सुधर सकी; परन्तु निराला के मानसिक विक्षेप में सुधार का कोई स्पष्ट परिणाम नहीं दिखाई दिया।

परवर्ती काव्य की एक स्वतन्त्र सत्ता और उसके विश्लेषण का औचित्य

इस अध्याय मे हमने निराला के काव्य की गतिविधि पर एक सामान्य दृष्टि डाली है और यह देखने का प्रयत्न किया है कि उनके समस्त काव्य को पूर्ववर्ती और परवर्ती जैसे दो विभागों मे ले सकते हैं या नही। इस प्रकरण में हम यह देख सके हैं कि निराला की कविता पूर्ववर्ती और परवर्ती खडो के अतिरिक्त एक तीसरा खड भी रखती है; इसी को उनकी सक्रान्तिकालीन कविता कह सकते हैं। उनके काव्य का पूर्वार्द्ध सन् १६१६ से ३५ तक अबाध गति से चलता रहता है। यद्यपि यत्र तत्र सन् ३५ के पहले भी कुछ रचनाएँ ऐसी हैं जो निराला की भावात्मक और स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियो का अपवाद भी कही जा सकती हैं। उदाहरण के लिए 'मित्र के प्रति' (७–७–३५) कविता इसी प्रकार की है, जिसकी शब्दावली मे भी कुछ अन्तर आ गया है। इसमे एक स्थान पर अर्र-बर्र और टर्र-टर्र प्रयोग भी मिलते हैं, जो निराला की सामान्य सौंदर्य दृष्टि के बिल्कुल विपरीत हैं। इसी प्रकार पूर्वार्द्ध की कुछ अन्य कविताएँ भी उनकी बदलती हुई मनोवृत्ति का परिचय देती हैं। यथा-हिन्दी के सुमनो के प्रति पत्र (६–८–३७) वनबेला, (११–७–३७) ठूंठ (१६–६–३७) आदि। निराला की सक्रान्तिकालीन कविताओ की प्रकृति पर हम आगामी अध्यायो में विचार करेंगे। ये सभी कविताएँ सन् ३६ से ४० तक लिखी गई हैं। इनमें 'राम की शक्तिपूजा', 'तुलसीदास' मुख्य हैं; परन्तु कुछ और भी रचनाएँ हैं जिनका उल्लेख हम यहाँ कर रहे हैं। यथा–सेवा प्रारम्भ (७–१२–३७) नर्गिस (२–५–५८) आदि। इन सक्रातिकालीन कविताओ को यद्यपि कई भागो मे रखकर देखा जा सकता है, परन्तु मुख्यत: ये या तो एक अतिरिक्त पाडित्य के दबाव से अपना स्वाभाविक प्रभाव और प्रवेग घटा बैठी हैं अथवा एक मानसिक अवसाद और शैथिल्य का परिचय देने लगी हैं। यद्यपि इस सक्रातिकाल की रचनाओ मे निरालाजी की विक्षेप-दशा के स्पष्ट चिन्ह नहीं मिलते, परन्तु वे अपनी स्वाभाविक कवि की पराकाष्ठा पर पहुँच कर धीरे-धीरे नीचे की ओर ढलने लगी थी, यह स्पष्ट आभास मिलने लगता है। इस सम्बन्ध का कुछ अधिक विवरण हम आगामी अध्यायो मे देंगे। जिस प्रकार निराला की पूर्वार्द्ध की कविताओ मे कुछ परवर्ती काव्य की सूचनाएँ मिलने लगती हैं, उसी प्रकार उनके उत्तरार्द्ध के काव्य मे भी पूर्ववर्ती कविता की प्राजल भावधारा स्थान-स्थान पर मिलती रहती है। बल्कि हम यह कह सकते हैं कि उनकी सन् ३५ तक की कविताओं मे उनका ओजस्वी और उच्छृखल व्यक्तित्व ही अधिकतर प्रतिबिंबित हुआ है और दूसरी प्रकार की रचनाएँ बहुत कम हैं। इसकी अपेक्षा अनुपात की दृष्टि से उनकी परवर्ती रचनाओ मे पूर्ववर्ती काव्य के अधिक स्मृति-चिन्ह मिलते हैं। जो कुछ हो; इतना तो स्पष्ट है कि निराला के काव्य को पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध मे बाँटने के

काफी आधार मिलते हैं और इस प्रबन्ध मे हम उनके परवर्ती काव्य का अध्ययन करने जा रहे हैं। यह भी कह देना अनुचित न होगा कि निराला के परवर्ती काव्य की मूलभिन्नता उनके व्यक्तित्व के साथ जुडी हुई है और ज्यो-ज्यो उनकी मानसिक स्थिति विक्षेपो से आक्रान्त होती गई है, त्यो-त्यो उनका परवर्ती काव्य उसकी छाया से समन्वित होता गया है। हम यह नही कह सकते कि इस परवर्ती काव्य के कोई सबल और उत्कर्ष-विधायक आधार नही हैं। आरम्भिक स्वच्छन्दतावादी भूमिका से आगे बढकर उन्होंने तटस्थ भूमि पर सामाजिक जीवन के नये परिवर्तनों को नही देखा है। उनके अनुभवो और विचारदृष्टि मे कोई नये रचनात्मक तथ्य नही आये हैं, पर इन बलशाली तथ्यो की मात्रा अपेक्षाकृत कम अवश्य है। अधिकतर उनके परवर्ती काव्य मे उनके गिरते हुए मानसिक स्वास्थ्य का प्रभाव व्याप्त है। अन्य उपकरण भी हो सकते हैं और हैं, पर हमारी दृष्टि में ये अन्य उपकरण इतनी अधिक मात्रा मे नही हैं कि इनके आधार पर निराला के परवर्ती काव्य को उनके पूर्ववर्ती काव्य से अलग कर सके।

इस सम्बन्ध का अधिक विवरण-पूर्ण विवेचन हम आगे के अध्याय मे करेंगे।

● परवर्ती काव्य की तिथि-स्थापना

अन्त मे हम निराला के पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य की विभेदक तिथियो की स्थापना करना चाहते हैं। निरालाजी की जीवनी का सक्षेप मे परिचय देते हुये हम यह कह चुके हैं कि कन्या सरोज की मृत्यु क पश्चात् निराला जी के सघर्षमय व्यक्तित्व को एक बडा धक्का लगा था, क्योकि यह मृत्यु बहुत ही असामयिक थी और अत्यन्त विवशतापूर्ण परिस्थितियो मे घटित हुई थी। इस पुत्री के प्रति निरालाजी की कितनी मोह-ममता थी, यह 'सरोज स्मृति' को पढने पर स्पष्ट हो जाता है। यहाँ से निराला जी की आस्थामयी रागिनी का स्वर बदल जाता है और वे जीवन के प्रति व्यग और परिहास की प्रतिक्रियायें व्यक्त करने लगते हैं। इन्ही वर्षो के आस पास उन्होने 'बिल्लेसुर बकरिहा' और 'कुल्लीभाट' जैसी विडम्बना-प्रधान औपन्यासिक कृतियाँ प्रस्तुत की, जो स्पष्टत इनके आरम्भिक उपन्यासो से नाता तोड चुकी थी। अब निरालाजी के लेखन मे जीवन के कुरूप पक्षो का प्राधान्य होने लगा था, जिसे कुछ लोग उनका यथार्थवादी पक्ष कहते हैं। परन्तु यथार्थवाद के जो वास्तविक सबल पक्ष हैं, अधिक नैतिक और अधिक न्यायपूर्ण सामाजिक जीवन के प्रति जो यथार्थवाद की निष्ठा है, वह इन कृतियो मे पूरी तरह अभिव्यक्त नही हुई है। उनकी कहानियो में भी जो नये यथार्थवादी चित्र आये है वे प्रकृतिवाद (Naturalist) भूमिका से कम ही ऊपर उठ पाये हैं। फिर भी शैली और मनोभावना मे परिवर्तन की सूचनायें ये सभी कृतिया देती है। इस समस्त साक्ष्य को विचारार्थ लेकर देखने पर हम यह अनुमान कर सकते हैं कि सन् १९३५ से लेकर सन् १९३९ तक के बीच ही कहीं वह तिथि है, जिसे निराला की पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य की मध्यस्थ तिथि कहा

जा सकना है । यदि हम ३५' और ३६' के बीच १६३८ के वर्ष को उनके परवर्ती काव्य का आरम्भ-वर्ष मानें तो विशेष अनुचित न होगा । सन् ३८ की ५ जनवरी को लिखी गई द्वितीय 'अनामिका' मे प्रकाशित हुई उनकी 'मरणदृश्य' कविता में ये पक्तियाँ आई हैं—

विश्व सीमाहीन ।
बाँधती जाती मुझे कर-कर
व्यथा से दीन ।
कह रही हो—"दुःख की विधि—
यह तुम्हें ला दी गई निधि
विहग के वे पख बदले,—
किया जल का मीन ।
मुक्त अम्बर गया, अब हो
जलधि-जीवन को ।"[1]

उपरोक्त पक्तियो म निराला जी ने 'मुक्तअम्बर' के स्थान पर 'जलधि-जीवन' दिये जाने की बात लिखी है । कदाचित् यह उनकी ऐसी अतरग अनुभूति थी, जिसका बोध उन्हें इस समय तक हो चुका था । ये पक्तियाँ निराला के पूर्ववर्ती काव्य को उनके परवर्ती काव्य से पृथक् करने वाली प्रतीक पक्तियाँ मानी जा सकती हैं ।

---

१ निराला अनामिका (तृतीय सस्करण) मरण-दृश्य (कविता से) रचना ५-१-३८ पृ० १२५ ।

२

निराला के पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य में अन्तर

निराला का काव्य-विकास.

निराला के काव्य विकास पर एक सरसरी दृष्टि डालने पर हमें उनकी पूर्ववर्ती और परवर्ती रचनाओं का प्रवृतिभेद दिखाई देता है। यद्यपि इन दोनो काव्य-युगो की विभेदक रेखा किसी निश्चित तिथि द्वारा सकेतित नही की जा सकती। और यह स्वाभाविक और सभव ही नही है कि किसी भावनावान कवि का काव्य किसी एक ही दिन, माह या वर्ष मे ही कोई नया मोड लेले। बहुत दिनो तक सक्राति की अवस्था चला करती है और धीरे-धीरे ही एक धारा बदल कर दूसरी धारा मे लीन होती है। यह भी देखा जाता है कि पूर्ववर्ती कृतियो मे बहुत पहले से परवर्ती कृतियो के कुछ उपकरण मिलते रहते हैं, और इसी प्रकार परवर्ती कृतियो मे भी पूर्व की कृतियो के लक्षण और उदाहरण मिलते हैं, फिर भी प्रकृति और प्रवृत्ति के भेद से इन दो धाराओं का अन्तर स्पष्ट हो जाता है और हम कोई निश्चित समय भले ही न निर्धारित कर सकें, परन्तु स्थूल रूप से बदली हुई काव्य-प्रवृतियो का समय-सकेत तो,किया ही जा सकता है। यहाँ हम निराला के काव्य विकास को इस अभिप्राय से देखने का प्रयत्न करेंगे कि हम उनके पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य के बीच भिन्नता की भूमियो को परख सकें और, यदि सम्भव हो, तो इन दोनो के बीच की विभाजक समय की रेखा का भी प्रत्यय या अनुमान कर सकें।

पहली अनामिका' 'परिमल' और गीतिका'

यो तो निरालाजी की कविता सन् १६ के आसपास लिखी जाने लगी थी, पर उनका पहला काव्य सग्रह 'अनामिका' नाम से सन् १६२३ मे प्रकाशित हुआ था। 'अनामिका' विशुद्ध स्वच्छन्दतावादी कृति है। 'पचवटी' की स्वच्छन्द वनस्थली मे विहार करती हुई राम और सीता की प्रथम झाकी सौन्दर्य और वीरत्व के मिलन की ही परिचायिका है। प्रकृति की सौंदर्य-भूमि पर नारी की सुन्दर मूर्ति और वीर पुरुष का सग, इससे बढकर स्वच्छन्दतावाद के उपकरण और क्या होंगे? फिर लक्ष्मण की कुमार मूर्ति, सीता और लक्ष्मण की विनोदवार्ता और लक्ष्मण का मातृ-स्नेह सुख की परिपूर्णता का प्रतीक बन गया है। इसी अवसर पर शूर्पणखा का प्रवेश इस रोमैण्टिक परिदृश्य को सक्रियता देता है। अतत लक्ष्मण का भावात्मक

आदर्श और राम का दार्शनिक विवेचन इस नाट्य-रचना को परिपूर्णता प्रदानक रते हैं। यहाँ कही भी विक्षेप का स्वर नहीं। यदि हिन्दीसाहित्य मे स्वच्छन्दतावाद की किसी एक कृति को प्रतिनिधि रूप मे लेने का प्रश्न हो, तो बहुतो की दृष्टि निराला जी की पहली 'अनामिका' पर जायेगी।

निरालाजी की 'मतवाला' काल की रचनायें जो सन् २४ से २७ तक प्रणीत हुई थी, 'परिमल' सग्रह मे सन् १९३० मे प्रकाशित हुई। 'अनामिका' की प्रशात और प्रसन्न भावधारा मे कुछ नये तत्व जुडे। ओजस्विता, प्रखरता और प्रवेग की दृष्टि से 'परिमल' की कुछ रचनायें नूतन दिशा का सकेत करती हैं। 'जागो फिर एक बार', 'महाराज शिवाजी का पत्र', 'बादलराग', आदि ऐसी ही कृतियाँ हैं। साथ ही निराला जी की गीतसृष्टि भी यही से प्रारम्भ होती है। 'परिमल' के गीत प्रकृति सौंदर्य और ऋतु-सौंदर्य से सबन्धित है। 'यमुना' मे अतीत का स्वर्णस्वप्न समाया हुआ है। ये सब छायावाद या स्वच्छन्दतावाद की नई भूमियाँ है, जिनसे निराला जी का काव्य समृद्ध हुआ है। इन समस्त रचनाओ मे प्रयास की कृत्रिमता कही नही है। ये यौवन काल की आस्थामयी अभिव्यक्तियाँ हैं।

निराला जी की गीत रचनाओ का एक सग्रह 'गीतिका' नाम से सन् ३६ मे प्रकाशित हुआ। 'गीतिका', के गीत कुछ वर्ष पहले से ही लिखे जा रहे थे। उनका प्रकाशन कुछ विलब से हुआ। निरालाजी की प्राय सभी कृतियाँ अपने निर्माणकाल के कुछ वर्ष बाद ही प्रकाशित हुई। यद्यपि 'गीतिका' मे स्वच्छन्द भावभूमि पर कतिपय रचनाएँ भी है, कुछ ऋतु गीत भी है, किन्तु अधिकाश गीतो मे नारीसौंदर्य की मनोरम झाकियाँ ही मिलती हैं। यह शृगार सौंदर्य की निर्मल भूमि पर प्रतिष्ठित है और निरालाजी की वस्तुचित्रण की प्रतिष्ठा सर्वत्र अपनी झलक दिखाती जाती है। इन गीतो मे कही भी वैयक्तिक प्रणय-निवेदन नही है। छायावादी या स्वच्छन्दतावादी रचनाओ मे पतजी ने जो वायवीय वातावरण बनाया था, अथवा प्रसादजी ने विरहवेदना का जो पुट भरा था, वह निराला जी के इन प्रसन्न गीतो मे नही दिखाई देता। कदाचित इसीलिये आचार्य शुक्लजी ने निराला के काव्य मे वास्तविक स्वच्छन्दतावाद की स्थिति मानी है। 'गीतिका' म यत्रतत्र वे सघर्षात्मक अनुभूतियाँ हैं, जो आगे चलकर और भी प्रगाढ बन गई है और क्रमश उनके परवर्ती काव्य मे परिणत हो गई हैं। एक उदाहरण देना आवश्यक प्रतीत होता है।

"बहुवस्तु स्पर्शिनी प्रतिभा निराला जी मे है। 'अज्ञात प्रिय' की ओर इशारा करने के अतिरिक्त इन्होंने जगत के अनेक प्रस्तुत रूपो और व्यापारो को भी अपनी सरल भावनाओं के रग मे देखा है।"

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल . हिन्दी साहित्य का इतिहास,
दसवाँ सस्करण, पृ०—७१६, १७।

मैं बहुत दूर का थका हुआ
चल दुख कर श्रम-पथ, रुका हुआ
आश्रय दो आश्रम–वासिनी,
मेरी हो तुम्हीं सहारा ।
वह खुला न द्वार दिवस बीता,
हो गई निरर्थ सकल—गीता ।'[1]

● अनामिका (द्वितीय)

सन् १६३८ मे 'अनामिका' नाम से निरालाजी की एक दूसरी पुस्तक प्रकाशित हुई, जिसमे पहली 'अनामिका' के कोई अश नही हैं। इस दूसरी 'अनामिका' मे सामाजिक विद्रोह के भाव अधिक मुखर हुये हैं। 'प्रेयसी' (१६-१०-३५) कविता इसका उदाहरण हैं। 'रेखा' नामक रचना मे आत्मजीवनी के अश दिखाई देते हैं। जीवन के प्रति महान आस्था व्यक्त करने वाली और अवरोधों को पराजित करने वाली प्रगल्भ रचनायें हैं। हम कह सकते हैं कि ये कवितायें निरालाजी की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियो के सशक्त उदाहरण हैं। परन्तु इसी 'अनामिका' मे 'सरोज स्मृति' (६-१०-३५) जैसी वैयक्तिक जीवन से सबन्धित एक वेदनागाथा भी है। वनबेला (११-७-३७) जैसी सामाजिक वैषम्य पर आक्रोश प्रकट करने वाली कृति भी है। जिसमे एक अन्तर्व्याप्त करुणा की आभा प्रमुख हो गई है। इसी में राजनैतिक प्रवचना और विकृति का सकेत-स्वर भी मुखर हो उठा है। इन रचनाओ को देखकर यह स्पष्ट होने लगता है कि सन् ३५-३६ के आस पास निरालाजी के काव्य मे स्वच्छन्दतावादी तरलता के पश्चात एक नया भावगाभीर्य, सामाजिक और राजनैतिक वैषम्य के प्रति एक स्पष्ट आक्रोश उत्पन्न हो गया है। सन १६३७ मे लिखी गई 'तोडती पत्थर' शीर्षक कविता को समीक्षको ने निरालाजी के काव्य मे एक नई दिशा का आनयन करने वाली रचना कहा है। स्वर्गीय सौंदर्य से उतर कर पृथ्वी की कुरूपता की ओर दृष्टिपात इस कविता की मूलविशेषता है। शैली की दृष्टि की 'खुला आसमान' (६–१–३८) जैसी यथातथ्य चित्रण करने वाली प्रवृत्ति भी इस सग्रह मे उपलब्ध होती है।

● सक्रातिकाल : 'द्वितीय अनामिका,' 'तुलसीदास' और 'अणिमा'

सन् ३६ से' ३६ तक निराला का काव्य एक सक्राति की स्थिति को पार करता हुआ दिखाई देता है। एक ओर जहा वे स्वच्छन्द सौंदर्य-चेतना के क्षितिज से उतरकर मानवीय जगत के करुण और रौद्र दृश्यो का साक्षात्कार करते है वहाँ

---

१ निराला : गीतिका, गीत ५८, पृ० ६३।

दूसरी ओर वे 'राम की शक्तिपूजा' और 'तुलसीदास' जैसी उदात्त और आख्यानक कृतियों का आलेखन भी करते हैं। सामान्य दृष्टि से देखने पर ऐसा जान पड़ता है कि ये दोनों परस्पर-विरोधी प्रवृत्तियाँ हैं। पर निराला जी के व्यक्तित्व के साहचर्य में रखकर इन कविताओं को देखने से एक दूसरी धारणा बनती है। सन् १६ से ३५ तक निरालाजी की कविता एक समतल भूमि पर खड़ी दिखाई देती है। हल्की दार्शनिक आभा से आलोकित ये रचनायें स्वच्छंद शृंगार और प्रमोद की परिचायिका हैं। इस सम्पूर्णकाल में यद्यपि वैयक्तिक वेदना की प्रतिध्वनियाँ भी मिलती हैं, पर वे अत्यधिक विरल हैं और एक ओजस्विता के समारोह में विलीन हो गई हैं। परन्तु सन् ३६ के पश्चात् निरालाजी के काव्य की समतल भूमि खिसकती हुई प्रतीत होती है। एक ओर सांसारिक अनुभवों की कठोरता और दुर्निवारता उन्हें नग्न यथार्थ की गहराइयों में खींच रही है, तो दूसरी ओर निरालाजी की कल्पना 'तुलसीदास' तथा 'राम की शक्तिपूजा' (२३-१०-३६) जैसी कृतियों में आदर्शात्मक उड़ानें भरती हुई दृष्टिगत होती हैं। खिंचाव दोनों दिशाओं में है। नीचे की ओर भी, ऊपर की ओर भी। यद्यपि निराला जी की शक्तिमत्ता अब भी टूटकर बिखरी नहीं है, पर उस पर गहरे तनाव अवश्य आ गये हैं। जहाँ तक हम देख पाते हैं, उनकी 'राम की शक्तिपूजा' और 'तुलसीदास' दोनों ही प्रयाससाध्य रचनायें प्रतीत होती हैं। उनमें वह नैसर्गिकता नहीं है, जो उनकी ३५ तक की रचनाओं में भरपूर दिखाई देती है। भाषा की दृष्टि से, छंदों की दृष्टि से, कल्पनाओं की दृष्टि से, एक प्रच्छन्न कृत्रिमता का आभास मिलने लगता है। अनेक समीक्षकों ने कुछ बाहरी चिन्हों को देखकर इन रचनाओं को गंभीर और उदात्त ही नहीं, निराला की अप्रतिम काव्य-सृष्टि भी कहा है, परन्तु ऊपर संकेत की गई इन रचनाओं की आयास साध्य निर्मिति तथा इनकी पांडित्यमयी भाषा आदि के कारण इनमें वास्तविक औदात्य कदाचित् उभर नहीं पाया। इनकी साज सज्जा उदात्त है, परन्तु इनका अंतरंग निरालाजी की पूर्ववर्ती रचनाओं की भांति परिपुष्ट नहीं है। उनमें एक मंथरता और शैथिल्य भी दृष्टिगत होता है। इस प्रसंग पर अधिक विस्तार से विचार करने का अवसर हम आगे के विवेचन में प्राप्त होगा। यहाँ इससे अधिक कहना आवश्यक नहीं। इस प्रकार द्वितीय 'अनामिका', 'तुलसीदास' (१६३८) और 'अणिमा' (१६३६-४३) निराला जी की संक्रांतिकालीन रचनाएँ हैं, जिन्हें हम उनकी जीवनी और व्यक्तित्व की भूमिका पर छाया की कृतियाँ कह सकते हैं। इनमें छाया प्रकाश के दोहरे रंग दिखाई देते हैं।

इसके अनन्तर निरालाजी का काव्य नैशागम की सूचना देता है। निश्चय ही यह उनके भीतर की टूटती हुई शक्ति का परिचायक है। यद्यपि इस नैशकाल में चांदनी रात की शोभा और सुषमा भी प्रतिफलित हुई है, परन्तु ऐकांतिकता और आत्मसमर्पण की निराशामयी प्रवृत्तियां भी गहरी होकर व्यंजित हुई हैं। समीक्षकों

ने निरालाजी के परवर्ती काव्य मे यथार्थवादी प्रकाश भी देखने का प्रयत्न किया है, पर व्यक्तित्व-विकास की दृष्टि से निरालाजी का यह तथाकथित यथार्थवाद भी एक प्रतिक्रिया के रूप मे ही प्रकट हुआ है। इसमे व्यग्य हैं, विनोद है, विडम्बना है, कटु सत्य की अभिव्यक्ति है, परन्तु ये समस्त प्रवृत्तियाँ किसी उन्मुक्त व्यक्तित्व की परिचायक नही है। ऐसी रचनाओ की सख्या भी अधिक नही है। क्योकि इस काल मे निराला जी ने शात और करुण रस के गीत ही अधिक लिखे हैं। ये गीत ही निरालाजी के परवर्ती काव्य की मुख्य धारा का प्रतिनिधित्व करते हैं, बीच-बीच मे आई हुई दूसरे प्रकार की रचनाएँ उस प्रशात मानस मे हल्के उद्वेलन ही उत्पन्न कर पाती है। अतएव जो लोग निरालाजी के इस परवर्ती काव्य को यथार्थवादी सज्ञा देते हैं, वे निरालाजी के प्रति सच्चा न्याय नहीं करते।

● परवर्ती काल 'कुकुरमुत्ता'

सन् १९४२ म प्रकाशित उनकी 'कुकुरमुत्ता' काव्यरचना कुछ समय पहले मासिक पत्रिकाओ मे प्रकाशित हो चुकी थी। इसमे दो भाग हैं, जिनमे पहला भाग काव्य की दृष्टि से अधिक सुन्दर है। यह दूसरे भाग से कई मास पूर्व लिखा गया था। इस काव्यरचना मे निराला जी टी० एस० इलियट की सदर्भ गर्भित शैली से प्रभावित हुए थे। जिस प्रकार इलियट के लिए कहा जाता है कि उसकी 'वेस्ट लैंड' कृति मे इतना पाडित्य है, इतना सक्षेपीकरण है, इतने अधिक 'एल्यूजन्स' या सकेत हैं इतना गम्भीर आशय है, इतनी गहन करुणा है कि उसे आज के युग का महाकाव्य भी कहा जा सकता है। निरालाजी इन चर्चाओ को सुन चुके थे। इसीलिए उन्होने 'कुकुरमुत्ता' मे कई स्थानो पर ऐसे अपरिचित और गूढ सदर्भ दिये हैं जिनका अर्थ समझने मे गभीर अध्ययन आवश्यक होता है। उदाहरण के लिये—

> मैं कुकुरमुत्ता हूँ
> पर बेनजोइन (Benzoin) वैसे,
> बने दर्शन शास्त्र जैसे।
> ओमफलस (Omphalos) और ब्रह्मावर्त
> वैसे ही दुनियाँ के गोले और पर्त।[1]

जिस तरह भारतीय दर्शन का परिचय हुए बिना इलियट की "दत्त। दयध्वम्। दम्यत।" की शब्दावली नही समझी जाती, या 'शाति, शातिः शाति.[2]

---

१ निराला कुकुरमुत्ता (द्वितीय सस्करण), पृ० ६–७

2 T. S. Elliot Waste Land, lines—432, 433.
"Datta Dayadhvam Damyata.
Shantih Shantih Shantih"

का वाक्य किसी अंग्रेज पाठक के लिए निरर्थक हो जाता है, वैसे ही निराला जी के 'कुकुरमुत्ता काव्य' के कुछ स्थलो को पाश्चात्य दर्शन की जानकारी के बिना समझा नही जा सकता। पूरे 'कुकुरमुत्ता' काव्य मे अतिशयोक्ति और अतिरंजना के माध्यम से हास्य और विनोद की सृष्टि की गई है। कुकुरमुत्ता अपनी अहमन्यता मे अपने को बडे-बडे उपमान दे देता है। आत्मप्रशसा की भूमिका पर वह ससार की सर्वश्रेष्ठ कलाकृतियो को भी मात कर देता है। परन्तु एक प्रच्छन्न व्यग्य द्वारा निराला के 'कुकुरमुत्ता' के आत्मप्रलाप पाठक के लिए आद्यन्त एक विनोद-भावना ले आते हैं। यद्यपि प्रगतिवादी समीक्षको ने 'कुकुरमुत्ता' की काव्यकृति को सर्वहारा वर्ग के उत्कर्ष का व्यजक माना है ; परन्तु तटस्थ दृष्टि से इस काव्य का अनुशीलन करने वाले सभी सहृदय इस रचना मे कुकुरमुत्ता के मिथ्या गर्व की प्रतीति पाये बिना नही रह सकते। निराला का आशय यह है कि 'कुकुरमुत्ता' (सर्वहारा का प्रतिनिधि)अपने को गुलाब (सास्कृतिक तथ्य का प्रतीक) से चाहे कितना ऊँचा घोषित करे, परन्तु दुनियाँ समझती है कि गुलाब गुलाब है और कुकुरमुत्ता कुकुरमुत्ता। हमे खेद के साथ कहना पडता है कि इस कविता की जितनी व्याख्यायें अब तक हुई हैं, और इसके बल पर विशेषत. प्रगतिवादियो ने जिस मुखरता के साथ निरालाजी को अपनी जमात मे लेने का प्रयत्न किया है, उस समस्त प्रयास मे साहित्यिक शैलियो और व्यजनाओं की नासमझी का ही इजहार हो पाया है। निराला के परवर्ती काव्य का अधिक विवरण पूर्ण अध्ययन करते हुये हम फिर इस विषय पर लौटेंगे।

● 'बेला' और 'नये पत्ते'

निराला जी की 'बेला' काव्य रचना सन् ४३ के आसपास लिखी गई थी, किन्तु इसका प्रकाशन कुछ विलब से हुआ। इसमे कुछ स्वतन्त्र गीतों के अतिरिक्त अधिकतर गजल शैली की रचनायें हैं जिन्हे निराला जी ने उर्दू के अनुकरण मे लिखा है। इस सग्रह की सबसे बडी विशेषता इसकी बदली हुई भाषा और इसके उर्दू छन्द हैं, जिसके कारण इसे प्रयोगशील कृति के रूप मे देखा गया है। उर्दू गजलो का चमत्कार लाने के लिए निरालाजी ने उर्दू काव्य की अलङ्कृतियों और मुहावरो का भी प्रयोग किया है।

चढी हैं आखें जहा की, उतार लायेंगी।
बढ़े हुओ को गिराकर, सवार लायेंगी[1] ॥

परन्तु इस प्रकार के प्रयोगो के द्वारा निराला जी टकसाली उर्दू गजलों की कारीगरी को नहीं पा सके हैं और यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि हिन्दी की भूमि पर उर्दू के मुहावरेदानी और तराश लाना सभव भी नहीं है। यह दो भाषाओं की

---

१ निराला बेला-पृ० ५८।

प्रकृति और परम्परा का अन्तर है। 'वेला' की भाषा में निराला जी के तीन प्रकार के प्रयोग मिलते है। कुछ तो संस्कारवश संस्कृत की पदावली आई है, परन्तु निराला जी का अधिकांश झुकाव या तो ठेठ हिन्दी या उर्दू मिश्रित हिन्दी की ओर रहा है। ठेठ हिन्दी की रचनायें अपेक्षाकृत अच्छी उतरी है।

हँसी के तार के होते हैं ये बहार के दिन
हृदय के हार के होते हैं ये बहार के दिन[1]

लेकिन जिन पदों में निरालाजी ने या तो हिन्दी-उर्दू को मिलाने का उपक्रम किया है अथवा खालिस उर्दू की कोशिश की है, वहा वे आंशिक रूप से ही सफल हुये हैं। कभी भी २-४ पक्तियों से आगे बढ़कर निरालाजी खालिस उर्दू का निर्वाह नही कर सके हैं।

निगह तुम्हारी थी,
दिल जिससे बेकरार हुआ;
मगर मैं गैर से मिलकर
निगह के पार हुआ[2]

चार पंक्तिया लिखने के बाद निरालाजी हिन्दी-उर्दू के मिश्रण पर आते है और लिखते हैं–

अधेरा छाया रहा
रोशनी की माया मे
कही भी छाया का आचल
न तार तार हुआ

और फिर अगली चार पक्तियो मे सस्कृत और उर्दू की बेमेल खिचड़ी भी पकाते है–

वही नवीना सजी और,
वही बजी वीणा
शराबो प्याले का अब तक
न बहिष्कार हुआ।

इसी कारण निरालाजी के 'वेला' संग्रह को एक नये प्रयोग के अतिरिक्त अधिक नही कहा जा सकता। परन्तु इसी काव्य-संग्रह मे निरालाजी ने हिन्दी शैली के कुछ सधे हुए गान भी लिखे हैं, जिनकी तुलना उनके श्रेष्ठतम गीतों से की जा सकती है। इनमे उनकी नैसर्गिक अनुभूति का सहज विन्यास है।

---

१ निराला, बेला: पृ० २३।
२ वही, पृ०२६।

रूप की धारा के उस पार
कभी धसने भी दोगे मुझे ?
विश्व की श्यामल स्नेहसवार
हसी हँसने भी दोगे मुझे ?[१]

कुल मिलाकर 'बेला' काव्य-सग्रह निराला की काव्य-प्रतिभा का एक अनोखा स्फुरण मात्र है ।

सन् १६४६ में निराला जी की 'नये पत्ते' शीर्षक पुस्तक प्रकाशित हुई। जिसमे अधिकतर उनके व्यग्यात्मक पद्यो का सग्रह है । 'देवी सरस्वती' नाम की एक लम्बी कविता इस मुख्य प्रवृत्ति का अपवाद है । निरालाजी की व्यग्यात्मक कृतियों मे भी अन्तर्विनोद की ध्वनि रहा करती है । इसीलिये उनकी ऐसी रचनाओ से हास्य-रस का सृजन हो जाता है । इन स्फुट रचनाओ मे कुछ मे व्यग्य और कुछ मे हास्य का पल्ला भारी हो गया है । पर दोनो का किसी न किसी अनुपात मे मिश्रण प्रत्येक रचना मे है। 'नये पत्ते' मे 'स्फटिकशिला' नाम की एक प्राकृतिक पृष्ठभूमि की लम्बी कविता भी है । पर चित्रकूट जैसी रमणीक और प्राचीन स्मृतियो से आलोकित वनस्थली के वर्णन मे भी निरालाजी ने व्यग्यात्मक दृष्टि ही अपनाई है । जब हम यह विचार करते है कि 'प्रेयसी' (१६-१०-२५) और 'वनवेला' (११-७-३७)जैसी पूर्ववर्ती रचनाओ मे निराला जी ने प्राकृतिक सौंदर्य-छवियो को उनके समस्त गौरव मे आलेखित किया है, तब 'स्फटिक शिला' की यह लम्बी कृति अपने कुरुप यथार्थ के वर्णनो द्वारा एक विरोधाभास की सृष्टि करती है । इसे लोग यथार्थवाद का प्रभाव कह सकते हैं । निश्चय ही वह निराला जी की बदली हुई दृष्टि की परिचायक है । परन्तु इस बदली हुई दृष्टि मे निराला के व्यक्तित्व का विघटन ही दिखाई देता है । कोई यथार्थवादी कवि भी चित्रकूट की इस सुरम्य छटा का वर्णन करते हुए इतना - व्यग्यात्मक बाना ग्रहण करने मे हिचकेगा । यदि उसे व्यग्य ही करना होगा, प्रकृति की रूक्षता ही दिखानी होगी, मनुष्य की दरिद्रता का ही परिचय देना होगा, तो वह किसी दूसरे प्रसग को चुनेगा ।

इसी प्रकार की एक अन्य रचना है जिसमे एक ग्रामीण नारी का तालाब में स्नान करते समय का दृश्य दिखलाया है । इस नारी की 'खजोहरा' के ससर्ग से जो दुर्गति दिखाई गई है, वह यथार्थवाद की सारी सीमाओ का उल्लघन कर गई है । यथार्थवाद का अर्थ, यदि किसी निरीह नारी की दुर्दशा दिखाना हो तो इस कविता को अवश्य हम यथार्थवादी कहेंगे । पर हमारी दृष्टि मे ये रचनायें यथार्थवाद के सच्चे स्वरूप को प्रस्तुत नहीं करतीं । इनकी अपेक्षा इस सग्रह की छोटी छोटी रचनाय

१ निराला बेला पृ० १०

'रानी और कानी', 'मास्को डायलाग्स', 'गर्म पकौडी', 'प्रेम सगीत' 'झीगुर डटकर बोला' और 'महँगू महँगा रहा' जैसी सरल कृतियाँ अधिक आकर्षक हैं। 'नये पत्ते' मे 'कैलाश मे शरत्' शीर्षक एक अन्य रचना भी आई है जिसमे निराला जी की काल्पनिक कैलाश यात्रा एक फण्टेसी या अतिकल्पना के रूप मे प्रस्तुत की गई है। ऐसी रचनाओ मे निराला के व्यक्तित्व मे आने वाले विक्षेप की झलक दिखायी देती है।

'अर्चना, आराधना और गीतगुज'

'नये पत्ते' के सामाजिक व्यग्यो और 'बेला' की गजल शैली को पार कर निरालाजी अपनी अतिम तीन पुस्तको 'अर्चना' 'आराधना' और 'गीतगुज' मे क्रमश आत्मगत होते गये हैं। बहिर्जगत से उनका सबध छूटता गया है और वे प्रणति निवेदन की भूमिका पर आ गये है। जैसा कि हम ऊपर कह चुके है, निरालाजी की काव्य-रचना का परवर्ती काल यद्यपि कुछ समीक्षको द्वारा यथार्थवादी भावधारा का काल कहा गया है, पर वस्तुत देखा जाय तो निराला की वस्तुमुखी कविताएँ सख्या और मात्रा मे थोडी ही है। जहाँ तक यथार्थवाद के दार्शनिक पक्ष का प्रश्न है, निरालाजी ने भौतिकवादी दर्शन को कही भी नही अपनाया। जहा तक उनकी सामाजिक दृष्टि है वे आरम्भ से ही मानवतावादी रहे हैं। सासारिक दु ख-दैन्य से ग्रस्त मनुष्यो और वर्गो के प्रति उनकी सदैव सहानुभूति रही है। इस मानवतावादी दर्शन की प्रेरणा उन्हे उस उच्चतर अद्वैतवादी दर्शन से मिलती रही है जिसका वर्तमान रूप मे रामकृष्ण परमहस और विवेकानन्द आदि ने परिष्कार किया है। गाधीजी के द्वारा ग्रामीण जनता और अछूतो के उन्नयन का जो अनेकश प्रयत्न हुआ है, वह भी निराला की मानवतावादी चिता-धारा मे सनिहित है। इस प्रकार जो समीक्षक उन्हे नये सिरे से यथार्थवादी ठहराना चाहते है, उन्हें निराला की कृतियो का फिर से अध्ययन करना चाहिये। जहाँ तक शैली का सबध है, निरालाजी आरम्भ से ही नानाविध शैलियो का प्रयोग करते रहे हैं। इसलिये यदि उन्हाने अपनी परवर्ती रचनाओ मे यत्रतत्र यथातथ्य चित्रण की शैली अपनाई है, तो यह भी उनका एक प्रयोग ही है और उसके कारण उन्हे यथार्थवाद का परिष्कर्त्ता नही कहा जा सकता।

कुल मिलाकर उनकी परवर्ती कविता मे पूर्ववर्ती कविता से कुछ ही नये मौलिक तथ्य मिलते हैं। एक नया तथ्य है व्यग्य और विनोद की प्रवृत्ति। उन्होने केवल उच्चवर्गो पर ही व्यग्य नही किया है। सामान्यजनो और उनकी प्रवृत्तियो पर भी अनेक बार व्यग्य किये हैं। इसलिये इस व्यग्यात्मकता के कारण निरालाजी को प्रगतिवादी करार कहना केवल साम्प्रदायिक दुराग्रह है। प्रगतिवादी तो वे आरम्भ से ही रहे हैं। दूसरा मौलिक तथ्य जो परवर्ती कविताओ मे दिखाई देता है,

उनके व्यक्तिगत अनुभवो और जीवन-सघर्ष से सम्बन्धित है। वे क्रमश: सौंदर्य और उदात्त सकल्पो की भूमिका से हटकर जीवन की कुरूपता और उसके वैषम्य के दर्शन करने लगे थे। किन्तु क्या इस बदली हुई दृष्टि को हम प्रगतिवादी दृष्टि कह सकते हैं ? यह तो निराला के व्यक्तित्व की पराजय से सम्बन्धित दृष्टि ही कही जायगी। एक तीसरा परिवर्तन भाषा सबधी है। पूर्ववर्ती काव्य की भाषा म एक स्वाभाविकता और समरसता है। कही भी सस्कृत-बहुल प्रयोगो के साथ उर्दू या फारसी का मिश्रण नही किया गया है और जहा कही है भी, वहा वह काव्य की स्वाभाविक गति से सबद्ध और सयुक्त है, परन्तु उनकी परवर्ती कविताओ मे, विशेषकर उनकी उर्दू शैली की गजलों मे सस्कृत और फारसी का योग चिन्त्य हो गया है। ऐसे उदाहरणो मे हम भाषा का सफल प्रयोग नहीं देखते। इस सम्बन्ध की अधिक चर्चा हम यथास्थान करेंगे।

एक ही तथ्य जो निराला के परवर्ती काव्य मे महत्वपूर्ण दिखाई देता है, भाषा को सरलता की ओर ले जाने का है। अपनी मुक्तक रचनाओ मे प्रवाह की सम्यक योजना के लिये निरालाजी बोलचाल की शिष्ट भाषा का प्रयोग पहले से करते चले आ रहे थे। परन्तु अपने आरम्भिक गीतो में उन्होंने अधिकतर सस्कृत बहुल भाषा और सामासिक पदावली का प्रयोग किया है। इस प्रकार के प्रयोगो के कारण उनके गीत कुछ लोगो को दुर्बोध भी प्रतीत हुये है।[1]

अपने परवर्ती गीत 'अर्चना' 'आराधना' और 'गीतगुज' म उन्होंने भाषा को नया मोड दिया है। इन गीतो मे अपवादो को छोड़कर भाषा सरल हो गई है और बीच बीच म सुन्दर मुहावरो का साहचर्य पा गई है। निश्चय ही यह निराला के परवर्ती काव्य की उपलब्धि है। इन गीत रचनाओ मे सुन्दर मुहावरो के साथ कहीं-कहीं लोकजीवन मे फैले हुये सुन्दर और अर्थ-व्यजक शब्दो का प्रयोग भी हुआ है। इससे कविता मे नई प्राणशक्ति आ गई है। निराला के आरम्भिक गीतो मे इस प्रकार के जन जीवन मे व्याप्त भाषा प्रयोग नही के बराबर थे।

---

१ (क) "निरालाजी की भाषा अधिकतर सस्कृत की तत्सम पदावली से जुडी हुई होती है जिसका नमूना 'राम की शक्तिपूजा' म मिलता है। जैसा पहले कह चुके हैं, इनकी भाषा मे व्यवस्था की कमी प्राय रहती है जिससे अर्थ का भाव व्यक्त करने मे वह कही-कही बहुत ढीली पड जाती है।"

—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ७१६।

(ख) "स्फुट गीतों मे निराला को ऐसा अवकाश नही मिलता। गीतिका के गीत ठूठ हो गये हैं और दुर्बोध तो हैं ही।"

—आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी . हिन्दी-साहित्य, पृ० ४६६।

'अर्चना' की भूमिका में निराला जी कहते हैं, "अर्चना का अंतरंग विषय यौवन से अतिक्रांत कवि के परलोक से संबद्ध है, इसलिये यहाँ सम्मति का फल निष्काम मे ही होगा।[१] इतना ही नहीं, वे आगे यह भी कहते हैं कि 'अर्चना' के विषय मे प्राचीन परंपरा से इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि—

भाव कुभाव अनख आलसहू;
राम जपत मंगल दिशि दसहू।[२]

इन उद्धरणो से यह स्पष्ट होता है कि निराला जी शृंगारिक और सौन्दर्य-काव्य की भूमिका को छोड़कर विनय और आत्म-साधनाप्रधान काव्य-रचना में प्रवृत्त हुये हैं। इतना कहना होगा कि इन समस्त रचनाओ मे निराला का काव्य-सौष्ठव, उनका संगीत-ज्ञान उनकी लयप्रियता सर्वत्र देखे जाते हैं। प्रारम्भिक गीतों की अपेक्षा इनमे भाषा की और भी मितव्ययिता है। 'गीतिका' के गीतों मे जो कार्य समास-गुफित पदावली के द्वारा लिया गया था, वह 'अर्चना' मे भाषा के अधिक संयमित और अर्थप्रवण प्रयोगों द्वारा लिया गया है। इस विषय की विस्तृत चर्चा हम आगामी प्रकरणों मे करेंगे।

'अर्चना' मे कही-कही अनुप्रास की ऐसी प्रवृत्तियो का भी परिचय मिलता है जो निराला के मानसिक विक्षेप का आभास देती है। उदाहरण के लिये—

अपने चक्कर से कुल कट गये,
काम की कला से दृढ हट गये,
छापे से तुम्ही निपट पट गये,
उलटा जो सीधा डेरा था।[३]

अथवा

कांत है कान्तार दुर्मिल,
सुघर स्वर से अनिल ऊर्मिल,
मीड से धात-मोह धूमिल।[४]

परन्तु ऐसे चित्य प्रयोगो की संख्या अधिक नही है। उल्टे बहुत ही आकर्षक और व्यंजक प्रयोगो की भी भरमार है।

हरिण-नयन हरि ने छीने हैं।
पावन रग रग-रग भीने है।[५]

---

१ निराला : अर्चना की स्वयोक्ति।
२ वही,
३ निराला: अर्चना (गीत ५८), (रचना ६-२-५०)
४ वही, (७३) गीत (रचना १०-२-५०)
५ वही, (गीत ६०) (रचना १४-२-५०)

अथवा

गगन-गगन है गान तुम्हारा
घन-घन जीवन यान तुम्हारा[1]

आदि पक्तियों के शब्द-बद श्रेष्ठ प्रतिभा के परिचायक हैं।

'आराधना' काव्य पुस्तक 'अर्चना' का ही अग्रिम रूप है। वही भाव, वही भाषा, वही विषय, वही शैली। शब्द-योजना मे चमत्कार की वृद्धि हुई है।

छलके-छलके पैमाने क्या
आये वेमाने माने क्या।
हलके-हलके हलके न हुए
दलके-दलके दल के न हुए,
उफले-उफले फल के न हुए,
वेदाने थे तो दाने क्या ?[2]

इस प्रकार की पक्तियाँ गहरे पैठने पर ही अपना अर्थ दे सकती है; परन्तु सामान्य पाठक को इसका आशय पाने मे कठिनाई होती है। ऐसी शब्द-योजनाएँ कवि की भाषा-शक्ति की परिचायक भले हो हो, उसकी विक्षिप्तावस्था का सकेत भी करती हैं।

निरालाजी का प्रिय विषय ऋतु-वर्णन उनकी प्राय· सभी कविता-पुस्तकों मे आया है। उनके गीतबद्ध ऋतुचित्र हिन्दी मे अनुपम कहे जा सकते हैं। 'परिमल' से लेकर 'आराधना' और 'गीत-गुज' तक के उनके ऋतुगीतों पर एक स्वतन्त्र निबध लिखा जा सकता है।

सखि, वसत आया
भरा हर्ष बनके मन
नवोत्कर्ष छाया[3]

जैसी आरम्भिक रचनाओ मे ऋतुसौंदर्य के साथ भावना का उत्कर्ष बडे सुन्दर ढग से वँधा हुआ है। उनके परवर्ती ऋतुगीतो मे अलकारिता और विशेषकर शब्दक्रीडा अधिक मिलने लगती है।

बादल वे बदल गये
कटे छटे नये-नये

---

१ निराला : अर्चना, गीत–१०३ (रचना १४–८–५०)
२ वही, आराधना गीत–३० (रचना १४–११–५२)
३ वही, गीतिका, गीत–३ (रचना १९२८)

नभ मे आये, उनये,
बद हुई पुरवाई।
जुही आनबान भरी,
चमेली जवान परी,
मालती खिली निखरी,
शीत हवा सरसाई।[1]

आदि में शब्दो की लघिमा तो है, परन्तु

रूखी री यह डाल
वसन वासन्ती लेगी[2]

जैसी प्रारम्भिक ऋतु रचनाओ का समन्वित भाव सौदर्य घटता दिखाई देता है।

'आराधना' में निरालाजी की वैयक्तिक भक्ति-भावना अधिक प्रगाढ हो गई है, जिससे उनके गीतो मे शात और करुण रस का गहरा पुट मिलने लगता है। यह सत्य है कि इन गीतो मे निरालाजी की मानवतावादी भूमिका भी स्थान-स्थान पर उभरी है।

रग रग से यह गागर भर दो,
निष्प्राणों को रसमय कर दो।
माँ, मानस के सित शतदल को
रेणु-गध के पख खिला दो
जग को मगल मगल के पग
पार लगा दो, प्राण मिला दो,[3]

जैसी पक्तियों मे सामूहिक सवेदना की गहरी झलक है। परन्तु इसके अधिकतर गीतो मे निराला की व्यक्तिगत विनय, सरक्षण-कामना और प्रपत्ति का ही प्रसार मिलता है।

'आराधना' के पश्चात् निरालाजी का अतिम गीत सग्रह 'गीतगुज' (प्रथम सस्करण) सन् १९५४ मे प्रकाशित हुआ। वस्तुत 'अर्चना', आराधना और गीतगुज के गेयपद एक ही मनोभावना और एक ही काव्यकौशल के परिचायक हैं। ये तीनों रचनाएँ मूलत निरालाजी की आत्मसमर्पण या प्रपत्ति-भावना की प्रतिनिधि हैं, जो

---

१ निराला : आराधना-गीत २३ (रचना १९-९-५२)
२ निराला . गीतिका-गीत १४ पृ० १६।
३ निराला : आराधना-गीत ८ (रचना २६-८-५२)

सभवतः उनके बढते हुए शारीरिक और मानसिक विकारो के उपचार रूप मे लिखी गयी हैं।

सुख का दिन डूबे डूब जाय
तुम से न सहज मन ऊब जाय[1]

अथवा

पार-पारावार जो है, स्नेह से मुझको दिखा दो
'रीति क्या, कैसे नियम, निर्देश कर करके सिखा दो।[2]

जैसी कविताएँ किसी अलौकिक शक्ति के प्रति आत्म-निवेदन के रूप मे प्रस्तुत की गई हैं। परन्तु गीतगुज मे निरालाजी की सारी रचनाओ मे व्याप्त प्रकृति-सौंदर्य के प्रति आकर्षण का भाव बना हुआ है। ऋतु वर्णन सम्बन्धी गीत निरालाजी अपनी अस्वस्थावस्था मे भी लिखते ही थे। कदाचित् प्रकृति की रमणीयता ही उन्हे आश्वासन देती रही थी। यही एक प्रवृत्ति थी, प्रकृति के प्रति सहज सम्बन्ध की, जो निराला की कविताओं मे आदि से अन्त तक पाई जाती है। नारी-छवि का वर्णन भी अब छूट गया, किन्तु प्रकृति और ऋतुओ का विमोहन अन्त तक उनके मानस से दूर नही हुआ।

पडी चमेली की माला कल।
गमक उठा निशि का नभमडल।
कूजे कठ, उठे आनतमुख,
मिले लोग अपने व्याकुल सुख,
स्वर्गाभास हुआ जग का दुख,
तारों के नभ, हारो के गल।[3]

इन पक्तियो को पढ़ने से ऐसा जान पडता है कि निरालाजी अपने यौवन-काल के प्रकृति-गीतो का नया सस्करण तैयार कर रहे हैं।

श्याम-गगन नव-घन मडलाए।
कानन गिरि वन आनन छाये

---

१ निराला गीतगुज (प्रथम सस्करण), पृ० ४७ (रचना १४-११-५२)
२ निराला वही ,, पृ० ६३ (रचना १७-११-५२)
३ निराला वही (द्वितीय परिवर्द्धित सस्करण) पृ० ४०
(रचना २४-१०-५४)

लदे बाग आमो के परसे,
धानो के खेतो पर बरसे,
युवती निकली अपने घर से,
पुरवाई के झोके खाये।[1]

यह भी उल्लेखनीय है कि हाल की रचनाओ मे यत्रतत्र शाब्दिक क्रीडा और विचित्र अनुप्रासो का बढता हुआ योग पाया जाता है। परन्तु जहाँ तक प्रकृति-सौंदर्य की रचनाओ का सम्बन्ध है, उनमे इस प्रकार की कृत्रिमता या विक्षेपावस्था नही पाई जाती। इससे यह सूचित होता है कि प्रकृति के सौंदर्य के प्रति निरालाजी के सस्कार इतने प्रबल हैं कि प्रकृति वर्णन का अवसर मिलते ही उनकी कल्पना पर से सारे विकार दूर हो जाते हैं और वे स्वस्थ सृष्टियाँ करने लगते हैं।

भाषा की सरलता, अनुप्रासो का आधिक्य, नये और सटीक मुहावरे जो उनकी परवर्ती कविता म बहुतायत से पाये जाते हैं, 'गीतगुज' मे भी मौजूद हैं। उनमे से अधिकाश तो उनके समृद्ध और लोक-जीवन के समीप पहुँचने वाले भाषा अधिकार के परिचायक हैं, पर कुछ अनुप्रास योजना ऐसी भी है, जो उनकी असतुलित मानसिक स्थिति की सूचना देती है। यदि निरालाजी के मानसिक विक्षेप की क्रमिक गतिविधि का परिचय उनके भाषा प्रयोग से किया जाय, तो हम कुछ उपयोगी निष्कर्षों पर पहुँच सकते हैं। यह प्रयत्न हम आगे के अध्यायो मे करेंगे।

निरालाजी के काव्य के विकासक्रम को दिखाते हुए ऊपर हमने उनके पूर्ववर्ती काव्य और परवर्ती काव्य की साधारण आधार भूमियो को देखने का प्रयत्न किया है। अब हम उनके पूर्ववर्ती काव्य और परवर्ती काव्य की भिन्नता का अधिक स्पष्ट रूप से उल्लेख करना चाहेगे।

● शैलीगत अन्तर

शैली के अन्तर्गत हम भाषा प्रयोग, छद योजना तथा काव्य के बाह्य प्रकाशन सम्बन्धी तत्वो को ले सकते हैं। निराला के पूर्ववर्ती काव्य की सबसे प्रमुख शैलीगत विशेषता, भाषा की गतिशीलता और प्रवाहमयता है। उद्दाम और प्रबल भावावेगो को प्रकट करने के लिये कोई सुचिन्तित शब्द योजना या भाषा प्रयोग सम्भव नही होता। निराला की आरम्भिक भाषाशैली इस बात का प्रमाण देती है कि उसमे स्वाभाविकता का सबसे बडा गुण है। वे इन रचनाओ मे शक्तिशाली शब्दावली का सगठन और परिष्कार, उसका अन्य भाषा के पृथक और अमिश्रित रूप, सक्षेप मे जिसे हम भाषा की अरिस्ट्रासेसी या आभिजात्य कह सकते हैं, निराला के पूर्ववर्ती

---

१ निराला गीतगुज (द्वितीय परिवर्द्धित सस्करण), पृ० ३२
(रचना– १५–८–५४)

काव्य की विशेषता नही है। आवश्यकतानुसार निरालाजी तीन प्रकार के भाषा रूपो का प्रयोग करते रहे हैं। (१) सस्कृत-बहुल सामासिक भाषा (२) हिन्दी और सस्कृत मिश्रित प्रवाहपूर्ण भाषा और (३) हिन्दी और उर्दू मुहावरो से मिली स्वाभाविक भाषा। इन तीनो का एक एक उदाहरण देना अप्रासगिक न होगा।

(१) संस्कृत समन्वित सामासिक भाषा : 'यमुना के प्रति' शीर्षक कविता की ये पक्तियां :

मत्त-भृ ग-सम सग सग तम—
तारा मुख्य-अम्बुज-मधु-लुब्ध,
विकल विलोडित चरण अक पर
शरण-विमुख नूपुर उर-क्षुब्ध,
वह सगीत विजय मद-गर्वित
नृत्य-चपल अधरो पर आज,
वह अजीत-यगित मुखरित-मुख
कहाँ आज वह सुखमय साज ?[१]

(२) संस्कृत-हिन्दी-मिश्रित प्रवाहपूर्ण भाषा के लिये 'पचवटी-प्रसग' की कुछ पक्तियाँ देखिये—

लक्ष्मण—जीवन का एक ही अवलम्ब है सेवा,
है माता का आदेश यही,
माँ की प्रीति के लिये चुनता हूँ, सुमन दल-
इसके सिवा कुछ भी नही जानता—
जानने की इच्छा भी नही है कुछ।
माता की चरण-रेणु मेरी परम शक्ति है—
माता की तृप्ति मेरे लिये अप्ट सिद्धियाँ—
माता के स्नेह-शब्द मेरे सुख-साधन हैं।
धन्य हूँ मैं ,[२]

(३) उर्दू हिन्दी के मुहावरों से मिली भाषा के लिए 'महाराजा शिवाजी का पत्र' की कुछ पक्तियाँ इस प्रकार हैं—

धोखा दिया है यह
उसने तुम्हें क्या ही !—

---

१ निराला परिमल—यमुना के प्रति पृ० ५६, (रचना—१६२२)
२ " " पचवटी प्रसग-२, पृ० २४२

दगाबाज लाज जो उतारता है
मरजादवालो की,
खूब बहकाया है तुम्हें।
सोचता हूँ अपना कर्तव्य अब—
देश का उद्देश,
पर क्या करू मैं,
निश्चय कुछ होता नही—
द्विधा मे पडे हैं प्राण।
अगर मैं मिलता हूँ,
'डर कर मिला है'
यह शत्रु मेरे कहेंगे।
नही यह मर्दानगी।[1]

भाषा-सम्बन्धी इन तीनो शैलियो में निरालाजी का मुख्य ध्यान विषय के अनुरूप भाषा का चयन करने मे रहा है। इस प्रेरणा से जहा सास्कृतिक प्रसग आये हैं, वहाँ भाषा सस्कृत बहुल हो गई है। जहाँ पर शृगारिक भूमिका आई है, वहाँ भाषा मे अपेक्षाकृत हिन्दी और सस्कृत का अधिक सुन्दर मिश्रण हुआ है, जिससे भाषा मे शिष्टता बनी हुई है, वह पाठको के अधिक समीप आ गई है। इन रचनाओ मे कवि की भाषा-चयन की क्षमता कभी भी बाधित नही हुई है। तृतीय प्रकार की रचनाओ मे अधिकतर वीररस का काव्य आता है। इसमे भाषा और भी सामान्य स्तर पर पहुँच गई है और हिन्दी, सस्कृत और उर्दू के शब्द-पुष्प एक ही भाषा मे गुथे हुये हैं।

भावागत इन तीन भेदो के रहते हुये भी, रचनाओ मे भाषा प्रयोग सम्बन्धी कृत्रिमता दिखाई नही देती। इसका मूल कारण प्रयोगो की विषयानुरूपता ही है। जिस प्रकार के भाव की सृष्टि करनी होती है, भाषा उसी ढाँचे मे ढलती चली जाती है। 'परिमल' कालीन निराला की भाषा मे शक्ति और शालीनता का गुण है। यद्यपि उसम परिष्कार और शब्द योजना की ऐकान्तिक प्रवृत्तियाँ नही पाई जाती। भाषा प्रयोग की दृष्टि म पवित्रतावादी आदर्श निराला का कभी नही रहा।

'गीतिका' मे अपेक्षाकृत अधिक परिष्कार है, क्योकि एक तो गीत रचना मे शब्दो को सीमित सख्या के अन्तर्गत समग्र प्रभाव उत्पन्न करना होता है। दूसरे गेय पदो मे गद्यात्मक मुहावरे नही आ सकते, और उन गीतो मे निरालाजी की प्रवृत्ति सदैव परिष्कृति की ओर रही है। निराला के पूर्ववर्ती काव्य की भाषा शैली की यही मुख्य विशेषता है।

---

१ निराला : परिमल—महाराजा शिवाजी का पत्र (रचना १६२२)

परवर्ती काव्य मे निरालाजी की भाषा मे गद्य के गुण अधिक मात्रा मे सयोजित हुये हैं। विशेषकर उनकी हास्य और व्यग्यप्रधान रचनाओ मे भाषा गद्य के अधिक समीप है। 'कुकुरमुत्ता' की आरभिक पक्तियाँ देखिये—

एक थे नव्वाब,
फारस से मगाये थे गुलाब;
बडी बाडी मे लगाये,
देशी पौधे भी उगाये,
कई माली रखे नौकर,
गजनवी का बाग मनहर
लग रहा था।[१]

इसे यदि हम थोडे से परिवर्तन के साथ लिखें, तो हिन्दी गद्य का एक औसत उदाहरण बन जायगा। पूर्ववर्ती कविताओ मे निराला की बातो के साथ जो एक इलास्टिसिटी या तरलता का गुण है, वह परवर्ती काव्य मे कम हो गया है।

कुछ लम्बी कविताओ मे निराला जी की बदली हुई शैली का एक अन्य स्वरूप भी दिखाई देता है, वह है 'वर्णनात्मक कथानको का प्रयोग'। इन कथानको मे भाव-प्रवाह स्वभावत. मद है और उसी के अनुरूप भाषा मे भी एक प्रकार की मथरता आ गई है। प्रवाह की पूर्ति निराला जी को ग्रैफिक या सर्वांगीण वस्तु-वर्णन द्वारा करनी पडी है और वस्तुवर्णन में भाषा और छदो की योजना द्रुतगामिनी नही हो सकती। द्रुतगामिता के स्थान पर जो विवरणपूर्ण वस्तुमत्ता निराला जी की परवर्ती कविताओ मे मिलती है, उसका एक अच्छा उदाहरण 'अणिमा' की सन् ४३ की 'स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज' शीर्षक कविता है। इस कविता मे निरालाजी की भाषा गद्य के अधिक समीप तो है ही, वह अधिक सुगठित भी नही रह गई है।

इस गठनहीनता का और स्पष्ट उदाहरण उनकी 'कुकुरमुत्ता' कविता मे मिलता है जो अन्य दृष्टियो से एक सफल रचना है। 'कुकुरमुत्ता' को उर्दू छद मे ढालने का प्रयत्न निरालाजी की भाषा को शिथिलता और अनगढ़पन प्रदान करता है।

आया मौसिम, खिला फारस का गुलाब,
बाग पर उसका जमा था रोबोदाब,
वही गन्दे पर उगा देता हुआ बुत्ता
उठाकर सर शिखर से अकड कर बोला कुकुरमुत्ता—[२]

---

१ निराला : कुकुरमुत्ता पृ० १
२ " " ३

यद्यपि इन पंक्तियो मे उर्दू का सौन्दर्य है, पर हिन्दी के कवि के लिये उर्दू भाषा का अधिकारपूर्ण निर्दोष सौन्दर्य लाना कठिन ही है।

'कुकुरमुत्ता' मे जहाँ कही निरालाजी ने उर्दू हिन्दी मिश्रित शब्दो के साथ संस्कृत के शब्दो का प्रयोग किया है, वहाँ वे पूर्णतः सफल नही हुये है।

लगाता हूँ पार मैं ही,
डुबाता हूँ मझधार मैं ही।
डब्बे का मैं ही नमूना,
पान मैं ही, मैं ही चूना।[१]

की सुन्दर और मुहावरेदार पक्तियो के साथ जब हम—

मन्द्र होकर कभी निकला,
कभी बनकर ध्वनि क्षीणा।[२]

पक्तियों को पढते हैं, तो भाषा का असतुलन स्पष्ट हो जाता है। यदि यह हास्यरस की कविता न होती, तो इस प्रकार की बेमेल भाषा लिखने के लिये कवि को क्षमा नही किया जा सकता था।

परवर्ती काव्य मे जो गीत आये हैं, वे शायद निराला की उस समय की सर्वश्रेष्ठ कृति कहे जा सकते हैं। इन गीतो मे उनके पूर्ववर्ती गीतो की अपेक्षा सरल भाषा और मार्मिक मुहावरो का प्रयोग चमत्कार की सृष्टि, अनुप्रासो की योजना अधिक सघन है।

ये ऐसी विशेषताएँ हैं जो निराला के परवर्ती गीतो को एक नया ही सौष्ठव प्रदान करती हैं। यह सच है कि इन गीतो मे कल्पना की वह चित्रोपमता नही है जो 'गीतिका' के गीतो मे है। परन्तु 'गीतिका' के गीत और शब्दयोजना मूलत संस्कृत के सौन्दर्य पर आधारित हैं, जब कि परवर्ती गीतो मे हिन्दी का अपना सौन्दर्य है। 'गीतिका' का एक गीत देखिये—

कौन तुम शुभ्र-किरण वसना ?
सीखा केवल हँसना-केवल हँसना[३]—

परवर्ती गीत के लिये 'आराधना' का एक गीत देखिये—

---

१ निराला : कुकुरमुत्ता, पृ० ६।
२ वही, पृ० ७।
३ निराला : गीतिका, गीत-२६, पृ० ३४।

सुख का दिन डूबे डूब जाय,
तुम से न सहज मन ऊब जाय—
उलटी गति सीधी हो न भले,
प्रतिजन की दाल गले न गले,
टाले, न बात यह कभी टले,
यह जान जाये तो खूब जाये[1]—

यदि हम इन दोनो उद्धरणो को निराला के पूर्ववर्ती और परवर्ती गीतो का सामान्य भेद मानें, तो ऊपर दिये हुये वक्तव्य का प्रमाण मिल जाता है।

❸ विचारधारा का अन्तर

निरालाजी की विचारधारा मे सहसा कोई बडा परिवर्तन नही हुआ है। अपनी आरम्भिक शिक्षा मे उन्होंने जिस वेदान्तीय दृष्टि को अपनाया था, वह इतनी मजबूती से उनके साथ बँधी रही है, कि किसी नए विचार का आना प्रत्याशित भी नही था। किन्तु मूलधारणा के बहुत कुछ सम रूप रहते हुये भी निराला की व्याव हारिक चिंतना मे परिवर्तन होते गये हैं। इनमे से कुछ परिवर्तन तो निराला के निजी अनुभवो की वृद्धि के साथ जुडे हुये है और कुछ अन्य परिवर्तन युग की परिस्थिति के कारण भी हुए हैं। हम यह ऊपर उल्लेख कर चुके है कि निराला की आरम्भिक विचारधारा स्वच्छदतावादी और सौंदर्यवादी रही है। निराला का विद्रोही व्यक्तित्व उनके स्वच्छन्दतावादी काव्य को सामाजिक स्वतन्त्रता का समर्थक और पुरस्कर्ता बनाने मे समर्थ हुआ है। यह स्वच्छन्दतावादी काव्य एक ओर नारी और पुरुष के स्वच्छन्द प्रेम का पोषक रहा है तो दूसरी ओर यह सामाजिक वैषम्य को दूर करने मे भी प्रयत्नशील रहा है। राष्ट्रीय और सास्कृतिक एकता के तत्वो का सचयन भी निराला-काव्य की विशेषता रही है। इसके अतिरिक्त निराला का सौन्दर्यवादी काव्य जो विशेषत 'गीतिका' के गीतो मे मिलता है, स्वस्थ सौन्दर्य और सामाजिक आधार से सबद्ध रहा है। प्रकृति की रमणीय भूमिका सदैव साथ रही है। निराला के सौन्दर्य-गीतो म कल्पना की वायवीयता नहीं है। वे भावात्मक, मानवीय तत्वो से युक्त हैं। इसी प्रकार निराला की आरम्भिक विचारधारा म आदर्शवाद का भी यथेष्ट पुट है। 'पचवटी प्रसग' मे चित्रित लक्ष्मण का चरित्र निराला के अपने आदर्शवाद का प्रतिनिधि कहा जा सकता है, इस प्रकार निराला की आरभिक विचारधारा मे स्वच्छदता और सौन्दर्य के स्वस्थ उपकरण मिलते हैं। सन् १६३५ के पश्चात् निराला की विचारधारा मे परिवर्तन होने लगते हैं। गद्य-कृतियो मे 'अप्सरा (१६३१) और 'निरुपमा' (१६३६) के आधार पर 'कुल्लीभाट' (१६३६) और 'बिल्लेसुर बकरिहा' (१६४१) की सृष्टियाँ बदली हुई मनोभावना और विचारधारा

---

१ निराला . आराधना (गीत २६) रचना १४-११-५२

का स्पष्ट परिचय देती है। अब निरालाजी ससार की कुरूपता और उसके छद्म-वेषो से परिचित हो गये थे। उनके व्यक्तिगत अनुभवो ने उन्हे बता दिया था कि जाति या वर्ण की उच्चता से कही अधिक महत्वपूर्ण अर्थ की सपन्नता है। नेतागिरी के लिये भी उच्चशिक्षा के साथ समृद्ध आर्थिक साधन अपेक्षित है। तरुणाई के उन्मेष और उत्साह मे जीवन के जिन गभीर और यथार्थ पक्षो की उपेक्षा की जा सकती है, आयु और अनुभव के बढने पर वैसा नही किया जा सकता। इसी बढते हुये अनुभव ने निराला को आदर्श से यथार्थ की ओर प्रेरित किया होगा। किन्तु निराला की यह यथार्थोन्मुख प्रवृत्ति भौतिकवाद की भूमि पर खडी नही है। उनकी विचारधारा आदि से अत तक मानववादी और सास्कृतिक बनी रही है।

'कुल्लीभाट' उपन्यास या रेखाचित्र मे निराला यद्यपि राजनीतिक नेताओं की गतिविधि पर व्यग करते हैं, पर साथ ही वे 'कुल्लीभाट' जैसे टुटपुजिया नेताओ को भी परिहास का विषय बनाते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि निरालाजी की दृष्टि मे नेतृत्व का अधिकार न तो आर्थिक भूमिका पर गठित होना चाहिए और न विपन्नता या गरीबी की भूमिका पर। वे वस्तुत. आधार सास्कृतिक चेतना को मानते है। उनका आदर्शवादी स्वरूप यहाँ भी ज्यो का त्यो बना है, निराला की कविताओ का दार्शनिक आधार यही है। कुछ लोग 'कुकुरमुत्ता' कविता को प्रगतिवादी मानते हैं, परन्तु निराला की इन परवर्ती काव्य रचनाओ मे भी प्रगतिशीलता का पक्ष बहुत थोडी मात्रा मे आया है। जहाँ वे एक ओर 'कुकुरमुत्ता' से गुलाब की निंदा कराते है वही दूसरी ओर 'कुकुरमुत्ता' का भी बढ चढकर बातें करने के लिये परिहास करते हैं। एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा—

> विष्णु का मैं ही सुदर्शन-चक्र हूँ,
> काम दुनिया मे पडा ज्यो, वक्र हूँ,
> उलट दे, मैं ही जसोदा की मथानी,
> और भी लम्बी कहानी,—'

निराला के परवर्ती काव्य मे गीतो की प्रचुर सख्या है। यहाँ तक कहा जा सकता है कि पिछले १० वर्षों मे निरालाजी ने गीत ही सर्वाधिक लिखे हैं। निराला जी के ये गीत उनके प्रारम्भिक और परवर्ती गीतों से भिन्न भाव-भूमिका पर नही हैं। उनका वैचारिक आधार वही है जो पहले के गीतो मे रहा है। अतर केवल इतना है कि जब उनके प्रारम्भिक गीतो मे सौन्दर्योन्मेष की प्रधानता है, तो इन परवर्ती गीतो मे विनय और प्रार्थना के गभीर भाव है। निराला ने ऋतु-गीतो की जो

---

१ निराला : कुकुरमुत्ता, पृ० ५।

परपरा अपने आरम्भिक काल मे निर्धारित की थी, उस पर वे अब तक चले जा रहे हैं।

❸ जीवन-सम्बन्धी दृष्टिकोण का अन्तर

विचारधारा के साथ जीवन-दृष्टि का सम्बन्ध काफी घनिष्ट होता है। जीवन-दृष्टि से ही विचारो का प्रवर्तन होता है। विचारो का समुच्चय ही जीवन-दृष्टि का निर्माण करता है। जिस प्रकार निराला की विचारधारा मे कोई आकस्मिक परिवर्तन नही है, उसी प्रकार उनकी जीवनदृष्टि मे भी। हम कह सकते हैं कि जीवन-दृष्टि मे अध्यात्म पक्ष की प्रधानता रही है। यद्यपि उन्होंने युग-जीवन के अनेकानेक पक्षो को खुली आखो देखा है और उसका अबाध वर्णन भी किया है, पर उन सबका समाहार वे एक आध्यात्मिक दार्शनिकता मे करते आये हैं। मानवजीवन के भौतिक और आत्मीय पक्ष मे से उन्होंने आत्मीय पक्ष को सदैव प्रधानता दी है। यह बात दूसरी है कि उनके निजी जीवन मे सघर्षो की प्रचुरता रही है और वे क्रमश सामाजिक जीवन के वैषम्य से आक्रात होते गये हैं और इसी कारण उनके काव्य मे यथार्थोन्मुख जीवन-प्रतिक्रियायें भी उपलब्ध होती हैं। पर जहाँ तक उनकी मूल जीवन दृष्टि का सम्बन्ध है, वह सदैव मानवीय और आध्यात्मिक स्तर पर ही बनी रही है। मानव जीवन का लक्ष्य उन्होने मनुष्य-मनुष्य को समानता, सहानुभूति और प्रेम भावना को ही माना है। यह मानवतावादी लक्ष्य उस भौतिकवादी आधार से बिल्कुल भिन्न है, जिसमे वर्गो का सघर्ष ही उभर कर आता है। निराला के परवर्ती काव्य मे यह मानवतावादी लक्ष्य अधिक परिष्कृत हुआ है। परन्तु इस कारण उनके जीवनदर्शन मे कोई आपातिक परिवर्तन नही होता। एक ओर जहाँ उनकी परवर्ती कविता मे युगीन वैषम्यो का व्यग्यात्मक चित्रण है, वहाँ दूसरी ओर विश्वशक्ति या विश्वात्मा के प्रति उनकी आस्था भी बढती गई है। पिछले १०–१५ वर्षों के उनके गीतिकाव्य मे यह आत्मिक तत्व प्रगाढ़ होता गया है। उनके आरम्भिक गीतों में जहाँ पर यह विराट आत्मतत्व एक अलकार बनकर आया है, वहाँ पिछले खेवे के गीतो मे वह वही अधिक व्यक्तिगत भावभूमि के केन्द्र मे स्थित है। इससे भी यही सूचित होता है कि निरालाजी की जीवन-दृष्टि न केवल अध्यात्मोन्मुखी बनी रही है, बल्कि अधिक सुदृढ हो गई है और इसी से उन्हें वर्तमान रुग्णावस्था मे अमित प्रेरणा और समाधान प्राप्त होता रहा है।

❹ विषयवस्तु और रस आदि का अन्तर

निराला-काव्य के आरम्भिक काल की विषयवस्तु प्रमुखत स्वच्छदतावादी है और उसका प्रधान रस शृगार है। उनकी प्रारम्भिक रचना 'पचवटी प्रसग'

यद्यपि विषय की दृष्टि से पौराणिक है, परन्तु उसका चित्रण पूर्णत. स्वच्छन्दतावादी कहा जा सकता है। प्रकृति की रमणीक चित्रपटी पर राम और सीता जैसे तरुण नायक-नायिका का चित्र आज्ञाकारी और भ्रातृवत्सल वीर लक्ष्मण के साथ अकित किया गया है। इसमे आशिक रूप से उदात्त दार्शनिक तथ्यो का योग भी है। प्रकृति, जीव और जगत् के रहस्यो पर प्रकाश डाला गया है। एक विनोदात्मक वातावरण की सृष्टि हुई है। 'परिमल' की अधिकाश रचनाओ मे प्राकृतिक और मानवीय शृगार के साथ वीर रस और क्रातिकारी भावना का मणि-काचन योग हुआ है। कही-कही अतीत के चित्र भी मिलते है, जैसे 'यमुना के प्रति' शीर्षक कविता मे। दार्शनिकता का पुट प्राय सभी रचनाओ मे मौजूद है। पर कुछ कृतियाँ तो विशुद्ध दार्शनिक है। विविध रूपो के सौदर्यो का वर्णन बार-बार आया है। प्रकृति को नारी रूप मे। देखने की शैली अनेकश अपनायी गई है। प्राय यही प्रवृत्तियाँ उनकी 'गीतिका' म भी मिलती है। इसके अतिरिक्त कुछ राष्ट्रीय भावना से सम्पन्न गीत भी मिलते हैं। सक्षेप मे यही उनकी पूर्ववर्ती काव्य की विषय और भाव-योजना है।

निराला के परवर्ती काव्य मे अनेक नये विषयो का चुनाव किया गया है। 'तोडती पत्थर' जैसी कविता मे सामाजिक जीवन के वैषम्य का चित्र है। 'खडहर के प्रति', 'मित्र के प्रति' कविताओ मे व्यग्य की प्रवृत्ति दिखाई देती है जो प्रारम्भिक रचनाओ मे नही है। 'राम की शक्तिपूजा' मे एक बार फिर से पौराणिक इत्तिवृत्त लिया गया है, इस पर कविता मे 'पचवटी प्रसग' की सी प्रगल्भ भावधारा नही है, बल्कि यथार्थ मनोवैज्ञानिक चित्रण और औदात्य की प्रवृत्ति है। 'तुलसीदास' भी एक काल्पनिक मनोवैज्ञानिक काव्य है, जिसमे गोस्वामी तुलसीदास के मानसिक परिवर्तन की घटना ही केन्द्र मे है।

'अणिमा' मे यद्यपि कुछ 'गीतिका' की शैली के गीत भी हैं, परन्तु क्रमश निराला के गीत भाषा की दृष्टि से अधिक सरल और भावना की दृष्टि से अधिक सयत होने लगे है। 'मैं अकेला' (सन् ४०) जैसे गीत मे वैयक्तिक अवसाद का चित्र है, जो 'कभी न होगा मेरा अन्त' जैसे निराला के प्रारम्भिक काल के गीत से भिन्न भावधारा का द्योतक है। इसी प्रकार 'प्रसादजी के प्रति', 'सत कवि रविदास के प्रति', 'विजयालक्ष्मी पडित के प्रति', 'श्रीमती महादेवी वर्मा के प्रति' जैसे सामयिक विषयो से सम्बन्धित प्रशस्तियाँ हैं, जो निराला के पूर्ववर्ती काव्य म नही आई हैं। 'सडक के किनारे दूकान है' जैसी यथार्थोन्मुखी शैली की वस्तुचित्रण-प्रधान कविता भी निरालाजी लिखने लगे थे।

'बेला' और 'नये पत्ते' की कविताओ मे निरालाजी के व्यग्यात्मक प्रयोगो का बाहुल्य है। 'बेला' की तो शैली भी उर्दू प्रमुख हो चली है। इन दोनो पुस्तको

में निराला जी की भाषा, चित्रण-प्रकार और विचार-भूमिका अधिक सरल और यथार्थोन्मुख होने लगी है जब कि उनकी आरम्भिक कविताओ की विषयवस्तु एक प्रसन्न शृगारिकता से ओतप्रोत है तब उनकी परवर्ती कविताओ मे व्यग्यात्मक *चित्रण और हास्यविनोद के साथ अधिक गभीर प्रकार की आत्मनिष्ठता आने लगी* है। उनकी 'अर्चना', 'आराधना' और 'गीतगुज' उनके विनय-भाव और आत्मनिवेदन की प्रतिनिधि कृतियाँ कही जा सकती हैं।

रस की दृष्टि से निराला का परवर्ती काव्य हास्य, रौद्र, शात और करुण तत्वो से आपूरित है।

3

परवर्ती काव्य का विहंगावलोकन

युग की सवेदना से द्रवीभूत निराला का व्यक्तित्व किसी स्थिर-बिन्दु पर नही रुकता है। काल की गति और निरालाजी की नई स्वीकृति केवल उनके व्यक्तित्व की भावात्मक ग्रहणशीलता को ही नही सूचित करती, जैसा कि छायावादी अन्य कवियो मे देखा जाता है। निराला मे बौद्धिक उन्मेष तथा वातावरण की यथा-स्वीकृति का पक्ष भी प्रबल रहा है। उनके मन की अभिव्यक्ति साहित्य मे फ्रायड के दिवास्वप्न के सिद्धात को लेकर नही होती, उसमे वैयक्तिक जीवन की अन्तर्मुखी वायवीयता नही है। उसकी भूमि वस्तुमुखी तत्वो से युक्त है।

यदि हम निराला के प्रारम्भिक साहित्य को लक्ष्य करके नये काव्य का मूल्याकन करें तो हमें ज्ञात होता है कि निराला अवचेतन से चेतन की व्यापक एव व्यक्त चित्रपटी को बौद्धिक धरातल से देखने लगे हैं। इस प्रकार निराला का परवर्ती काव्य उनके चेतन-व्यक्तित्व, समाजशास्त्रीय धरातल, नवीन समाजवादी-मनोभावना तथा जनसमाज की दैनिक समस्याओं पर विचारात्मक व्यग्यों से पूर्ण है। यदि पूर्ववर्ती काव्य मानवीय अन्तश्चेतना मे निहित तात्विक-जिज्ञासा की अध्यात्मपरक अभिव्यक्ति करता है, तो परवर्ती काव्य चेतना-जगत की मानवीय समस्याओ को निकटता से देखता है। यदि पूर्ववर्ती काव्य राष्ट्रीय सीमाओ मे जातीय व्यक्तित्व के गुणो की सस्कृति से सन्निहित है, तो परवर्ती काव्य सामाजिक वैषम्यो की गहन अनुभूतियो पर आश्रित है। निराला १६३६ के बाद जनजीवन की दैनन्दिनी के दर्शक रहे हैं, समस्याओ के विचारक, कार्यशक्ति के प्रेरणा-सचालक रहे हैं। यही कारण है कि उनका परवर्ती काव्य का स्वरूप नया-नया सा दिखाई देता है।

निराला के परवर्ती काव्य की प्रवृत्तियो का आधार हम पहले देख चुके हैं, जहाँ उनके परिवर्तनशील व्यक्तित्व के कारणो पर हमने प्रकाश डाला है। सन् १६३६ तक निराला का व्यक्तित्व अव्याहत व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व कर रहा था। बाद मे वह रुपातरित हो गया और उसमे एक नया परिवर्तन आने लगा। 'कुकुरमुत्ता' काव्य तक उनकी परवर्ती शैली बहुत कुछ स्पष्ट हो गई थी। कुकुरमुत्ता' में हास्य

और विनोद की सृष्टि है। निराला का जो पूर्ववर्ती गभीर काव्य था, 'तुलसीदास' रचना मे जो औदात्य था, 'गीतिका' मे जो सौंदर्य-सृष्टि थी, उसके स्थान पर हलके हास्य की सृष्टियाँ कवि के बदले हुये दृष्टिकोण को सूचित करती है। जब किसी कवि के आदर्श सामाजिक सघर्षों से आहत हो जाते हैं, तब वह ससार को विनोद की दृष्टि से देखने लगता है। उसकी गभीर आस्थायें दुर्बल हो जाती हैं। जगत के विषय में दृष्टिकोण बदल जाता है। १६३६ तक निराला की रचनायें स्थिर रही हैं, वे समरस हैं। ३६ के पश्चात् उनकी अनुभव-भूमि बदली है, पर जीवन-लक्ष्य नही बदला। महान कवि सकल्पवान होते हैं। उनके सकल्प टूटते नही। क्षतविक्षत भले ही हो जायें, पर मूलवस्तु दूर नहीं होती। स्वच्छन्दतावाद उनके इस लक्ष्य का साधन रहा है। उनकी निर्बाध प्रेम की भावनायें उनके सास्कृतिक आदर्श के अनुरूप रही हैं। स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ उस आदर्श के सहायक रूप मे आई हैं।

सक्षेप मे हम कह सकते हैं कि १६४२ की क्राति और बगाल का अकाल भारतीय राजनीति और भारतीय जनता की भविष्यगति का सूचक था। साथ ही दमनकारी नीति और आतकवादी मनोवृत्तियो से नया समाज मर्माहत हो चुका था तथा भारतीय पूजीवाद के प्रारम्भिक विकास मे शोषण और शोषित वर्ग की समस्याएँ उभरने लगी थी। निराला का आर्थिक अभाव और उसकी प्रतिक्रिया से बना नया मन जागरूकता को लेकर समाज के यथार्थ धरातल को स्पर्श करने लगा।

परवर्ती काव्य के केन्द्रीय तत्व : (अ) नयी जीवन-चेतना, (ब) नये विषय, (स) नई काव्य शैली (द) नयी भाव-भाषा-योजना।

यदि निराला के परवर्ती काव्य की आरम्भिक तिथि सन् ३८–३६ के बीच की मानी जाय और यदि उसके दो तीन वर्ष पहले की 'सरोजस्मृति', 'तुलसीदास' 'राम की शक्तिपूजा' और आरम्भिक व्यग्यात्मक उक्तियो को उनकी सक्रातिकालीन भाव-भूमिका म सबद्ध माना जाय, तो हम कह सकते हैं कि निराला के परवर्ती काव्य का मूल तत्व जीवन के प्रति, विशेषकर सामाजिक जीवन के प्रति, एक अवसादात्मक दृष्टिकोण है। इस समय तक निरालाजी काफी सघर्ष झेल चुके थे और उनकी आरम्भिक आशावादिता और प्रखर पौरुष, उनकी सौंदर्य-चेतना और उनकी उदात्त दार्शनिकता सभी कुछ बाधित होने लगे थे। उनकी पूर्ववर्ती कविताएँ सभी रसो की हैं। परन्तु उन सबे मे कवि की दृष्टि भावात्मक या रचनात्मक बनी हुई है। उनकी पूर्ववर्ती कविता म एक सहजता पाई जाती है। भाव और भाषा का अप्रतिम सामजस्य देखा जाता है। गीतिका की कल्पना छवियाँ अतिशय सुसज्जित हैं और आह्लादमूलक हैं। इन कविताओ का प्रवाह और इनका सौंदर्य-ससार अस्खलित है। वे सब भावात्मक प्रगीत-रचना के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। किन्तु निरालाजी की परवर्ती कृतियों में नये तत्वों का आगमन हुआ है। एक समय था, जब उन्होंने यह

घोषणा की थी कि हिन्दी मे मुक्त-छद काव्य की मुक्ति का परिचायक है।[1] मनुष्यो की मुक्ति की तरह काव्य की भी मुक्ति होती है। यद्यपि निरालाजी के इस वक्तव्य मे छद को ही काव्य का पर्याय मान लेने की अतिरजना है, प्रत्येक मुक्तछद अनिवार्य रूप से काव्य की मुक्त भाव-भूमिका का प्रतीक नही हो सकता। परन्तु निरालाजी के इस कथन से इतना तो सूचित होता ही है कि उनकी आरम्भिक रचनाएँ काव्य-रूढियो के विरुद्ध एक क्राति का सदेश लेकर आई थी। निराला के इस अतिरजित वक्तव्य मे उनकी उस समय की प्रवृत्ति का, उद्दाम भावावेग का परिचय मिलता है। उनके परवर्ती काव्य मे यह भावोद्वेग बहुत कुछ प्रशमित हो गया है और अब वे जीवन को अधिक पैनी निगाह से और तथ्यमूलक दृष्टि से देखने लगे है। निराला की आरम्भिक सास्कृतिक चेतना समाप्त नही हुई है। उनकी मूल जीवन-दृष्टि ज्यो-की-त्यो बनी हुई है। परन्तु उनके सासारिक अनुभवो मे परिवर्तन अवश्य आया है।

परवर्ती काव्य मे निराला की शैली, निराला के वर्ण्य-विषय बदलने लगे हैं। 'अणिमा' मे उन्होंने सत रविदास से लेकर विजय लक्ष्मी पण्डित तक को अनेक श्रद्धाजलिया और प्रशस्तिगीत भेंट किये है। स्पष्टत ये कवितायें गतिशील या प्रखर व्यक्तित्व की परिचायिका नही है। निरालाजी मुडकर पीछे की ओर देखने लगे हैं। इसी प्रकार 'भगवान बुद्ध के प्रति' और 'सहस्राब्दी' शीर्षक रचनाओ मे निरालाजी की दृष्टि अतीत की ओर चली गई है।

इस परवर्ती काल मे निरालाजी अपने चित्रणो मे अधिक वस्तुमुखी हो गये है। 'स्वामी प्रेमानद जी महाराज' शीर्षक कविता की पार्श्वभूमि इस प्रकार बनाई गई है—

आमो की मजरी पर
उतर चुका है बसन्त,
मजु-गुज भौरो की
वौरो से आती हुई,
शीत-वायु ढो रही है,
मन्द-गन्ध रह-रह कर।

---

१ देखिये—निराला की 'परिमल' की भूमिका, पृ० १२. "मनुष्यो की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यो की मुक्ति कर्मों के बन्धन से छुटकारा पाना है, और कविता की मुक्ति छदो के शासन से अलग हो जाना है। जिस तरह मुक्त मनुष्य कभी किसी तरह भी दूसरे के प्रतिकूल आचरण नही करता, उसके तमाम कार्य औरों को प्रसन्न करने के लिये होते हैं—फिर भी स्वतन्त्र, इसी तरह कविता का भी हाल है।"

नारियल फले हुए,
पुष्करिणी के किनारे
दोहरी कतारों में
श्रेणीबद्ध लगे हुए।[1]

यह परिवर्तित चित्रण-शैली निराला के काव्य में किसी उन्नत कला की सृष्टि भले ही न कर सकी हो, परन्तु उनकी आरम्भिक चित्रण-पद्धति से यह भिन्न अवश्य है। यही क्रमशः आगे बढ़कर 'कुकुरमुत्ता' 'खजोहरा' और 'स्फटिकशिला' जैसी कविताओं में प्रतिफलित हुई है। कुरूप दृश्यों के चित्रण में इसी शैली का प्रयोग अनेक बार किया गया है। देखिये—

वही मुर्गी, वही अंडे,
धूप खाते हुए कंडे,
हवा बदबू से मिली,
हर तरह की बँसिताई पड़ी हुई।
रहते थे नब्बाव के खादिम,
अफ्रिका के आदमी आदिम :—
खानसामा, बावर्ची और चौबदार
सिपाही, साईस, भिश्ती, घुड़सवार,
नामजान वाले कुछ देशी कहार,
नाई, धोबी, तेली, तम्बोली, कुम्हार,
फीलवान, ऊँटवान, गाड़ीवान
एक खासा हिन्दू-मुस्लिम खानदान,
एक ही रस्सी से किस्मत की बँधा
काटता था जिन्दगी गिरता सधा।[2]

× × ×

निरालाजी के व्यंग्य-काव्य में जो परवर्ती काल की एक मुख्य विशेषता है, यत्र-तत्र नग्न और कुरूप चित्र मिलते हैं। परन्तु उनकी अधिकांश रचनायें व्यंग्यात्मक नहीं है। वे हास्य और विनोद की सृष्टि करती है। 'नये पत्ते' की अधिकांश कवितायें, इसी हास्य और विनोद के उदाहरण हैं। हास्य और विनोद में निराला अधिक सामाजिक और भावात्मक हो सके हैं, जब कि व्यंग्यात्मक कवियों में उनकी दृष्टि कुरूपता के अधिक समीप चली गई है। यदि हम 'खजोहरा' की व्यंग्यात्मक कविता की 'कुकुरमुत्ता' की हास्यमूलक रचना से तुलना करें तो यह बहुत कुछ अंतर स्पष्ट

१ निराला : अणिमा—स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज, पृ० ६८।
२ निराला : कुकुरमुत्ता, पृ० १३ (द्वितीय संस्करण)

हो जाता है। फिर भी यह कहना होगा कि इन समस्त परवर्ती कविताओ के मूल में एक अवसाद का तत्व व्याप्त है।

इसका यह आशय नही कि निराला की इन परवर्ती रचनाओ मे जीवन के विधानात्मक तत्व मिलते ही नहीं हैं। जहा एक ओर इन रचनाओ मे निरालाजी का वैयक्तिक अवसाद सन्निहित है, वही दूसरी ओर इनमे सामाजिक वैषम्यों के प्रति एक स्फूर्तिदायक और तीव्र कटाक्ष भी है। यही निराला के परवर्ती काव्य की रचनात्मक या विधेयात्मक भूमिका है और इसी के कारण इस परवर्ती काव्य का मूल्य और महत्व है। यह खेद के साथ स्वीकार करना होगा कि निरालाजी के व्यग्य-काव्य मे वह ओजस्विता और प्रखरता नही है, वह पैनी काट नही है जो समाज को अपने आघात से तिलमिला दे और उसे नई कर्मण्यता की उत्कृष्ट प्रेरणा दे। इसका कारण यही है कि इस व्यग्यात्मक काव्य सृष्टि के साथ निराला की निजी मानसिक शिथिलता और अवसाद जुडे हुए हैं। उनके परवर्ती प्रगतिशील काव्य मे नयी-जीवन कल्पना की बहुत कुछ कमी है। विकृतियो का इजहार अधिक है।

इसी परवर्ती- युग मे निराला ने तथाकथित प्रयोगात्मक शैली भी अपनाई है और भाषा, छन्दो, गीतो, लोक-लयो आदि के नये-नये प्रयोग किये हैं। यहा प्रयोग शब्द से हमारा आशय शैली सम्बन्धी प्रयोगो से ही है। इन प्रयोगों मे यद्यपि अनेक प्रकार की विविधतायें हैं, परन्तु निराला के आरम्भिक मुक्त छन्द की तुलना मे ये बहुत कुछ फीके दीखते हैं। जब कि मुक्त छन्द की सृष्टि मे निराला का व्यक्तित्व उनकी काव्यचेतना को और काव्यप्रयोगो को पूरा योग दे रहा था, तब उनके परवर्ती प्रयोगो मे निरालाजी के समाहित व्यक्तित्व का योग नही दिखाई देता। अब वे शैली प्रसाधक या प्रयोक्ता कवि के रूप मे ही हमारे समक्ष आते हैं। उनकी विचक्षणता दिखाई देती है, परन्तु उनके इन प्रयोगो मे समाहित वस्तु का बहुत कुछ अभाव है, इसीलिए बेला की उर्दू छन्द-सृष्टि केवल शैलीगत अभ्यास कही जा सकती है। उसमे काव्यत्व का नूतन विकास उपलब्ध नही होता। निराला की इन गजलों और छन्दो मे भाव की दृष्टि से एकता नही है।

निराला के परवर्ती काल की अन्तिम उपलब्धि उनके 'अर्चना' 'आराधना' और गीतगुज के गीत है, जिनमे ऋतुवर्णन, शृगारिक भावना, दार्शनिकता के पक्ष मिलते हैं, परन्तु उनके अधिकाश गीत आत्मनिवेदनात्मक भक्ति और विनय-मूलक सामाजिक प्रतारणाओ से मुक्ति की प्रार्थना करने वाले ईश्वराश्रित गीत हैं। इनमे शान्त और करुण रस की सफल अभिव्यजना हुई है। कह सकते हैं कि निराला अपने अतिम समय मे आलकारिक गीत-पद्धति को छोड कर अधिक भावमूलक और तत्व-परक गीत लिखने लगे थे। उनके इन गीतो मे सौंदर्य की मनोरम छविमा नही है, परन्तु यह गीत अधिक गम्भीर भावसवेदना से सम्पन्न हैं। जान पडता है हास्य-

विनोद, व्यग्य-विडंबना, प्रयोग और प्रगति के सारे आयामों को पार कर निराला अपने अन्तिम वर्षों मे फिर से अपनी भावात्मक भूमिका पर उत्तर आये थे। परन्तु जहा उनके आरम्भिक काव्य मे भावना या तरल उच्छ्वास है वहां इन अन्तिम वर्षों मे अधिक मार्मिक और प्रगाढ भाव-संवेदन उभर उठा है। यह ठीक है कि इन अन्तिम वर्षों में निरालाजी ने कोई लम्बी या विशद काव्य-रचना नही की। परन्तु इन छोटे गीतो मे उन्होंने अपने हृदय और अपनी समग्र काव्य-साधना का सार रख दिया है।

अपने समस्त परवर्ती काव्य मे निराला अपनी अभिव्यंजना को सरलतर बनाते गए हैं, और यह एक बडे कवि के प्रौढ काल की स्वाभाविक परिणति कही जा सकती है। इस भूमिका पर निराला की तुलना टालस्टाय जैसे मनीषी से की जा सकती है, जिसने अपनी अन्तिम कृतियो में समस्त अलंकरण का परित्याग कर सीधी और चोट करने वाली ऐसी सरल शैली का प्रयोग किया है, जो आबाल-वृद्ध सबकी समझ मे आती है। निराला के इन परवर्ती गीतो मे भाषा की वैसी ही सरलता है, पर साथ ही उनकी काव्यात्मक विशेषता समाप्त नही हुई है। इन गीतो की भाषा अधिक व्यजक हो गई है। प्राय: छोटे छन्दों मे एक समग्र भाव की योजना भाषा के अर्थप्रवण प्रयोग पर ही अवलबित है। यही नही, निरालाजी के इन गीतो मे अनेकानेक मुहावरे और लोकोक्तिया आई हैं। सम्भवत: निराला ने अपनी उद्-भावना से अनेकानेक नये भाषा-प्रयोग भी किये हैं, जो स्वय नया मुहावरा बन गये हैं। जब कि निराला-काव्य की आरम्भिक भाषा सस्कृत के सौन्दर्य से समुपेत है, तब उनके परवर्ती गीतों में हिन्दी भाषा का अपना निखार, अपनी व्यजकता और अपना स्वारस्य आ सका है।

● निराला के परवर्ती काव्य की पूर्व पीठिका :

(१) आरंभिक समाजोन्मुख रचनायें-निराला के आरम्भिक काव्य मे सामाजिकजीवन के प्रत्यक्ष अनुभव विद्यमान हैं ; परन्तु वे सभी प्रसग भावात्मक हैं और प्राय: करुण रस की सृष्टि करते है। कुछ क्रांतिमूलक भावनायें भी व्यक्त हुई हैं, जिनमे वीर रस का प्राधान्य है। कतिपय उद्बोधनात्मक कविताएं और पन्नगीत भी हैं।

करुणरस की कविताओ मे 'परिमल' की 'दीन', 'भिक्षुक', 'विधवा', कवितायें उल्लेखनीय हैं। उदाहरणो मे 'बादल राग', 'जागो फिर एक बार', 'महाराज शिवाजी का पत्र', आदि रचनायें है। विशुद्ध गीत मे लिखा गया 'जागो जीवन धनिके' गीत भी समाज के आर्थिक विकास से सम्बन्धित है। इन सभी कविताओं में व्यग्य का पक्ष गौण है, भावात्मक पक्ष की प्रधानता है। निराला के परवर्ती काव्य मे यह भावात्मकता व्यग्यात्मकता मे परिणत हो गई है।

'दीन' कविता मे निराला जी लिखते हैं—

यहाँ कभी मत आना,
उत्पीडन का राज्य, दुख ही दुख
यहाँ है सदा उठाना ।
क्रूर यहा पर कहलाता शूर,
और हृदय का शूर सदा ही दुर्बल क्रूर
स्वार्थ सदा रहता परार्थ से दूर,
यहाँ परार्थ वही जो रहे
स्वार्थ से ही भरपूर ।[1]

उत्पीडन की इस चर्चा के साथ निरालाजी ससार के जीवन को ही दु खमय बतलाते हैं और सासारिक जीवन के प्रति क्षोभ प्रकट करते है । वे कहते हैं—

यही मेरा इनका सबका स्पन्दन
हास्य से मिला हुआ क्रदन ।
यही मेरा इनका उनका सबका जीवन
दिवस का किरणोज्वल उत्थान
रात्रि की सुप्ति पतन

स्पष्ट है कि इस रचना से निरालाजी 'दीन' के प्रति सवेदना प्रकट करते हुए भी समस्त सासारिक जीवन को ही दु खमय मान लेते हैं । अतएव यह कविता विशुद्ध रूप से सामाजिक वैषम्य से सबधित बन सकी है ।

इसी प्रकार 'भिक्षुक' कविता मे निरालाजी ने 'भिक्षुक' का दयनीय चित्र खीचा है । देखिये—

वह आता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता ।
पेट-पीठ दोनो मिलकर है एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी भर दाने को भूख मिटाने को—
मुह फटी-पुरानी झोली का फैलाता[2]

यहा भिक्षुक हमारी सहानुभूति तो आकृष्ट करता है, पर हमारे सामाजिक आक्रोप के लिए भूमिका नही देता । 'विधवा' कविता मे भी करुणरस का सुन्दर परिपाक हुआ है ।

---

१ निराला परिमल– 'दीन' कविता से - पृ० १४४ ।
२ निराला 'परिमल'-भिक्षुक कविता से - पृ० १३३ ।

दुख-रुखे सूखे अधर त्रस्त चितवन को
वह दुनिया की नजरों से दूर बचाकर,
रोती है अस्फुट स्वर में,
दुख सुनता है आकाश धीर,
निश्चल समीर,
सरिता की वे लहरें भी ठहर ठहर कर ।[1]

किन्तु इस विधवा के वैधव्य का दोष दैव पर दे दिया गया है और भाग्य की भूमि पर सारी कविता खड़ी रह गई है ।

इन करुणरस की कविताओं के समकक्ष ही क्रांति की भावना से आपूरित कुछ रचनायें हैं, जिनमे 'बादलराग' प्रमुख है । परन्तु क्रांति का तथ्यात्मक स्वरूप सर्वत्र साकार नहीं हुआ । अंतिम 'बादलराग' में किसानों के स्वागत योग्य और अट्टालिका में निवास करने वाले सम्पन्न जनों के लिये भयावनी क्रांति का आभास भी दिया गया है, फिर भी इन रचनाओं में कल्पना और अलंकृतियाँ इतनी प्रमुख हो गई हैं कि विद्रोह का सामाजिक पक्ष पूरी तरह उभर नहीं पाया ।

रुद्ध कोश, है क्षुब्ध तोष,
अंगना-अंग से लिपटे भी
आतंक-अंक पर कांप रहे हैं
धनी, वज्र गर्जन से, बादल,
त्रस्त नयन-मुख ढाप रहे हैं ।
जीर्ण बाहु, है शीर्ण शरीर,
तुझे बुलाता कृषक अधीर,
ऐ विप्लव के वीर !
चूस लिया है उसका सार,
हाड मात्र ही हैं आधार,
ऐ जीवन के पारावार ।[2]

'जागो फिर एक बार' की दोनों रचनाएँ सामाजिक उद्बोधनात्मक हैं, परन्तु इनमे पहली तो दार्शनिक उद्बोधन ही बन सकी है । दूसरी कविता में सामाजिक पक्ष अधिक मात्रा में आया है ।

सिंह की गोद से
छीनता रे शिशु कौन ?

---

१ निराला परिमल–'विधवा' कविता से पृ० १२६ ।
२ निराला . परिमल–'बादलराग' (६) पृ० १८८ ।

मौन भी क्या रहती वह
रहते प्राण ? रे अजान !
एक मेषमाता ही
रहती है निर्निमेष,
दुर्बल वह—
छिनती सन्तान जब
जन्म पर अपने अभिशप्त
तप्त आंसू बहाती है,—
किन्तु क्या ?
योग्य जन जीता है,
पश्चिम की उक्ति नहीं,
गीता है, गीता है,
स्मरण करो बार-बार—
जागो फिर एक बार ।[1]

यहाँ पर 'जागरण' के लिये बड़ी सुन्दर रूपयोजना की गई है। यद्यपि इस कविता मे भी भावोद्रेक की प्रधानता है, तथ्यनिर्देश की नही। 'महाराजा शिवाजी का पत्र' अधिक व्यावहारिक भूमिका पर आया है। इसमे राष्ट्रीय एकता का सदेश मुखरित हुआ है और देश प्रेम की भावना उद्दीप्त हुई है। इस कविता का लक्ष्य राजनीतिक है। इसे हम साम्राज्यवादी व्यवस्था के विरुद्ध निराला का आक्रमण मान सकते हैं। 'गीतिका' मे आई हुई 'जागो जीवन धनिके' कविता मे निरालाजी ने भारतीय दैन्य के निवारण के लिये भारत-लक्ष्मी का आवाहन किया है। सामान्यत गीतो मे 'निराला' अपनी वैयक्तिक भावचेतना को ही अभिव्यक्त करते रहे है। परन्तु इस कविता मे उन्होने एक सामाजिक यथार्थ पर दृष्टि डाली है और देश के आर्थिक उत्थान का सकेत दिया है।

● पूर्ववर्ती काव्य मे व्यग-विडम्बना

निरालाजी का पूर्ववर्ती काव्य भारत की सास्कृतिक, दार्शनिक तथा राष्ट्रीय चेतना की सौन्दर्यमयी अभिव्यक्ति करता है। वस्तुपक्षीय विस्तार मे स्वच्छदतावादी कला-सौष्ठव के उत्तम उदाहरण हम उनकी प्रारम्भिक रचनाओं मे मिलते हैं, यद्यपि रहस्यवादी और वेदान्तिक दर्शन की पुष्टि भी उनकी कविताओ के अतिम चरणो मे मिलती है। दृश्य-सौन्दर्य एव मानवीय प्रेम की स्वस्थ स्थली मे रहस्य-प्रवृत्ति का स्वरूप उनके काव्य को परम सामाजिकता प्रदान करता है। इसका अर्थ यह नही कि उन्होने कविता को दार्शनिक की चिन्तादृष्टि से देखा है, कलाकार की भांति

---

१ निराला : परिमल—'जागो फिर एक बार' (२) कविता से, पृ० २०३,२०४।

निराला की कविताओं का सौंदर्य वस्तु और उसकी विकासात्मक चेतना को भी मुखरित करता है। 'अनामिका', 'परिमल' उनकी स्वच्छंदतावादी दृष्टि के सफल प्रयोग हैं। परन्तु 'दूसरी अनामिका' (वृहत संस्करण) में, जिसमें १६३८ तक की कवितायें मिला दी गयी है, यत्र-तत्र उनकी यथार्थवादी, व्यग्य-विनोदात्मक शैली की कविताओं के उदाहरण भी मिल जाते हैं, जिनको क्रमशः इस प्रकार देखा जा सकता है। यों व्यग्य-विनोद की प्रवृत्ति अपने मे कोई गभीर प्रवृत्ति नही है। हास्यतत्व के मूल में बुद्धितत्व भी यथेष्ट मात्रा में रहता है। उनकी एक प्रवृत्ति विनोदात्मक-व्यंग्यात्मक काव्य की दृष्टि से स्वतंत्र प्रकार की है। उनकी 'मित्र के प्रति' कविता (७-७-३५) मे नये उन्मेष की भावना का स्वरूप प्रेरणा-ग्रहण के रूप मे मिलता है।

"कहते हो, नीरस यह
बन्द करो गान—
कहा छद, कहा भाव
कहा यहा प्राण" [१]

भाव के बन्धनो मे मानवता के नए स्वरो की गुजार संभव न थी। प्रेम की अन्तर्मुखता मे 'कल्याण की पुनीत भावना को जगह नही थी, अह के व्यक्तीकरण मे समाज की अभिव्यक्ति अग्राह्य थी। अतः प्राणो की लालसा मानवीय हित-साधनो मे ही निहित थी, जिसको निराला के कवि मन ने निकट से अनुभव किया था। समाज और व्यक्ति की समस्या को बुद्धिवादी-स्वरूप प्रदान करके निराला ने बहुजन-पक्षीय दृष्टि मे उसका समाधान खोजा है। उनकी 'दान' कविता (१५-४-३५) इस प्रकृति का प्रारम्भ-बिंदु कही जा सकती है। वसत की रम्य प्रकृति के प्रत्यूष-काल का आकर्षक सौंदर्य, कवि-मन मे हिल्लोल पैदा कर देता है और गोमती नदी के पुनीत तट पर निर्मित एक पुल पर खडा होकर व्यष्टि-चेतना के सौदर्य के साथ वह सामाजिक-समस्याओ मे उलझ जाता है। वह सोचने लगता है कि जब दयामयी प्रकृति स्वय सब कुछ देती है, तब उसमे व्यवधान उपस्थित करने की कोई आवश्यकता नही है। मानव ही उस विश्व-सृजन-क्रिया मे श्रेष्ठ उपलब्धि है। लेकिन—

फिर देखा, उस पुल के ऊपर
बहु सख्यक बैठे हैं वानर।
एक ओर पथ के, कृष्ण काय
ककाल शेष नर मृत्यु-प्राय
बैठा सशरीर दैन्य दुर्बल,
भिक्षा को उठी दृष्टि निश्चल

१ निराला : अनामिका–'मित्र के प्रति' कविता से, पृ० १०; तृतीय सस्करण

अति क्षीण कं० है, है तीव्र श्वास
जीता ज्यों जीवन से उदास।[1]

और पुण्य-प्राप्ति के इच्छुक धार्मिक पुरुष जो प्रतिदिन सरिता-मज्जन करने जाते हैं, झोली से पुए निकालकर बदरों को देते हैं, तब उन्होंने—

देखा भी नहीं उधर फिर कर
जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर;
चिल्लाया किया दूर दानव,
बोला मैं 'धन्य, श्रेष्ठ मानव।'[2]

निराला ने मानवीय प्रवृत्तियों को प्रकृतिस्थ रूप देकर प्रथमवार उसकी यथार्थवादी स्थिति को विवेचित किया है। 'दान' कविता की शैली संस्कृत गर्भित तथा सामान्य खड़ी बोली के मेल में स्वच्छन्दतावादी ही है। उनकी 'सच है' कविता (७-१०-३५) में यथार्थवादी शैली का नया प्रयोग दिखाई देता है जिसमें कवि की लालसा, 'जनता का ज्ञान' तथा सच्चे कल्याण की भावना है। ११-७-३७ की 'वन-वेला' कविता में कवि प्राकृतिक दृश्य-स्थली में एकाएक सोचने लगता है—

मैं भी होता यदि राजपुत्र—
जितने पेपर, सम्मानित कण्ठ से गाते मेरी कीर्ति अमर,
लक्षपति का यदि कुमार
होता म शिक्षा पाता अरब-समुद्र-पार,
देश की नीति के मेरे पिता परम पण्डित
एकाधिकार रखते धन पर भी, अविचल-चित्त
होते उग्रतर साम्यवादी, करते प्रचार,
चुनती जनता राष्ट्रपति उन्हें ही सुनिर्धार,
पैसे में दस राष्ट्रीय गीत रचकर उन पर
कुछ लोग बेचते गा-गा गर्दभ-मर्दन-स्वर,—[3] इत्यादि

युग की समस्याओं को छल कपट, पैसा और कूटनीतिज्ञता से बस में करने वाले राजनीतिज्ञ, जो देशोद्धार की बातों में जातिवाद, परिवारगत स्वार्थों से भरे हुये हैं, जिनकी यश-प्रशस्ति को बढ़ाने में पेशेवर कवि गान रच रहे हैं, जिनके परिवार की भी, स्थिति अतिरिक्त विलासों तथा विदेशी वस्तुओं की सहज प्राप्ति से अनोखी है, जिनके लड़के विलायत में शिक्षा पाते हैं, आदि—पूजीवादी वर्ग पर व्यंग किया गया है। इसी प्रकार 'हिन्दी के सुमनों के प्रति' (७-४-३७) कविता में भाषा-विचार

---

१ निराला : अनामिका, 'दान' कविता से, पृ० २४।
२ वही, पृ० २५।
३ निराला : अनामिका—'वनवेला' कविता से, पृ० ८५–८६।

पर व्यग्य-दृष्टि तथा 'ठूठ' (१६–६–३७) कविता मे कवि अपने को मानव के रूप मे मानकर उसकी पूर्वप्रवृत्तियो पर व्यग करता हुआ दिखाई देता है ।

ठूठ यह है आज ।
गई इसकी कला,
गया है सकल साज ।
झरते नही यहाँ दो प्रणयियो के नयन–नीर,—[1]

इस प्रकार निराला के पूर्ववर्ती व्यग-काव्य का प्रथम चिन्ह 'दूसरी अनामिका' मे प्राप्त कुछ रचनाओ मे दिखाई देता है । छायावादी-रहस्यवादी दृष्टि से यथार्थवाद की ओर प्रयाण, प्रगतिवादी दृष्टि का भावात्मक रूप, हास्य व्यग्यो से भरी अभि-व्यक्ति जिसमे अप्रत्यक्ष ध्वनिया है, इस सग्रह मे यत्र-तत्र मिल जाती हैं, परन्तु यहाँ समाधान खोजने का लक्ष्य प्रतीत नहीं होता । एक मर्माहत सवेदना से भरा हुआ गान ही प्रस्तुत किया गया है । इन कविताओ की आरमा मे निरालाजी की अपनी परि-स्थितियो तथा सामाजिक विकृतियो की प्रतिक्रिया का स्वरूप परिलक्षित होता है । शैली की दृष्टि से इन्हे यथार्थवादी नही कहा जा सकता । स्वच्छद छदो मे लय का बन्धन तथा सस्कृत-गर्भित क्लिष्ट भाषा का प्रयोग भी इनमे मिलता है । यह स्वच्छदता-वादी भूमिका पर यथार्थ वस्तु के प्रयोग की उपलब्धिया हैं । निरालाजी इसी प्रारभिक भूमिका से यथार्थवादी-व्यापक क्षेत्र को सफलता के साथ अपना सके हैं, जिस पर उनका परवर्ती काव्य रचित है ।

● निराला के परवर्ती काव्य की प्रमुख प्रवृत्तिया

निराला के पूर्ववर्ती काव्य की भाषा सस्कृत भाषा के सौंदर्य से सपन्न है । इस परवर्ती काव्य मे निरालाजी ने हिंदी की भूमिका अपनाई है । यहाँ हम हिंदी की अपनी अलकृति का काव्य पाते है । निराला म इतनी क्षमता है कि वे एक ओर अपनी सस्कृत ढग की कविता प्रस्तुत करते हैं तो दूसरी ओर हिंदी के वैशिष्ट्य और महत्ता को प्रकट करके वे सस्कृत-मिश्रित हिंदी काव्य प्रस्तुत करते हैं । इस नये काव्य मे हिंदी उर्दू का भी मेल-जोल है । परवर्ती रचनाओ मे कुछ तो धारा हास्य-व्यग्य की है, कुछ सामाजिक वैषम्यो से प्रेरित रचनाएँ है । कुछ चमत्कार-प्रधान कविताएँ हैं । नयी भाषा शैली नये भाव आदि सभी एक प्रकार की प्रयोगवादी रचनाएँ हैं । उर्दू गजल आदि की कृतियाँ भी इसी काव्य के अतर्गत आती है । साहित्यिक वैशिष्ट्य की दृष्टि से उनकी परवर्ती रचनाएँ यथार्थोन्मुख हैं । इसलिये कहा जाता है कि निरालाजी परवर्ती काव्य मे लोकोन्मुख है । यों परवर्ती काव्य-कृतिया तो आत्मनिवेदन से सबधित हैं और यदि कही यथार्थवाद है, तो उनके व्यक्तिगत दृष्टिकोण मे है ।

---

१ निराला अनामिका–'ठूठ' कविता से, पृ० १३६ ।

व्यंग्यात्मक रचनाओं में जो यथार्थवाद है वह जीवन-सौंदर्य के विरोध में है। इसी विरोध में कुरूपता नजर आती है। कुरूपता को देखने वाला यथार्थवाद एक प्रकार का औपचारिक यथार्थवाद है। कहीं-कहीं गहरी कुरूपता के चित्र भी अंकित किये हैं जो एक प्रकार का नग्न चित्रण है। जो असामान्य सौंदर्य के चित्र हैं, वे निरालाजी की उदात्त कल्पनाओं के द्योतक हैं। उनकी प्रगतिशील कविता—

> वह तोडती पत्थर,
> देखा मैंने उसे इलाहाबाद के पथ पर—

आदि में सामाजिक वैषम्य का चित्रण है जो इतिवृत्तात्मक है। इसमें सशक्त विद्रोह की कल्पना परिलक्षित नहीं होती। निराला के छंद, भाषा और कथन-शैली सब नये प्रयोग के परिचायक हैं।

प्रगति और प्रयोग को सिद्धांत-दृष्टि देकर निराला दोनों के वादीय पक्ष से ऊपर उठ जाते हैं। साहित्य में जिसे प्रगतिवाद और प्रयोगवाद कहा गया है, निराला उसके प्रथम सिद्धांत-दायक हैं। परन्तु रचना-भूमि पर वे दोनों शैलियों को अधिक व्यापक बना देते हैं। कहने का अर्थ यह है कि निराला ने न तो स्वयं को साम्यवादी सिद्धांत-कर्त्ता कहा, न स्वयं को प्रयोग-कर्त्ता के रूप में सिद्धांत-अनुगामी होने दिया है। यही कारण है कि उनके बुद्धिपरक सामाजिक व्यंग्य यथार्थवत् होकर भी स्वाभाविक स्वच्छन्दता के अनुकूल तथा रूढ़िगत प्रयोगशीलता के प्रतिकूल है। यहाँ हम निराला के परवर्ती काव्य की कुछ मुख्य प्रवृत्तियों पर विचार करेंगे।

(१) **वस्तुमुखी या यथार्थोन्मुख चित्रण :** निराला का परवर्ती साहित्य जीवन की समस्याओं को खुले रूप में प्रस्तुत करता है। उनके कथा साहित्य, उनके काव्य 'कुकुरमुत्ता', 'बेला', 'नये पत्ते' आदि में यथार्थोन्मुख शैली का चित्र प्रस्तुत किया गया है। निरालाजी के यथार्थवाद का स्वरूप न तो प्रगतिशील कलाकारों की भांति साम्यवादी सिद्धांतों की दलील प्रस्तुत करता है और न प्रवृत्ति-पक्ष में उसके आर्थिक पक्ष का उद्घाटन करता है। उनका यथार्थ अनुभवमूलक है, जिसमें जन-मन के अभावों की, उनकी वाह्य दयनीयता की मर्मस्पर्शी रूपरेखा मिलती है। उसका समाधान प्रेमचन्द की प्रचारात्मक एवं सुधारात्मक प्रवृत्ति में नहीं किया गया है। वरन् प्रसाद जी के 'कंकाल' की भांति बौद्धिक धरातल से पर्दाफाश के रूप में किया गया है। मानव का मानव की रुग्णात्मक प्रकृति पर जो व्यंग किया गया है, वह सामाजिक समस्याओं का ही समाधान बन जाता है। 'कुकुरमुत्ता' का मर्म इसी मानवीय पक्ष के उभारने में तर्क-परक व्यंग्य को सामने लाता है। यहाँ हम निराला के यथार्थवाद की विवेचना नहीं कर रहे हैं, उस प्रवृत्ति के स्वरूप और क्षेत्र का एक रूप-चित्र ही दे रहे हैं। निराला का यथार्थवाद वर्गीय समस्याओं से लेकर देशीय और विदेशीय विषय-वस्तुओं तक, समाज के व्यक्तिपरक आधार से लेकर उसके

समूह-परक रूप तक प्रसरित है। निराला की इस नवीन वस्तुमुखी दृष्टि का एक स्वाभाविक परिणाम उनकी चित्रण-शैली म भी नये स्वरूप का विधान है। यह नया स्वरूप यथार्थोन्मुख या वस्तुपरक ही कहा जा सकता है, जो भावमूलक और विषय-प्रधान शैली से भिन्न है। इस नवीन चित्रण-शैली के सबध मे हम इस अध्याय के प्रारभ मे सक्षेप मे विचार कर चुके हैं। यहाँ हमें इतना और निवेदन करना है कि निराला जैसे उत्कृष्ट कलाकार विषयानुरूप शैली को अपनाने के लिये बाध्य थे। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती काव्य की शैली का बहुत कुछ कायापलट ही कर दिया है। उनके परवर्ती काव्य का समस्त ससार बदला हुआ है। उन्ही मे से एक नवीन चित्रण-शैली भी है। इस यथार्थोन्मुख चित्रण-शैली के लिये भाषा को भी नया स्वरूप देना था और निरालाजी ने यह कार्य भी सपन्न किया है। नई शैली का एक उदाहरण देखिये—

> बहुत दिनों बाद खुला आसमान,
> निकली है धूप, हुआ खुश जहान।
> दिखीं दिशाएँ, झलके पेड,
> चरने को चले ढोर—गाय—भैंस—भेड,
> खेलने लगे लडके छेड़—छेड़—
> लडकियाँ घरों को कर भासमान।[1]

यहाँ भासमान' शब्द को छोडकर शेष सारा परिधान निराला की नई कला के अनुरूप है।

(२) व्यंग, विनोद, हास्य की प्रवृत्ति : नये युग की प्रत्येक अवस्था को निरालाजी ने अपनी लेखनी का विषय बनाया है। नागरिक, ग्रामीण राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक रूपों का यथातथ्य चित्र भी खीचा है। उनका यह चित्र असतुलन और विघटन के तत्वों पर व्यग करता है। इसम अनेकोन्मुख दृश्यों का बाहुल्य है।

व्यग मूलत बुद्धिपरक विवेचन को सामने लाता है, जिसका रूप-वैभव हलका होता है। व्यगो के अनेक प्रकार हो सकते हैं। व्यग वैयक्तिक भी हो सकते हैं। परन्तु निरालाजी के व्यग सामाजिक यथार्थपरक हैं। उन्ही व्यगो के रूप मे वे नये तर्क उपस्थित करते हैं। उनका समाधान करते है तथा नये समाज की चेतना को व्यापक बनाते हैं। निरालाजी के य व्यग हास्यात्मक शैली में मानवतावादी मर्म को सामने रखते हैं। 'कुकुरमुत्ता भारतीय वर्गीय जीवन की साधारण व्यग-कथा नही है। उसका रूप-वैभव बहुत सरल जान पडता है। नये पत्ते' की कविताओ म राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक व्यग्यों का भरपूर चित्रण दिखाई देता है। सामाजिक व्यग का एक उदाहरण देखिये—

---

१ निराला अनामिका—'खुला आसमान', पृ० १३८।

दौडते हैं बादल ये काले काले,
हाईकोर्ट के वकले मतवाले।
जहाँ चाहिए वहा नही बरसे,
धान सूखे देखकर नही तरसे।
जहाँ पानी भरा वहाँ छूट पडे,
कहकहे लगाते हुए टूट पडे।'

(२) हास्यविनोदात्मक शैली.—व्यगो का अर्थ ही पाठक के मन पर सहज चोट करना होता है। निरालाजी के व्यग यथार्थ जीवन से लिये गये है। उनकी सामाजिक उपादेयता है। वे जनता की समस्याओ को सूचित करते हैं। अत उनकी शैली मे तीखी भाव व्यजना प्रस्तुत की गई है। उपन्यास-साहित्य मे उपजातियो के वैमनस्य, ग्रामीण जीवन के प्रवृत्तिगत दोषो, नर नारियो के चारित्रिक रूपो पर यत्रतत्र व्यग्य किये गये है। काव्य मे उनका विकास विस्तृत भूमि पर हो सका है। हास्य विनोदात्मक शैली का एक उदाहरण इस प्रकार है—

मैं ही डाडी से लगा पल्ला,
सारी दुनियाँ तोलती गल्ला,
मुझसे मूछें, मुझसे कल्ला,
मेरे लल्लू, मेरे लल्ला,
कहे रुपया या अधन्ना,
हो बनारस या नेवन्ना,
रूप मेरा, मैं चमकता,
गोला मेरा ही बमकता
लगाता हूँ पार मैं ही,
डूबता मँझधार मैं ही।
डब्बे का मैं ही नमूना,
पान मैं ही, मैं ही चूना।'

(३) प्रगतिशील भाव धारा.—जैसा कि पहले कहा जा चुका है, जिसे हिन्दी मे प्रगतिवाद कहा जाता है, निराला उसके व्यावहारिक पक्ष को किसी सिद्धातबद्धता मे स्वीकार नही करते। वे मार्क्सीय विचारधारा से परिचित थे, परन्तु हिंसा और नागरिक क्राति को खूनी नही बनाना चाहते थे। निराला ने क्राति की सूचना दी, परन्तु उनकी क्राति का स्वरूप वैचारिक है, बौद्धिक है, तर्कपरक है।

---

१ निराला नये पत्ते, खजोहरा कविता से—पृ० ११।
२ निराला कुकुरमुत्ता से—पृ० ६।

वे प्रगतिशील साहित्य की जनप्रिय भाषा को स्वीकार करते हैं। खड़ी बोली को बोलचाल वाली भाषा, देशज शब्दो का प्रयोग, उनके इस यथार्थवादी पक्ष का लोकप्रिय बनाते हैं। निराला यथार्थवादी कलाकार के रूप में वर्गीय विषमता के साथ साथ भौतिकवाद की नयी स्वीकृतियो को भी तटस्थ दृष्टि से देखते हैं।

परवर्ती काव्य की मुख्य भूमि है उसकी सामाजिक चेतना का विकास। वैयक्तिक अनुभूतियो को वेदातिक स्पर्श से शाश्वत बनानेवाला भारती का अल्हड गायक निराला जब उपचेतन की बन्द आँख को खोलता है, तो चेतन संसार की बिखरी मर्मस्पर्शी-राशि से प्रफुल्लित हो उठता है। निराला की नयी सामाजिक चेतना का मूल उद्‌भव उनके व्यक्तित्व पर पडे सामाजिक अनुभवो मे खोजा जा सकता है। उनका नया समाज, विज्ञानवादी भौतिक मान्यताओ से विपन्न है, वर्गवादी विषमताओ से लुजपुज है, साम्राज्यवादी अत्याचारो से पीडित तथा रूढिवादी विचारधाराओ से कुठित है। निराला का नया समाज १९२१ से १९४२ तक की भारतीय परिस्थितियो का कच्चा चिट्ठा सामने रखता है, जो उनके उपन्यासो तथा 'कुकुरमुत्ता' 'नये पत्ते' आदि काव्य-सग्रहो मे स्पष्ट देखा जा सकता है। प्रश्न है, क्या निरालाजी ने अपनी दृष्टि को सुधारात्मक बनाया है, जो द्विवेदी-युग के काव्य की स्थूल भूमि कही जा सकती है? क्या निरालाजी ने यथार्थ का प्रकृत-पक्ष स्वीकार किया है, जो उपन्यासकार नागार्जुन आदि मे दिखाई देता है? क्या निराला का समाज केवल वर्गवादी पीडा का रुदनालाप करके शुद्ध आदर्श पाना चाहता है, जैसा प्रेमचद मे मिलता है? वास्तव मे ये प्रश्न निरालाजी के व्यक्तित्व और कृतित्व से सम्बन्धित हैं। निराला की सामाजिक चेतना राष्ट्रीय जीवन की मूक वेदना को नया स्वर देती है, जनजीवन की असहाय स्थिति को कर्मप्रेरणा देती है। परन्तु इसका स्वरूप व्यग्यात्मक, तर्कप्रधान तथा विद्रोहकारी रहा है। यह निराला के नये काव्य का निष्कर्ष है जिस पर उनका नया महल बन सका है।

(४) प्रयोगात्मक लेखन —आधुनिक हिन्दी साहित्य को प्रगतिवादी विषय-भूमि तथा प्रयोगवादी शिल्प विधान देने मे निराला का ऐतिहासिक महत्व स्वीकार करना होगा। प्रयोगकर्ता के रूप मे निराला केवल कलाकार या शिल्पी ही नही रहे हैं। साहित्य के नये मोडो को आगे बढानेवाले सर्जक या उद्‌भावक भी रहे हैं। विषय के क्षेत्र मे यथार्थवादी सस्कृति को विचारात्मक भूमि से देखते हैं। यदाकदा उनके उपन्यासो मे विचार-पक्ष का उग्रतर रूप देखने को मिल जाता है। परन्तु उनके विचारात्मक व्यग्यो का प्रयोग तीखी चोट करता है। शिल्पी के रूप मे निराला हिन्दी के प्रथम प्रयोगवादी कहे जा सकते है। उनका यह शिल्प-प्रयोग स्वच्छद या मुक्त छद से आरम्भ हुआ, किन्तु स्वच्छद छद मे जो लय और सगीत की ध्वनि थी, उसमे जो प्रवाह और प्राजलता थी, वह परवर्ती रचनाओ मे नही रह गई है। कहने का तात्पर्य यह है कि छायावादी एव स्वच्छदतावादी भूमि पर जो

नव-विधान भावना और कल्पना के सहारे निराला ने दिया था, इस परवर्ती काव्य मे बुद्धिगम्य होकर नीरस; परन्तु चुभने वाला, व्यंग्यात्मक और तीखी चोट करने वाला बन गया है। बोलचाल की भाषा मे उर्दू अंग्रेजी, के शब्दो का प्रयोग तथा देशज भाषाओं के शब्दो का लालित्य इस विचारात्मक साहित्य को जनप्रिय बनाता है। उनकी इस प्रयोग-शक्ति मे अनेकोन्मुखता है, विषय-विस्तार की पूरी क्षमता है; संकोच नही दिखाई देता। विशेषता यह है कि ये सिद्धांत-आश्रित होकर किसी निर्णय को प्रत्यक्षतः नही देते है। तटस्थ रूप ही उनकी इन रचनाओं मे दिखाई देता है। विश्वम्भरनाथ उपाध्याय का यह कथन चिन्तनीय है कि "प्रयोग नवीन अवश्य है; परन्तु अवाछनीय नवीनता, ग्राह्य प्राचीनता से भी हानिकर हो जाती है। ऐसा लगता है कि निराला विरोधो के बीच से गुजर कर प्रत्येक वस्तु का उपहास करता हुआ अपने प्रति किये गये अत्याचारो का बदला लेना चाहता है।"[1] परन्तु बदला लेने का भाव निराला के इस परवर्ती काव्य मे नहीं है। उनके सामाजिक विचारो पर आधारित समाजवादी पद्धति के व्यग उनकी ग्राह्यक्षमता को ठेस पहुँचाते है। यह चोट उनके भास्वर ग्रह की विचारात्मक स्वीकृति है; जो युग की वितृष्णा को भुलावा देना नही चाहती। निराला सामाजिक जीवन को मानसिक क्रांति का सदेश देते हैं। इसमे उनकी व्यक्तिगत असहायता का बदला नही है। उनके साहित्य मे भविष्य की आशा या सदेश है। निरजनजी ने ठीक ही कहा है— "निरालाजी के विकास की समूची परम्परा हमें सिखाती है कि इस ज्वार (देश की तत्कालीन परिस्थिति) के साथ बढकर परिवर्तन की घड़ी लाने के लिये हिन्दी-लेखको और कवियो को आगे बढना है।"[2]

(५) उर्दू छंद-सृष्टि :—निराला के प्रायोगिक काव्य का एक स्वतंत्र अंश वह है, जिसमे उन्होने उर्दू की गजल शैली की बहारें अपनाई हैं। 'बेला' का समस्त काव्य-सग्रह तथा कुछ अन्य कृतियाँ भी उर्दू शैली के अन्तर्गत आती हैं। यहाँ शैली से हमारा मुख्य आशय छद योजना से ही है। क्योकि जहाँ तक भावो की नियोजना का प्रश्न है, निराला ने 'बेला मे भी अपनी क्रमागत भावभूमिका को छोड़ा नही है।' एक प्रकार से निराला की उर्दू शैली की कविताओ को हिन्दीकाव्य के चौखटे को नई नक्काशी देना-मात्र कहा जायगा। निराला ने इस शैली की रचनाओ मे भाषा-प्रयोग भी विविध प्रकार के किये हैं। उनमे उर्दू की एकरसता तो है ही नही, हिन्दी का भी कोई सचन्त प्रयोग नही मिलता। इन्हे हम मिश्रित प्रयोग भी कह सकते है। इस विषय का विस्तृत विवेचन हम आगे चलकर एक स्वतत्र अध्याय मे करेंगे।

---

१ विश्वम्भरनाथ उपाध्याय . कवि निराला : काव्यकला और कृतियाँ, पृ० २१६।

२ निरजन—(लेख)—नया साहित्य, पत्रिका-जनप्रकाशन-गृह—पृ० ६६।

(६) गीत सृष्टियाँ —निराला के परवर्ती काव्य मे गीतो की सख्या सर्वाधिक है। इससे सूचित होता है कि निरालाजी मनोमय हो गये हैं। इन गीतो को मुख्यत: ७ भागो में रखा जा सकता है—

(१) शृगारिक गीत।
(२) भक्ति, प्रार्थना और विनय के गीत
(३) आत्मपरक गीत
(४) ऋतु और प्राकृतिक गीत
(५) दार्शनिक, सास्कृतिक और आध्यात्मिक गीत
(६) प्रगतिशील गीत
(७) प्रयोगशील गीत

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य गीत भी है जिन्हे हम स्फुट गीतो की श्रेणी मे रख सकते हैं। उनकी प्रारभिक कृतियो मे शृगारिक गीत मिलते हैं। ये परिष्कृत रचनायें हैं। यह भी उनकी बदली हुई मनोवृत्ति का परिचायक है। निरालाजी के जीवन मे जो परिवर्तन आया है, वह उन्हे प्रार्थना, आत्मरक्षा, ईश्वर-प्रीति की ओर ले जाता है। आत्मपरक गीतो मे ससार के प्रति उलाहना का भाव इन गीतो की विशेषता है। इसमे हलके व्यग की भी सस्थिति है, अत निराला के परवर्ती काव्य मे व्यग्य है, उपालभ हैं और आरोप है। चौथे प्रकार के गीत ऋतु और प्राकृतिक गीत हैं। निरालाजी आरभ से ही प्राकृतिक गीत लिखते आये हैं, जिनमे वर्षा-गीतो की सख्या सर्वाधिक है। प्राकृतिक गीतो मे दूसरा स्थान बसत का है। प्रकृति के कवि के लिये यह स्वाभाविक है। दार्शनिक, सास्कृतिक और आध्यात्मिक गीतो को भी निरालाजी ने नही छोडा है। अपनी आध्यात्मिकता या अपनी निष्ठा भी एक प्रकार की भक्ति-कविता है। अपने दैन्य का प्रदर्शन करना भी एक प्रकार का वैयक्तिक आत्म-निवेदन है। कुछ गीत सामाजिक है, जिनमे समाज के वैषम्य, उसकी कुठाओ का ही चित्रण किया गया है। अतत इनमे भी प्रार्थना ही है। यह भी ईश्वरीय तत्व के प्रति वस्तु-कथन कहा जा सकता है। जिस समाज म हम हैं, उसकी यह हालत, यह दुर्दशा है। इसे देखकर कुछ लोग निराला के परवर्ती काव्य को प्रगतिवादी बताते है। पर सौदर्य से कुरूपता की ओर जाना ही प्रगतिवाद नही है। पूजीवादी सभ्यता के स्वरूप को दिखाने वाले गीत प्रगतिशील हैं, जिनका उल्लेख आगे किया जायगा। प्रयोगशील कृतियां भी हैं। छदो के नए प्रयोग, भाषा-शैली के नए आयाम मिलते है। निराला के वास्तविक काव्य की जो शैलीगत भूमिका है, उसी को हम उनकी प्रयोगशील प्रवृत्ति कहकर पुकारते हैं। बाद के गीतो मे कुछ अस्पष्टता आ गई है। कहीं-कहीं अनावश्यक अनुप्रासों की भरमार आदि निराला की विक्षिप्तावस्था को सूचित करती है, यद्यपि वे अपने ढग के अनोखे और बेजोड गीत हैं।

परवर्ती प्रगीत-रचनाएँ

निराला के परवर्ती काव्य मे ऊपर वर्णित प्रवृत्तियो के अतिरिक्त उनकी आरंभिक सास्कृतिक भाव-भूमिका को प्रकट करने वाली कुछ प्रगीत-रचनायें भी है, यद्यपि उनकी सख्या अपेक्षाकृत कुछ कम है। इन स्फुट रचनाओ की परपरा यो तो 'परिमल' की कुछ लम्बी कविताओं 'जागो फिर एक बार' 'महाराज शिवाजी का पत्र' से ही आरंभ हो जाती है, परन्तु इनका विकसित रूप हमें 'तुलसीदास', 'राम की शक्तिपूजा' आदि मे प्राप्त होता है। सन् ३८-३९ के पश्चात् लिखी गई ऐसी कविताओं में कुछ तो प्रशस्ति-मूलक है; जैसे 'सत कवि रविदास के प्रति', 'आदरणीय प्रसादजी के प्रति', 'आचार्य शुक्ल के प्रति', 'माननीया विजयालक्ष्मी पडित के प्रति', 'युगप्रवर्तिका श्रीमती महादेवी वर्मा के प्रति' आदि है। कुछ अन्य कवितायें जैसे 'स्वामी प्रेमानन्द जी महराज', 'सहस्राब्दी', 'भगवान बुद्ध के प्रति' विशुद्ध सास्कृतिक भूमि पर रची गई है। यदि शैली की भिन्नता को छोड दें तो ये सभी रचनायें निराला के पूर्ववर्ती काव्य की भावभूमिका मे आती है। ये रचनाय 'अणिमा' नाम के सग्रह मे आई है। 'नये पत्ते' नामक सग्रह मे 'देवी सरस्वती' 'तिलाजलि', 'युगावतार परमहस रामकृष्णदेव के प्रति' और 'कैलाश मे शरत्' शीर्षक की है।

इन सभी प्रगीतो मे 'निराला' अपनी आदर्शोन्मुख और भावमूलक भूमिका पर बने रहे है। उनमे किसी प्रकार का भाव-विक्षेप नही है। यद्यपि ये परवर्ती रचनाएँ निराला के पूर्ववर्ती काव्य की भाति प्रवाहपूर्ण और प्रेरणामय नही है। इनमे ऐतिहासिक और दार्शनिक पक्ष की प्रमुखता है।

उपसंहार

निरालाजी को कुछ लोग भ्रातिवश साम्यवादी समझ बैठते है। परन्तु उनका यह मात्र दुराग्रह है। वे किसी सिद्धात के अनुगामी कभी नही रहे है। आधुनिक भारतीय समाज की विषमताओ मे अधिकतम लोगो के अधिकतम सुख को चाहने वाला कलाकार समाजवादी प्रकृति का होगा, यह स्वाभाविक था। भारतीय सस्कृति को नयी खुशहाली दिलाने का कार्य खून की होली से ही हो सकता था। यही कारण है कि निरालाजी ने व्यग्य किये हैं। रूढ़ियो पर कुठाराघात किया है। तत्कालीन राजनीति का विरोध किया है तथा नेतागण के खयाली पुलावो को ठुकराया है। 'मास्को डायेलाग्स' कविता मे रूसी क्रांति का विज्ञापन करने वाले व्यक्ति का उपहास करते हैं। नये पूजीवादी स्वरूप की 'कुकुरमुत्ता' मे भर्त्सना करते हैं। उनकी प्रगति का स्वरूप जन-चेतना को उभारने की दिशा मे है। निष्कर्षत. वे स्थिति का ज्ञान कराने के साथ साथ कार्य-क्षमता की सक्रियता पर बल देते है। निराला मे नारेबाजी नही है। वे जीवन की धूप-छाह को ही विकास-सूचक चिन्ह मानते हैं। क्योकि उस युग के जीवन का स्वरूप प्रतिक्रियावादी तत्वो से पूर्ण था, अतः निराला के

साहित्य-निर्माण के लक्ष्य की सजगता दिखाई देती है। यही कारण है कि उनका साहित्य विचार-भूमि पर भी गतिशील तत्वों को जुटाता रहा है।

उनके छायावादी स्वच्छंद छंद जहा लय-संगीत की ध्वनियों से नई स्वर लहरी की व्यंजना देते थे, वही अब विचाराधिक्य के कारण गद्यपरक हो गये हैं। उनमें काव्य-शोभा के उपकरण व्यंग्य और विनोद ही हैं। उनकी व्यंग्यात्मक रचनाओं का लक्ष्य विषयपरक है, केवल शैलीपरक नही।

उनके परवर्ती काव्य में उनके पूर्ववर्ती रूप भी दिखाई देते हैं। 'आराधना' और 'गीतगुंज' में उपासनापरक धार्मिक कवितायें उन्हें आस्तिक कवि के रूप में सामने लाती हैं, जिनमें वेदान्तिक स्पर्श तथा लोकपरक अध्यात्म का रूप भी देखने को मिलता है। समग्र रूप से निराला की यह गीतसृष्टि उनके संपूर्ण सृजन की परिणति कही जा सकती है। यह उनके पूर्ण व्यक्तित्व की अंतिम स्वस्थ झांकी है।

१९३९ के बाद जब निरालाजी साहित्य को सामाजिक भूमि पर लाते हैं और जनता की समस्याओं को व्यंग शैली में व्यक्त करते हैं, तब से लेकर 'गीतगुंज' (१९५६) तक उक्त प्रवृत्तियों का ही क्रमिक विकास दिखाई देता है। समग्र रूप से निराला का यह काव्य-विकास उनके व्यक्तित्व की बहिर्चेतना का सामाजीकरण कहा जा सकता है, जिसमें जीवन के कटु अनुभवों से प्राप्त व्यंग्या को रखा गया है। इस प्रकार उनके इस साहित्य में सामाजिक विषमता की अग्नि का धुआं ही नहीं है, उसका प्रकाश भी दीप्तिमान होता है, यही प्रकाश उनकी आशाभूमि है, उनका गति-सूचक उत्साह है।

५

निराला की हास्य और व्यंग्यमूलक कविताओं का अध्ययन

(क) काव्य मे हास्य और व्यग का अर्थ

काव्य का मूल आनन्द है। आनन्द को यदि किसी दार्शनिक या अन्य गभीर उद्देश्य की भूमिका म बाधकर न देखें, उसे लोक जीवन के सामयिक तथा सामाजिक मूल्यो मे रखकर देखें, तो बहुत कुछ वह मनोरजन के समीप दिखाई देगा। अत मनोविनोद या मनोरजन भी कलागत चिन्तन के मूल मे अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखता है। कला या काव्य के प्रयोजन मे हास्य और व्यगो की उपादेयता, सामाजिक अस्तित्व की व्यवस्थाओ से लेकर वैयक्तिक जीवन की अवस्थाओं तक, दिखाई देती है। यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या कलागत हास्य और व्यगो का कोई गभीर लक्ष्य या स्वरूप नही हो सकता ? क्या उनकी लम्बी परपरा या स्थायित्व नई अवस्थाओ मे जल्दी स्वीकार नही किया जा सकता ? क्या इस उद्देश्य से लिखा गया साहित्य जीवन की आलोचना का मुख्य पहलू नही कहा जा सकता ? इन प्रश्नो का उत्तर खोजने के लिये हम साहित्य की विकासात्मक परपरा पर दृष्टिपात करना पडेगा, जिसके अन्दर इस प्रकार के साहित्य का मूल्याकन किन्ही नये उपकरणो को ला सका है।

(ख) भारतीय वाङ्मय मे हास्य-व्यग्य

भारत मे कला और काव्य का इतिहास, चेतना की गभीरतम उपलब्धियो को, जीवन चिन्ता के फल व स्वरूप म प्रस्तुत करता है। परिणामत भारत की ललित कलाओ का अंकन, दर्शनशास्त्र के आधार से हुआ है। स्वतन्त्र रूप से क्या की इयत्तायें आदर्शपरक भाव-सौन्दर्य की सृष्टि करती रही है। इन सबके सृजन का मूल कारण, सास्कृतिक निष्ठा रही है। परन्तु इसका अर्थ यह नही कि हास्यात्मक व्यग विनोद भारतीय वाङ्मय के अग नही रहे हैं। पचतत्र और जातक-कथाओ मे, विविध धर्मों की साम्प्रदायिक विवेचनाओ म, जातीय अहं की स्थापनाओ मे, इनका स्वर सुनाई देता है। परन्तु हास्य-हास्य के लिये, व्यग, व्यग या विनोद के लिये हमारे साहित्य म कम मिलता है। पूछा जा सकता है कि भारतीय कला का लक्ष्य सदैव सुखात माना गया है, परन्तु भारतीय सुखांत की व्यापकता मे समस्त दार्शनिक

अनुचिंतन, जीवन का अंतिम लक्ष्य समा जाने के कारण, उसकी शारीरिकता अर्था स्थूल साज-सज्जा, छुटपुट रगीनी का अभाव हो गया है।

○ पश्चिमी दृष्टि

पाश्चात्य साहित्य मे सुखात की परपरा को दु खात से अलग देखा गया है उसके अपने स्वतन्त्र विवेचन हुये हैं। अरस्तू से लेकर होरेस तक हास्य की रूपरेखाओं पर शास्त्रीय पद्धति से विचार विमर्श हो चुका था। अत इस प्रकार के साहित्य की प्राचीन परपरा वहा देखने को मिलती है। प्रसिद्ध औपन्यासिक थैकरे ने सर्वश्रेष्ठ हास्य का गुण बतलाते हुए कहा है—'सबसे सुन्दर हास्य वह है जो आदि से अत तक सहृदयता और सहानुभूति मे सुवासित हो।'[1] परन्तु इसमे सामाजिक सुधारात्मकता या एक प्रकार की यात्रिक आदर्शपरकता दिखाई देती है। स्थूल लक्ष्यों की नियोजना शास्त्रीय युग की देन कही जा सकती है। मध्यकाल तथा आधुनिककाल मे इसका स्वरूप बदलता रहा है।

भारतीय दृष्टि सस्कृति को ज्ञान-चेतना का उन्मेष तथा समग्रजीवन की वृत्ति समझती है, यही कारण है कि हमारे यहाँ साहित्य का भौतिक आधार अपेक्षाकृत निर्बल रहा है। पाश्चात्य सस्कृति मे भौतिक दृष्टियो का प्राधान्य दिखाई देता है। जीवन का ऐहिक सभावनाओ से ऊपर किसी उच्चतर भूमिका पर नहीं देखा गया है। आनन्द को इन्द्रिय-सवेदन की इयत्ता से बाध दिया गया है। धर्म को प्रवृत्तिगत सुलभता प्राप्त करने का रास्ता बना दिया गया है। यही कारण है कि पाश्चात्य सस्कृति मे जीवन के ऊपरी रूप महत्वपूर्ण रहे हैं।

साहित्य क्योंकि सामाजिक चेतना का प्रतिबिंब है, अत उनके साहित्य मे, मानसिक प्रवृत्तियो के गुणो-अवगुणो का चिट्ठा बडे ही आकर्षक ढग से प्रस्तुत किया गया दिखाई देता है।

उनके साहित्य म दुखात की भूमिका का गभीर उद्देश्य चारित्रिक उन्मेष की गम्भीरता मे रहा है भले ही सामाजिकता की दृष्टि से नीतिपरक परिष्कारो को महत्व दिया गया हो। अरस्तू ने रेचन सिद्धान्त के सहारे दु खात कृति को नीतिपरक बनाने का गभीर विवेचन प्रस्तुत किया था। परतु सुखात कृति के विवेचन में हमे भद्दे रूपो की क्रियाओं का भान भी होता है, जिनका अपना स्वतत्र शास्त्र रहा है। अधिक शास्त्रीय विवेचन मे न जाकर हम अपने विषय पर ही रहना अधिक समीचीन समझते हैं।

पाश्चात्य देशों मे 'हास्य' के कई उपकरण देखने को मिलते हैं। पाश्चात्य विद्वानो ने इसे इस क्रम स रखा है—

1 "The best humour is that which is flavoured throughout with liveliness and kindness. Thackeray : Humour and Humourists

स्मित हास्य	(Humour)
वाग्छल	(Wit)
व्यग्य	(Satire)
वक्रोक्ति	(Irony)
प्रहसन	(Farce)

यहाँ इन पाचो भागो पर स्वतत्र रूप से कुछ न कहकर केवल हास्य और व्यग की चर्चा करना ही उपयुक्त है।

हास्य और व्यग्य मे अन्तर

प्रसिद्ध विद्वान सूली का मत है कि 'हास्य स्पष्टत एक भाव है, किन्तु साथ ही इसमे *बौद्धिक तत्व की विशिष्ट योजना रहती है।*'[1]

निकोल ने भी हास्य की विशेषताओ म समझदारी और नासमझी के बीच का व्यापार प्रदर्शित किया है।

मेरिडिथ ने सतुलन की माग प्रस्तुत की है।

व्यग्य का स्वतत्र अस्तित्व नाटकों म दिखाई देता है। व्यग भी सोद्देश्य होता है जिसके मूल मे विनोदात्मक दड देना रहा है। (To punish with lau ghter) मेरिडिथ के अनुसार व्यग्यकार नैतिकता का ठेकेदार होता है। प्राय वह सामाजिक कूडा ककट का बटोरने वाला जमादार (झाड़ूवाला) होता है।'[2]

निकोल ने कुछ नये ढग से कहा है— व्यग इतना तिक्त भी हो सकता है कि उसमे हास्य की क्षमता जाती रहती है। उसमे भारीपन आ जाता है। लेखक की नैतिक चेतना शून्य हो जाती है। उसम सहानुभूति दया और उदारता के भाव समाप्त हो जाते हैं। वह मनुष्य के बाह्य-स्वरूप या आकृति पर बेरहम होकर चोट करता है। वह मनुष्य के चरित्र पर आक्रमण करता है। युग के रहन सहन पर कठोरता से आघात करता है। क्षमा करना जानता ही नही।[3] डा० बरसाने

1 "Humour is distinctly a sentiment yet at the same time it is markedly intellectual"—Sully

2 "The satirist as a moral agent often a social scavengar working on a storage of bile" Meridith The Idea of Comedy, p 79

3 "Satire can be so bitter that it ceases to be laughable in the very least, satire falls heavily It has no moral sense It has no pity, no kindliness, no magnanimity It lashes the physical appearance of person sometimes wi h unmitigated cruel It attackes the character of man It strikes at the manners of the age, with a band that spares not

—A Nichol An Intro to Dramatic Theory

लाल ने ठीक ही कहा है कि 'व्यग्य की भाषा मे गुदगुदी कम, तिक्तता अधिक रहती है ।'[1]

वास्तव मे हास्य और व्यग्य को दो अलग भूमियो में देखना चाहिये । हास्य का लक्ष्य साधारण मनोरजन, दिल बहलाव हो सकता है । व्यग्य मूलत हास्यात्मक प्रहार है जो तीखी चोट पैदा करता है । हास्य के लिए हास्य की भूमिका बनाई जा सकती है । परन्तु व्यग्य के लिए व्यग्य की भूमिका वैमनस्य और अव्यवस्था मे बदल सकती है । हास्य सहज व्यक्तित्व का खिला रूप है, तो व्यग्य गभीर व्यक्तित्व का तीखा स्वभाव भी हो सकता है । हास्य मन का विलास है, तो व्यग्य मन की प्रहार-योजना । एक मे चरित्र का मीठापन है तो दूसरे मे चटपटाहट । परन्तु क्या व्यग्यो का प्रयोग हास्य के रूप मे और हास्य का प्रयोग व्यग्य के रूप मे नहीं हो सकता ? हास्य-लक्षित व्यग्य हास्य की परिभाषा मे खटमीठा स्वाद जोड देता है *और व्यग्य की लक्ष्य-सीमा मे हास्य नमक के स्वाद को कुछ कडवा बना सकता है ।* कहने का तात्पर्य है कि यदि व्यग्य को किसी व्यावहारिक लक्ष्य मे रखें तो वर्गगत विभेद बन जाते हैं, जो हास्य मे दिखाई नही देते । हास्य को जीवन का आवश्यक उपकरण बतलाते हुए कहा जा सकता है कि हास्य और व्यग्य जीवन को उत्तेजित करने म, उसमे कर्मशक्ति की प्रेरणा फूकने मे, किसी नयी भूमिका से निकट परिचय दिलाने मे तथा आचरणनिष्ठ बनाने के साधनो मे उतने ही गम्भीर हो सकते हैं, जितना महत्व साहित्य मे दुखान्तकी का होता है ।

हिन्दीसाहित्य मे हास्य और व्यग्य का विकास

हिन्दीसाहित्य के आदिकाल से ही हास्य और व्यग्य की परम्परा का प्रारम्भिक स्वरूप दिखाई देता है । अपभ्रन्श की कृतियो मे सामती हास्य की रूपरेखा *मिलती है । राजकीय मनोविनोदो तथा समान शक्ति-सपन्न वाले वीर पुरषों के* वैयक्तिक व्यगो का प्राचुर्य भी मिलता है । कायर, डरपोक इत्यादि हास्यरस के आलबन थे । वीर गाथाओं के ये हास्य और व्यग्य श्रृगार और वीर रस के उपालभ स्वरूप दिखाई देते हैं । कहने का तात्पर्य यह है कि श्रृगार रस की मनोविनोदात्मक क्रीडाओ मे व्यगो की फुहार भावनाओ की उत्तेजना मे नयी दीप्ति लाती थी तथा वीरकर्म मे कायर की भीरुता, उनके मन की ललकार को नया ओज देती थी । इस प्रकार की हास्य और व्यग्य की परम्परा क्रमिक विकास मे सतकाव्य की पीठिका ग्रहण करके धार्मिक मतवादो, समाज की रूढियो, अधविश्वासो, जातीय भेदभावो तथा कुरीतियो, व्यभिचारो आदि के विरोध का माध्यम बन गई । कबीरदास, मलूकदास, रैदास आदि सतो से लेकर वैष्णव मतावलम्बी तुलसी, सूर, नददास आदि तक मे व्यग्यो की प्रचुरता मिलती है । भ्रमरगीत का उपालम्भ व्यग्य-काव्य

---

१ डा० बरसानेलाल चतुर्वेदी . 'हिन्दी साहित्य मे हास्यरस,' पृ० ४३ ।

का मार्मिक रूप है। तुलसी की रामायण में सामाजिक व्यंगों का बाहुल्य है। राक्षसों की प्रवृत्तियों और उनकी रूप-सज्जा पर हास्य-दृष्टि का प्रयोग भी किया गया है। इसी प्रकार रीतिकालीन काव्य में यत्रतत्र हास्य-विनोद की परम्परा मिलती रही है। परन्तु मध्ययुगीन हास्य व्यंग्यों का स्वरूप सुधारात्मक नीतियों के अवलम्ब पर था। यथार्थ जीवन की कुरीतियों पर सद्वृत्तात्मक आवरण डालने के निमित्त जो प्रयोग उस युग में किये गये, वे शास्त्रीय परम्परा के अन्तर्गत ही आ सकेंगे। हिन्दीसाहित्य में हास्य और व्यंगों का उत्स आधुनिक साहित्य से ही बढ़ता हुआ दिखाई देता है। अंग्रेजी शासन ने भौतिकवादी लक्ष्यों को हमारे सामने रखकर अपनी सांस्कृतिक, धार्मिक परियोजनाओं का दर्शन भी कराया। ऐहिक जीवन के प्रति अनिम विराग तथा नयी राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक मान्यताओं ने हमारे परम्परागत जीवन में नयी क्रांति पैदा की। उनके साहित्य को पढ़कर तथा अपनी परिस्थितियों को अधिक स्थूल बनाकर हमने अपनी चिंतन-पद्धति में उनके किये गये प्रयोगों को अपनाया। फल यह हुआ कि नई साहित्यिक विधाओं के विकास ने हमारे जीवन की विवेचना करना बहुत निकट से प्रारम्भ कर दिया है। दूसरे शब्दों में मानवीय प्रवृत्तियों के गुणों-अवगुणों को सामाजिकता के अनुरूप-यथार्थचित्र में प्रस्तुत करना अधिक उपयोगी समझ लिया गया है।

● आधुनिक युग

आधुनिक साहित्य में जिसकी तिथि भारतेन्दु युग से प्रारम्भ होती है, हमें इन सब नये रूपों का पूर्ण स्वरूप दिखाई देता है। पूर्व भारतेन्दु युग भारतीय कला की कारीगरी का सैद्धान्तिक नमूना कहा जा सकता है, क्योंकि मुगलकालीन जीवन की एकनिष्ठ सपन्नता में, विलासिता में, वैविध्य समाप्त हो गया था। अतः नये साहित्य-रूपों का विकास भारतेन्दु युग से आरम्भ होता है।

डा० एस० पी० खत्री ने अपनी पुस्तक 'हास्य की रूपरेखा' में कहा है—"हिन्दी साहित्य के प्रति भी प्राय यही विचार मान्य रहा है कि उसमें हास्य की न्यूनता है और इस क्षेत्र में जितनी साहित्यिक उन्नति पाश्चात्यदेशों—इंगलिस्तान तथा फ्रांस के साहित्यकारों ने की, उतनी नही हो सकी है।"[1]

विद्वानों ने हास्य और व्यंग की कमी के मुख्यत दो कारण बताये हैं। (१) प्रजातंत्रीय विचारों का अभाव तथा (२) नारी के प्रति पश्चिमी दृष्टि का अभाव जिसमें "हास्य और व्यंग की उन्नतिशील रूपरेखा के दर्शन होते हैं।"[2]

---

१ डा० एस० पी० खत्री, 'हास्य की रूपरेखा'—पृ० २४६।

२ वही, पृ० २५४।

साधारणत. उसके विकास का प्रामाणिक सकेत भारतेन्दु युग के आरम्भ से ही देख सकेंगे।[१]

डा० नगेन्द्र ने ठीक ही कहा है कि 'उन्नीसवीं शताब्दी मे रीतिकाल का अन्त और आधुनिक काल का आरम्भ होता है। भारतेन्दु बाबू दोनो प्रवाहो के सगम-स्थल पर खडे हुए हैं। उनके समय से ही जहाँ कविता की अन्य प्रगतियो मे परिवर्तन हुआ, वहाँ हास्य के क्षेत्र मे भी नवीनता आई। हास्य के आलवन अब सूम तथा अरसिक ही नही रह गये, सरकार के खुशामदी, दम्भी देशभक्त, पुरानी लकीर के फकीर, फैशन के गुलाम आदि मे भी हँसने की सामग्री मिलने लगी।'[२]

विद्वानो ने भारतेन्दुयुग को इस प्रकार के साहित्य का स्वर्णयुग कहा है। आचार्य रामचद्र शुक्ल ने इस युग के साहित्य मे 'जिन्दादिली और मनोविनोद की मात्रा का आधिक्य पाया है।"[३]

भारतेन्दु बाबू की कविता मे राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक कुरीतियो पर व्यग मिलते हैं। यथार्थ चित्रण के प्रति कोई सावुता बर्ती हुई नही मिलती। इसी प्रकार प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुद गुप्त, तथा प० शिवनाथ शर्मा मे भी व्यगा की प्रचुरता दिखाई देती है।

हास्य और व्यग्य की विकासशील परम्परा द्विवेदी युगीन साहित्यिक युगान्तर मे क्षीण हो गई। नीतिवादी आदर्शों की परम्परा के विकास मे जीवन के परिष्कृत सौष्ठव का महत्व ऊँचा किया। परिणामत लेखको और कवियो की दृष्टि अधिक गम्भीर-सी हो गयी। डा० बरसानेलाल ने ठीक ही कहा है कि "व्यग्य का प्रयोग अब उतना अधिक न रह गया जितना भारतेन्दु-युग मे था।"[४]

इस युग मे हास्य-व्यग्यकार नाथूरामशकर, ईश्वरीप्रसाद शर्मा, जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी आदि हैं। इसमे पाश्चात्य सस्कृति के प्रति हीन दृष्टि तथा उसके अनुकरणकर्ताओ की खिल्ली उडाना ही लक्ष्य रहा है।

द्विवेदी युगीन काव्य के बाद हिन्दी साहित्य विद्रोह भाव और नयी सस्कृति की उपलब्धियो को कल्पना के माध्यम से व्यक्त करने लगता है। छायावाद यद्यपि कवियों की वैयक्तिक चिन्तना, अनुभूति और कल्पना की अभिव्यक्ति है, फिर भी उसमे मानव जीवन की पूर्णता को एक बडे पैमाने मे स्वीकार किया गया है। यह मानवतावादी आदोलन था, जिसका गम्भीर आशय राष्ट्रीय सस्कृति के सौंदर्य का

---

१ डा० एस० पी० खत्री हास्य की रूप रेखा, पृ० २५६।
२ डा० नगेन्द्र हिन्दी साहित्य मे हास्यरस (लेख), 'वीणा', नवम्बर, १९३७।
३ आचार्य रामचद्र शुक्ल हिंदी साहित्य का इतिहास-पृ० ३९३।
४ डा० बरसाने लाल चतुर्वेदी हिन्दी साहित्य मे हास्यरस, पृष्ठ २०१।

उद्घाटन कहा जा सकता है। निराला, प्रसाद, पंत, और महादेवी की काव्य-कला मे इसी प्रकार की समस्याओ का समाधान मिलता है। परन्तु १९१४ से प्रारम्भ होकर १९३६ तक इस काव्य का स्वस्थ स्वरूप सामने आता है, बाद मे प्रगतिवादी विचारधारा के विस्तार से हिंदी काव्य यथार्थपरक दृष्टिसपन्न हो जाता है।

पंत और निराला ने इस नयी काव्यधारा मे योगदान दिया है, परन्तु पन्त का पदार्पण एक सैद्धान्तिक सहानुभूति के रूप मे ही रहा है। वह विचारधारा को अपनाकर प्रजातात्रिक बन गये, परन्तु व्यवहार ने तुरन्त 'दर्शन' की ओर मोड दिया। इस दृष्टि से निरालाजी अधिक सम्माननीय हैं। स्वच्छन्दतावादी साहित्य मे क्रांति-सूचक परिवर्तन लाने के बाद निरालाजी यथार्थ की भूमिका पर भी उतरे।

● नये युग की परिस्थितियाँ

निरालाजी का सवेदनशील व्यक्तित्व उन्हे हमेशा गति देता रहा है। युग और देश की परिस्थितियो का भावात्मक प्रभाव सबसे अधिक निराला ही को पीड़ित करता रहा है। यही कारण है कि १९३९ के आसपास से निरालाजी एकदम प्रजातान्त्रिक भूमिका पर आकर सामाजिक भूमि पर यथार्थ की काट-छाँट करने लगे। बगाल के अकाल तथा उनकी व्यक्तिगत आर्थिक विषमताओ ने जो स्थायी अभाव छोडा उससे उनकी दृष्टि व्यग्यात्मक-सी हो गई। क्रियात्मक सहानुभूति के पक्ष मे रह कर उन्होंने सामाजिक विपमताओ को वैयक्तिक-सा बना लिया था। इस दृश्य-भूमिका पर निरालाजी अपने पूर्ववर्ती काल से बहुत कुछ अलग दिखाई देने लगते है।

● निराला के परवर्ती काव्य का स्वरूप और व्यगयो के प्रयोग

अपने परवर्ती काव्य मे, जिसका तिथि-निर्धारण १९३८-३९ से किया गया है, निराला जी समाज की प्रत्यक्ष भूमिका का निरीक्षण और प्रयोग करते हैं। सामाजिक व्यवहार की कुरीतियो को, उनके अनेकमुखी छल-कपटो को निराला जी अपने कथा-साहित्य मे चित्रित करते हैं। डा० रामविलास शर्मा ने व्यग्य-प्रधान साहित्य को लक्ष्य करके कहा है—

"यहाँ हम रहस्यवादी कवि श्री निराला की प्रतिभा का एक दूसरा पहलू देखते हैं। कल्पना-लोक के आदर्श के साथ एक बार जब वे यथार्थ ससार को देखने लगते हैं, तो आदर्शवादी भावनाओ को कठोर धक्का लगता है। मनुष्य अभी इस आदर्श से कितनी दूर है, कम-से-देश के प्रचलित राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक विचार लेखक के व्यग्य का लक्ष्य होते है। समाज, देश, या ससार, सतोषजनक दशा कहीं नहीं है। फिर भी लोग अपनी क्षुद्रता को महत्ता समझ कर उस पर सतोष ही नही, गर्व का भी अनुभव किये बैठे हैं। ऐसा शिष्ट व्यग्य, सच्ची अन्तर्व्यथा से निकला

हुआ, जो पढ़ते ही सहृदय को प्रभावित कर सके, साहित्य में बहुत कम देखने को मिलता है।"[1]

इस प्रकार व्यग्य लिखने की प्रतिभा उनमे असाधारण रही है। 'परिमल' काल से ही उनका इस ओर ध्यान रहा है। पचवटी प्रसग मे शूर्पणखा के चित्रण में गुप्त हास्य की जो झलक है, उनकी प्रतिभा का सुन्दर नमूना है।

छूट जाता है धैर्य ऋषि मुनियो का
देवी-भोगियों की तो बात ही निराली है।[2]

उनकी 'अनामिका' सग्रह मे यत्र-तत्र हास्य और व्यग्य के पुट दिखाई देते हैं। 'दान' 'मित्र के प्रति' 'सच है' 'वनवेला' 'हिंदी के सुमनो के प्रति पत्र', 'उक्ति' 'ठूठ', आदि कविताओं मे व्यग्य चित्रो का सजीव अंकन हुआ है।

दम्भी और बगुला-भगतो पर व्यग करते हुये वे कहते हैं—

मेरे पडोस के वे सज्जन,
करते प्रतिदिन सरिता मज्जन।

× × ×

बोला, मैं धन्य श्रेष्ठ मानव

'सरोज-स्मृति' मे लिखा है—

ये कान्यकुब्ज-कुल-कुलागार
खाकर पतल म करें छेद,
इनके कर-कन्या, अर्थ खेद।

× × ×

वे जो जमुना के से कछार
पद फटे बिवाई के, उधार
खाये के मुख ज्यो, पिये तेल
चमरौधे जूते से सकेल
निकले, जी लेते, घोर गन्ध,
उन चरणो को मैं यथा अन्ध,
कुल घ्राण-प्राण से रहित
हो पूजू, ऐसी नही शक्ति।
ऐसे शिव से गिरजा-विवाह
करने की मुझको नही चाह,—आदि।

१ डा॰ रामविलास शर्मा. स्वधीनता और राष्ट्रीय साहित्य, पृ॰ १२५।
२ निराला : परिमल, पृ॰ १४८।

डा० बच्चनसिंह ने 'अनामिका' की व्यंग्यात्मक कविताओं के सम्बन्ध मे लिखा है—

'इनमे शुद्ध व्यग्य तथा सामाजिक दृश्यों का चुभता हुआ चित्रण हुआ है।'[१]

प्रगतिवादी भूमिका को अपना कर निरालाजी उसकी सैद्धांतिक सीमाओ से दूर रहे हैं। जन-मन की समस्याओ का खुला चिट्ठा पेश तो किया है, परन्तु उसके स्वरूप को आकर्षक बनाकर। यही आकर्षण उनका हास्य विनोदात्मक तथा व्यग्यात्मक प्रयोग है। डा० बच्चनसिंह ने इनको व्यग्य विनोद तथा यथार्थ-चित्रण के रूप मे रखा है।[२]

"इस काव्य-क्रम का स्वाभाविक विकास 'कुकुरमुत्ता' और 'नये पत्ते' हैं। जो सगीत-माधुरी निराला के छायावादी काव्य में थी, आज वह लगभग विलीन हो चुकी है। कवि ने आज कठोर, क्रूर यथार्थ का वरण किया है। स्वप्नों का शृगार उसे कभी वाछित नही था, किन्तु वह अब कुरूप जीवन का आलिंगन करने में भी नही हिचकिचाता। निराला का नया काव्य धरती के अधिक निकट है।"[३]

अब हम उनकी परवर्ती कृतियो के क्रमानुसार उनके हास्य-व्यग्य का अध्ययन करेंगे।

● कुकुरमुत्ता

सामाजिक जागरण का यथार्थवादी दृष्टिकोण, प्रगतिशील शैली में व्यग्यात्मक प्रवृत्ति, जिसमे जीवन की अनेकमुखी दशाओ पर व्यग्य है, निरालाजी ने अपने इस सग्रह मे इसको बडी कुशलता से प्रस्तुत किया है। व्यग्यप्रधान कविताओ मे 'कुकुरमुत्ता' सर्वश्रेष्ठ है। कुकुरमुत्ता विनोद की सृष्टि पैदा करने वाली एक विशिष्ट प्रकार की काव्य-रचना है। आचार्य प० नन्ददुलारे वाजपेयी ने कहा है "कुकुरमुत्ता मे विनोद की सृष्टि अतिरजित वर्णनो द्वारा की गई है। यत्र-तत्र यथार्थवादी चित्रण की प्रवृत्ति भी दिखाई देती है।"[४] समीक्षको ने कुकुरमुत्ता को जो सर्वहारा वर्ग का प्रतीक मानकर उसकी व्याख्या की—उसकी प्रशसा हुई और उन्हे प्रगतिवादी कहना ही पर्याप्त समझा। परन्तु इसमे व्यग्य के भीतर व्यग्य है और उस व्यग्य के भीतर व्यग्य है। असली मतलब तो यह है कि केवल सर्वहारा वर्ग ही जाति का आदर्श नही हो सकता। इसमे सबसे पहले तो स्वय कुकुरमुत्ता ससार भर की मूल्यवान उपलब्धियो का सृष्टा अपने को बताता है।

---

१ डा० बच्चनसिह : क्रांतिकारी कवि निराला, पृ० १४१।
२ डा० बच्चनसिह · क्रांतिकारी कवि निराला, पृ० १४१।
३ डा० प्रकाशचन्द्र गुप्त . 'नया साहित्य' पत्रिका मे प्रकाशित लेख।
४ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : आधुनिक साहित्य (भूमिका)

प्रकाशचन्द्र गुप्त ने लिखा है—कुकुरमुत्ता को निरालाजी ने दीन–हीन शोषित जनता का प्रतीक माना है और गुलाब को शोषक अभिजात वर्ग का—इस रूपक में परम्परागत भाषा, सगीत, उपमाएँ शब्दचित्र आदि सब विलीन हो गये हैं और एक नई कला का जन्म हुआ है। यह कला कुकुरमुत्ता के समान ही बजर धरती की उपज है, इसमे रूप, गध, रस आदि की कमी है। उसकी सामाजिक उपादेयता है।

सक्षिप्त कथा

एक नवाब थे, जिन्होंने फारस से कुछ गुलाब मगाए और बाडी मे लगवाये। साथ ही देशी पौधे भी उगाये गये। कई नौकरो, मालियो द्वारा उनकी सेवा की गई। सब कुछ गजनवी के बाग के समान सजाया गया। उसमे बेला, गुलशब्बो, चमेली, कामिनी, जूही, नरगिस, रात की रानी, कमलिनी, गुलमेंहदी, गुलखैरन, गुले अब्बास गेंदा, आदि आदि फूलो की क्यारिया थी। यही फारस का गुलाब खिला था। पास ही नाले के, कुकुरमुत्ता खडा ऐंठ रहा था। बाग के बाहर झोपडो मे नवाब के खादिम रहते थे। उनमें एक मालिन थी, जिसकी लडकी गोली नवाबजादी बहार की हम–जोलिनी थी। एक दिन अचानक दोनो बाग मे घूमने आयी, जहाँ गुलाब और कुकुर–मुत्ता महोदय खिले थे। पूछने पर गोली ने बताया, इसका बडा स्वादिष्ट कबाब बनेगा। दोनो ने वगलिन से कबाब बनवा कर खाया। घर पर आकर वहार ने कबाब की चर्चा नवाब से की। नवाब का हुक्म हुआ कि कुकुरमुत्ता का कबाब बनेगा। माली ने कहा, हुजूर कुकुरमुत्ता अब नहीं रहा, रहे हैं सिर्फ गुलाब। नवाब गुस्से से कापकर बोले—जहाँ गुलाब उगाये हैं, वहाँ कुकुरमुत्ता उगाओ। माली ने क्षमा मागी और कहा—कुकुरमुत्ता उगाया नही जाता, हुजूर।

कथा का उतना महत्व नही, उसको प्रस्तुत करने की शैली तथा विषय-निरूपण का लक्ष्य महान है। महान इस अर्थ म कि कला–हीन सौंदर्य मे भावयुक्त सौंदर्य की सजीवता इस रचना म सर्वत्र बनी रही।

कुकुरमुत्ता के व्यग्य : विद्वानो मे मतभेद

(१) जनता की सस्कृति की ओर कवि की अपील है। हमारी ऊपर की श्रेणी की तहजीब देशी नहीं है। यह कुकुरमुत्ते की तहजीब और उसकी सस्कृति का व्यग्य चित्र है। जिसे उसका स्वाद लगा कि विदेशी रस नीरस हो गय। बहार इसी देशी सस्कृति का प्रतीक है।[1]

(२) 'कुकुरमुत्ता केवल व्यग्यात्मक कविता है। दो भागो मे विभक्त है। प्रथम भाग मे प्रलाप से, जो पूजीवादियो का प्रतीक है, सर्वहारा के प्रतीक कुकुरमुत्ता की बातचीत वर्णित है। इसम यह भी दिखाया गया है कि साम्यवाद के समर्थक

१ डा० रामरतन भटनागर 'कवि निराला एक अध्ययन', पृ० २०६, २१०।

यवादी हुआ करते हैं। द्वितीय भाग मे साम्यवादी सिद्धातो पर घातक प्रहार किया गया है। गोली और बहार की मित्रता मानवतावाद पर आधारित है। जिसमे मैत्री सभव नही हो सकती।"[१]

(३) "लोगो का इस बात पर मतभेद रहा है कि निराला इस कविता मे किस पर व्यग्य करना चाहते हैं। इस मतभेद का कारण कविता की अस्पष्टता है। जो युद्धकाल मे उनके विश्वासो के डिग जाने के कारण हुई है। कुकुरमुत्ता उनके अद्वैतवाद की नकल हो सकता है, क्योकि ब्रह्म की तरह वह बलराम के हल से लेकर आधुनिक पैराशूट तक सभी मे व्याप्त है। इसके साथ वह दीन वर्ग का भी प्रतीक हो सकता है और खाद का खून चूसने वाले गुलाब को कॅपीटलिस्ट कहकर निन्दा भी करता है। लेकिन दुनियां से गुलाब उडा दिये जायें, यह बात ठीक नही बैठती। उपयोगितावाद के विकृत रूप को स्वीकार करने पर ही ऐसी कल्पना सार्थक लगेगी। शायद निरालाजी ने प्रगतिवाद को इसी तरह का उपयोगितावाद समझा था। इसलिए कुकुरमुत्ता का व्यग्य जहाँ गुलाब को मारता है, वहाँ खुद उसे भी हास्यास्पद बना देता है।"[२]

इस प्रकार विद्वानो मे मतभेद रहा है। व्यग्यात्मक चित्रण की अनेकमुखता की बहुलता इसमे लक्षित होती है।

कुकुरमुत्ता के हास्य व्यंग्य का स्वरूप

कुकुरमुत्ता धनीमानी व्यक्तियों के प्रति चुभता हुआ व्यग्य है जो साम्यवादी बनने का ढोंग भी रचते हैं। कुकुरमुत्ता गुलाब से तुलना करता है। चीन की छतरी, भारत का छत्र, विष्णु का सुदर्शनचक्र, सभी कुकुरमुत्ते की नकल पर बने हैं। दुनिया की गोलाई, डमरू, तबला, तान पूरा का रूप, कथकली या बालडान्स का ढग, रामेश्वर और मीनाक्षी के मन्दिर, विक्टोरिया मेमोरियल, गिरजाघर, गुम्बद, आदि कुकुरमुत्ते की नकल पर निर्मित हुए है। अन्त म कहता है कि तू नही, मैं ही बडा हूँ। गुलाब से कहता है—

अबे सुन बे गुलाब,
भूल मत गर पाई खुशबू रगोआब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
डाल पर इतरा रहा है कॅपीटलिस्ट
कितनो को तूने बनाया है गुलाम,
माली कर रखा, सहाया जाडा घाम।

---

१ डा० बच्चनसिंह क्रातिकारी कवि निराला, पृ० १४४, ४५, ४६

२ निरजन नया साहित्य (पत्रिका) लेख, पृ० ६२।

इस भूमिका पर कुकुरमुत्ता का गुलाब का प्रतिद्वन्द्वी बनाकर निरालाजी राजनीति, समाजनीति, अंग्रेजी फैशन आदि पर तीखे व्यंग्य करते हैं।

शाहा, राजो अमीरो का रहा प्यारा
इसलिये साधारणो से रहा न्यारा
काँटों ही से भरा है, यह सोच तू
× × ×

पूंजीपतियो पर व्यंग्य—

घडो पडता रहा पानी
तू हरामी खानदानी—

सर्वहारा का स्वरूप—

और अपने से उगा मैं
नही दाना पर चुगा मैं
कलम मेरा नही लगता
मेरा जीवन आप जगता। अत,
तू है नक्ली मैं हूँ मौलिक
तू है बकरा मैं हूँ कौलिक
तू रगा और मैं घुला
पानी मैं, तू बुलबुला

दोनो के कार्यों मे अन्तर—

तूने दुनिया को बिगाडा,
मैंने गिरते से उभाडा
तूने मनसा बनाया, रोटियाँ छीनी
× × ×

कुकुरमुत्ता जब अपनी तारीफ के पुल बाँधता है, तो हास्यात्मक दृश्य सामने आता है। कुकुरमुत्ता क्या नही है ? ब्रह्मसृष्टि के सृजन से उसके विकास तक का स्वरूप यहाँ तक कि २० वी सदी की भौतिकवादी सभ्यता ने भी उसके स्वरूप का निखार प्रस्तुत किया है।

संस्कृत, फारसी, अरबी, ग्रीक लेटिन के जने
मन्त्र, गजलें, गीत, मुग्धी से हुये पैदा
× × ×
सब म मेरा ही गठन
मेरा ही रहता है सब पर ताव—

मैंने बदले पैंतरे,
जहाँ भी शासक लड़े······आदि
× × ×

नये प्रयोगो पर लक्ष्य—

रस ही रस मेरा रहा
× × ×
दुनियाँ मे सबने मुझी से रस चुराया,
मुझी मे गोते लगाये आदि कवि ने, व्यास ने,
मुझी से पोथे निकाले भास, कालीदास ने
× × ×
कहीं का रोड़ा कहीं का लिया पत्थर
टी० एस० इलियट ने जैसे दे मारा
पढ़ने वालो ने जिगर पर हाथ रखकर
कहा, कैसा लिख दिया जहाँ सारा

लक्ष्य की ओर प्रेरित होकर अन्त मे निरालाजी काव्य-संग्रह का उद्देश्य बताते हैं—

"कहा, चरा गुलाब जहाँ थे, उगा,
सबके साथ हम भी चाहते हैं कुकुरमुत्ता
माली ने कहा माफ करें खता
कुकुरमुत्ता उगाया नही उगता।"

धनजय वर्मा ने अपनी पुस्तक 'निराला काव्य और व्यक्तित्व' मे ठीक ही कहा है कि 'कुकुरमुत्ता असफलता नही, व्यग्य की सफलता है। मेरी दृष्टि मे कुकुरमुत्ता का व्यग्य विविधक्षेत्रीय एव तीव्र है। जो भी वर्ग कुकुरमुत्ता के प्रति मोह दिखाकर अपना प्रतीक मानेगा, वही व्यग्य का शिकार होगा। इस रचना के पीछे कोई असाधारण प्रतिभा और लक्ष्य कार्य कर रहा है।"[१] इस प्रकार व्यग्य-काव्य की परम्परा मे 'कुकुमुत्ता' का महत्व बहुत अधिक है जो व्यग्यात्मक चालू भाषा मे, यथार्थवादी जीवन की अनेकमुखी कमजोरियों को चित्रित करता है। यह मानव मात्र की खिल्ली का, उसके बौद्धिक अहं के भुलाने का, उसकी भावात्मक गरिमा के नशे का नक्शा है। यह दोहरी तलवार है जिसमे समस्त वर्गों, वादो तथा हर प्रकार की नीतियो का मजाक उड़ाया गया है।

---

१ धनजय वर्मा—'निराला : काव्य और व्यक्तित्व' पृ० १७८।

● हमारी व्याख्या

'कुकुरमुत्ता' के वास्तविक आशय को समझने के लिए स्वय निरालाजी के 'आवेदन' की कुछ पक्तियो को उद्धृत करना आवश्यक है। वे लिखते हैं- 'अर्थ-समस्या मे निरर्थक को समूल नष्ट करना साहित्य और राजनीति का कार्य है। बाहरी लदाव हटाना ही चाहिए, क्योकि हम जिस माध्यम से बाहर की बातें समझते हैं, वह भ्रामक है। ऐसी हालत मे—'इतो नष्टस्ततोभ्रष्ट' होना पडता है। किसी से मैत्री हो, इसका अर्थ यह नही है कि हम बेजड और बेजर हैं। अगर हमारा नही रहा तो न रहने का कारण है। कार्य इसी पर होना चाहिए।' निरालाजी की इन पक्तियो से दो बातें स्पष्ट होती है।

(१) अर्थसमस्या मे निरर्थकता को समूल नष्ट करना और (२) अगर हमारा न रहा, तो न रहने का कारण है। कार्य इसी पर होना चाहिए।

पहली बात अर्थसमस्या मे निरर्थक को समूल नष्ट करना, यह स्पष्ट सकेत करती है कि निरालाजी वर्तमान अर्थव्यवस्था से असतुष्ट थे और उसके और अर्थ के निरर्थक या अन्यायपूर्ण विभाजन से वे बहुत अधिक क्षुब्ध थे। वे अर्थ के न्यायपूर्ण विभाजन के अभिलाषी रहे हैं। इस हद तक उनका झुकाव पूजीवाद के विरुद्ध और साम्यवाद के अनुकूल था। दूसरा तथ्य यह है कि वे साम्यवाद की पश्चिमी प्रगति से सतुष्ट नहीं थे, और उसे भारतीय स्वरूप देने के पक्षपाती थे। साम्यवाद से उनकी मैत्री थी, पर वे कहते हैं कि किसी से मैत्री हो, इसका अर्थ यह नही कि हम बेजड और बेजर हैं। दूसरे शब्दो म वे एक प्रकार के भारतीय साम्यवाद के हिमायती दिखाई देते हैं। कुकुरमुत्ता मे यही दो प्रवृत्तिया प्रमुख रूप से पाई जाती हैं। प्रथम साम्य-वाद की ओर झुकाव और द्वितीय साम्यवाद की भारतीय कल्पना। कविता के आरभ म नवाब के वैभव का वर्णन और वैभव के चरम प्रतीक गुलाब के प्रति कुकुरमुत्ता का आक्रोश निराला की पूजीवाद-विरोधी भावना का निदर्शक है। परन्तु यहीं से निराला कुकुरमुत्ता के प्रति भी प्रच्छन्न व्यग्य प्रारम्भ करते है। यह व्यग्य निराला की दृष्टि म पश्चिमी साम्यवादी एकागिता के विरुद्ध व्यग है। पश्चिम मे मार्क्स ने क्रान्ति का नेता सर्वहारा को बनाया है। निराला की दृष्टि मे कुकुरमुत्ता सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधि है। पर वे शिक्षाहीन, सस्कृतिहीन वर्ग को नये मानवीय विकास के लिए उपयुक्त नही मानते। इसलिए कुकुरमुत्ता के मुह म खूब बडी-चडी बातें कह-लाकर उसे उपहासास्पद सीमा तक पहुचा देते हैं। यह साम्यवाद की कल्पना का व्यग है। साम्यवाद की भारतीय कल्पना के अनुसार निराला का मन्तव्य है किसी भी सामाजिक उन्नयन के लिये, सामाजिक अवतारणा के लिए कुकुरमुत्ता पर्याप्त नही है। उनके वेदान्ती दृष्टिकोण के अनुसार साम्यवाद केवल आर्थिक भूमिका पर नही होगा, बल्कि वास्तविक साम्यवाद, मानव के विकसित व्यक्तित्व से सबन्धित है। जब

कुकुरमुत्ता मे विकास के तत्व समाहित होंगे, जब वह ज्ञान के आलोक से आलोकित होकर मानव-मात्र की समानता का सदेश दे सकेगा, तभी वह वास्तविक साम्यवादी माना जायेगा। इसके पहले वह चाहे जितना दभ करे, उसकी स्थिति हास्यास्पद ही बनी रहेगी। इस प्रकार 'कुकुरमुत्ता' कविता मे निरालाजी ने पूजीवाद के विरोधी साम्यवाद के पक्ष मे अपना अभिमत तो प्रकट किया है, पर साम्यवाद की उनकी कल्पना वेदात पर आश्रित है।

● कुकुरमुत्ता का साहित्यिक मूल्य

व्यग्य-रचना का मूल्य उसकी सार्वजनिक ग्राह्यता के साथ-साथ चमत्कार और आकर्षण-बहुलता मे भी रहता है। कुकुरमुत्ता की भाषा विषय के अनुकूल, प्रस्तुत शैली के विवेचन के अनुकूल है तथा उसकी भावपक्षीय क्षमता उसके उद्देश्य के अनुकूल है। व्यग्य रचना के नाते कुकुरमुत्ता हिन्दी काव्य मे सफलता की रचना है। "यह नई कविता का आदिकाव्य है, इसमे गद्यमय सजीव व्यग्य हैं।"[1] कुकुरमुत्ता स्पष्टत नवीन आविष्कार है जो समस्त कृतियो और प्रवृत्तियो से भिन्न है। व्यग्य, विनोद और हास्य का प्राजल स्वरूप, उर्दू का आशिक पुट, भाषा मे सहजता की ओर झुकाव, यथार्थोन्मुख चित्रण, हास्य मे अतिरजना का योग, प्रचलित सामाजिक, राजनीतिक विचारो पर एक स्वतत्र दृष्टिपात आदि साकेतिक और सदर्भों से भरी यह कविता है।

⑥ नये पत्ते

'कुकुरमुत्ता' के विषयादर्श पर ही 'नये पत्ते' का निर्माण लक्षित होता है। निराला के सामाजिक विचारो के प्रति असतोष की अभिव्यक्ति, उनका सौंदर्य विरोधी दृष्टिकोण, प्राकृतिक वर्णनो मे बदली हुई दृष्टि, प्रकृति मे सौंदर्य न देखकर उसका ऊबड-खाबड स्वरूप, तदन्तर भक्ति का आगमन, वैयक्तिक भूमिका पर भक्ति-भावना का प्रारम्भ, अति काल्पनिक दृश्यो (फन्टेसी) का चित्रण, सामाजिक वैषम्य के प्रति आक्रोश आदि की उपज नये पत्ते हैं। इसमे जीवन के यथार्थवादी दृष्टिकोणो को नयी काव्य-शैली म प्रस्तुत किया गया है, जो जनसुलभ ग्राह्य पक्ष को प्रधानता देती है। इसम समाज के बाह्य पक्ष को उसी के रूप मे देखने का प्रयत्न किया गया है। अर्थात व्यावहारिक जीवन की दिनचर्या को उसी के रूप मे देखने का प्रयत्न किया है, जिससे हास्य के साथ-साथ व्यग्यो का प्राचुर्य है। इसमे पददलित वर्गों के प्रति सहानुभूति का आदर्श है। 'नये पत्ते' काव्य की भूमिका मे निरालाजी ने स्वय कहा है "इसमे हास्य की प्रचुरता, भाषा अधिकाश बोलचाल वाली। पढने पर काव्य की कुजो के अलावा ऊचे नीचे फारस के-जैसे टीले भी। अधिक मनोरजन और शोधन की

---

१ डा० रामरतन भटनागर, कवि निराला · एक अध्ययन, पृ० २१२।

निगाह रखी गयी है।" इस प्रकार प्रस्तुत सग्रह मे हास्य और मनोविनोदपूर्ण शैली मे सामाजिक व्यग्यो को रखा गया है। गिरीशचन्द्र तिवारी ने विषय की दृष्टि से सम्पूर्ण सग्रह का विभाजन निम्न प्रकार से किया है।

(१) सामाजिक एव राजनैतिक व्यग्य की कवितायें
(२) मार्क्सवादी विवेचन सबन्धी कविताए
(३) सामान्य प्रकृति के चित्र रूप मे कवितायें
(४) सांस्कृतिक कवितायें।

यहाँ हम उनकी प्रथम प्रकार की कविता का विवेचन करेंगे।

व्यगात्मक तथा हास्य विनोदात्मक कवितायें

रानी और कानी, खजोहरा, मास्को डायलाग्स, खुशखबरी, दगा की पाचक, गर्म पकोडी, प्रेमसगीत, छलाँग मारता चला गया, डिप्टी साहब आये, महगू महगा रहा, आँख आँख का काँटा हो गई, थोडे के पेट म बहुतो को आना पडा, राजे ने अपनी रखवाली की, चरखा चला तथा तारे गिनत रहे, कवितायें निराला की हास्य-व्यग्य शैली के चुनते उदाहरण हे जो स्वरूप म तथा प्रभाव म वजनदार हैं।

'रानी और कानी' म लखक का यथार्थवादी दृष्टिकोण है, जिसम सामान्य मानव के सुखात्मक एव दु खात्मक अनुभवा का चित्र उपस्थित किया गया है। इसमे हास्य और मनोविनोद के सहारे जो व्यग्य उपस्थित किया गया है वह मार्मिक है। रानी के रूपचित्रण की कुरूपता म रानी के हृदय की भावनायेँ छिपी हैं, जो विवाह की समस्या बन कर उसकी माँ को सदैव चिन्ता का कारण बन गई।

चेचक के दाग, काली, नाक चिपटी,
गजा सर, एक आँख कानी
रानी अब हो गई सयानी
× × ×
फिर भी मा का दिल बैठा रहा
× × ×
सोचती रहती दिन रात
रानी की शादी की बात

समस्या सामान्य है पर विशिष्ट भी। अत व्यग्य का सामाजिक तथा वैयक्तिक पक्ष यहा स्पष्ट होता है। इसी प्रकार 'खजोहरा' म जिस रूपक के सहारे चित्र है, वह भी यथार्थ व्यग्य को जाहिर करता है।

दौडते हैं ये बादल काले-काले
हाईकोर्ट के वकले मतवाले,
जहाँ चाहिए वहाँ नहीं बरसे,

धान सूखे देखकर नही तरसे,
जहाँ पानी भरा वहाँ छूट पडे,
कहकहे लगाते हुए टूट पडे ।

यहाँ से आरम्भ करके यह कविता घोर यथार्थवादी विषय मे प्रवेश करती है। ग्राम के प्रांगण का समूचा चित्र दिया है । हल्का हास्य है । इसी प्रकार 'मास्को डायलाग्स' उन समाजवादी नेताओ पर तीखा व्यग्य है जो रूस को ही आधार मानकर सिद्धातो का पिष्टपेषण करते है। पूजीवादी जामे मे 'रूस के डायलाग्स' पढना जिनका आदर्श है, समाज के सच्चे नेताओ को फसाकर स्वार्थसिद्धि करना जिनका कर्म है, वह राजनीति के साथ-साथ साहित्य को भी विकृत करना चाहते हैं। कविता मे प्रारम्भ से ही समाजवादियो की रीति-नीति पर व्यग्य है ।

"· ······श्रीयुत गिडवानी जी
बहुत बडे सोशलिस्ट,
मास्को डायलाग्स लेकर आए हैं मिलने
सुभाष बाबू ने इसे जेल मे मगाया था ।
× × ×
दो प्रतिया आई थी,· ···
लेकिन··· वक्त नही मिलता है ··
समाज मे बडे-बडे आदमी हैं
एक से है एक मूर्ख
उनको फँसाना है,
ऐसे कोई साला एक धेला नही देने का
उपन्यास लिखा है
जरा देख दीजिए ।
अगर कही छप जाय
तो प्रभाव पड जाय उल्लू के पट्ठो पर
मनमाना रुपया ले लू इन लोगो से । आदि

इसमे राजनीतिक व्यग्य है ।

एक तीसरी प्रसिद्ध कविता 'गर्म पकौडी है, जिसम सामाजिक व्यग्य है ।

बम्हन की पकाई, घी की कचौडी
तेल की भुनी—ये गर्म पकौडी । आदि

'प्रेम-सगीत' शीर्षक कविता मे निराला जी ने लिखा है—

बम्हन का लडका मैं उससे प्यार करता हू
जात की कहारिन वह, मेरे घर की है पनहारिन वह,
आती है होते तड़का, उसके पीछे मैं मरता हू, तथा

'महगू महगा रहा' मे उन राजनीतिज्ञो के प्रति व्यग्य है जो कि बडे बाप के बेटे है, लंदन मे शिक्षा पायी है, आजादी के भूखे, दीवाने की भाति घूम-घूम कर उपदेश देते हैं। लेकिन महगू सुनता रहा—बोला

हा, कम्यू मे किरिया के गोली जो लगी थी
उसका कारण पण्डित जी का शागिर्द है—

अन्त मे कहता है—मैं महगू हू,

पैरो की धरती आकाश को भी चली जाय
मैं कभी न बदलूगा, इतना महगा हूगा।

इस प्रकार निराला जी ने इस काव्य-सग्रह मे तात्कालिक परिस्थितियो का जो व्यगात्मक चित्र उपस्थित किया है, उसे जनवादी परपरा के साहित्य मे एक नया प्रयोग कहा जा सकता है। 'नये पत्ते' की मीठी चुटकियो पर डा० बच्चन सिंह ने कहा है—'यहा उनके विचारो पर साम्यवाद तथा वर्ग-सघर्ष का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।' 'महगू महगा रहा' मे 'बनबेला' की भावनायें ही व्यक्त हुई हैं। जमीदारो, मिल मालिको और बडे-बडे नेताओ के गठबधन पर कडा प्रहार किया गया है। 'घोडे के पेट मे बहुतो को आना पडा' भी इस ओर सकेत करता है। 'राजे ने अपनी रखवाली की' मे बतलाया गया है कि किस प्रकार से पडित, नाट्यकार, सामत अपना सम्मान खोकर राजा की सम्बर्धना मे सलग्न रहे। इस प्रकार जनता पर जादू चला राजे की समाज का।

● स्फुट कविताएं

'अणिमा' की एक कविता देखिए—
चूकि यहाँ दाना है,
इसलिए दीन है, दीवाना है।
लोग हैं, महफिल है,
नग्मे हैं, साज है, दिलदार है और दिल है,
शमा है, परवाना है,
× × ×
अम्मा है, बप्पा है,
झापड है और गोल गप्पा है, आदि—

इस कविता मे पैसे पर व्यग्य है।

निराला जी के काव्य मे यथार्थवादी शैली का व्यावहारिक पक्ष दिखाई देता है जिसमे समस्त वर्गों, जातिया, राजनैतिक, सामाजिक आर्थिक विषमताओं को उनके खुले रूप में देखा गया है। निरालाजी किसी सिद्धान्त का सहारा लेकर चलने

वाले नही थे । वे तो यथातथ्य को हँसकर कहने मे विश्वास करते थे। निराला का परवर्ती काव्य इस दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है ।

● व्यंग्यो का काव्यात्मक सौष्ठव

शिष्ट और स्वस्थ व्यग्य अधिकाश रूप मे वैयक्तिक नही हुआ करते हैं, उनमे प्रच्छन्नता का गुण विद्यमान रहता है । निरालाजी के काव्यात्मक व्यग्यो मे हमे यह विशेषता बराबर मिलती है । सरल, बोलचाल की भाषा मे विषय का चौखटा तैयार करना, जिससे उसकी अतिवादिता नष्ट हो जाय, निरालाजी की विशेषता कही जा सकती है । निरूपण शैली मे स्वच्छदता है, भाव प्रयोगो मे केवल चुहल बाजी या 'हास्य, हास्य के लिए' का प्रयोग नही है । निराला की सवेदना का सामाजीकरण, उनकी विचारात्मकता का सरलीकरण इन कविताओ म देखा जा सकता है ।

इन कविताओ को पढ़कर यदि निरालाजी के समग्र साहित्य पर दृष्टि डालते हैं तो स्पष्टत ज्ञात होने लगता है कि कला की अलकृति मे अति सूक्ष्मता के कारण कवि यहा पर खुले प्रागण मे समाज की वायु का सेवन करता है । यद्यपि विनोद पद्धति उनकी स्वाभाविक विचारणा के प्रतिकूल दिखाई देती है फिर भी, अपनी निजी परिस्थितियो से बचने तथा उनके तीखे अनुभवो से साहित्यिक के उत्तरदायित्व को निभाने मे निराला का यह परवर्ती रूप भी महत्वपूर्ण है । आख्यानशैली मे लोक जीवन की समस्याओ को उसी के वातावरण मे प्रस्तुत करना उनकी प्रतिभा का नया रूप कहा जा सकता है । यही कारण है कि इन कविताओ मे शैलीगत भिन्नता लक्षित होती है । डा० बच्चनसिंह ने कहा है निषेधात्मक जीवन इनको व्यग्यात्मक रचना करने की ओर ले जाता है । ये विनोद और व्यग्य प्रधान सृष्टिया भाषा के नवीन और प्रचलित स्वरूप का दर्शन कराती हैं । यहा भाषा नवीन विनोदात्मक प्रयोगो के अनुकूल अवश्य है, किन्तु यह इनकी पूर्ववर्ती भाषा का मुकाबला नही कर सकती । जहा तक अनामिका की व्यग्यात्मक कविताओ का सबध है कुछ म शुद्ध व्यग्य तथा सामाजिक स्थितियो का चुभता हुआ चित्रण हुआ है । किन्तु 'कुकुरमुत्ता' तक पहुँचते पहुँचते कवि प्रगतिवाद के विरोध मे तर्क उपस्थित करने लगता है ।[१]

● निराला के कथा साहित्य के व्यग्यो से तुलना

निराला के कथा साहित्य मे व्यग्यो का शिष्ट-अशिष्ट, स्वस्थ-अस्वस्थ चित्र देखने को मिल जाता है । 'बिल्लेसुर बकरिहा', 'चाचे कारनामे'—आदि म हास्य

---

१ डा० बच्चनसिंह, क्रान्तिकारी कवि निराला, पृ० १४१ ।

विनोद और व्यंग्यों की झड़ी लगी हुई दिखाई देती है। डा० रामविलास शर्मा ने कहा है, 'यहाँ हम रहस्यवादी कवि श्री निराला की प्रतिभा का एक दूसरा पहलू देखते हैं। कल्पना-लोक के आदर्श के साथ एक बार जब वे यथार्थ ससार को देखने लगते हैं तो आदर्शवादी भावनाओ को कठोर धक्का लगता है। मनुष्य अभी उस आदर्श से कितनी दूर है—परन्तु यह जैसा आदर्श हो, साहित्य उसी को पकड़ने के लिये असफल प्रयत्न करता रहा है।'[1] 'वे आगे कहते हैं—

'जहाँ लोग अपनी पतित मनोवृत्तियो से सतोष कर बैठे रहे हैं, वहा प्रतिभा शाली लेखकों ने अपने तीव्र व्यग्य-वाणो से उन्हे जगाया है। अच्छे व्यग्यपूर्ण गद्य की हमारे समाज और साहित्य को नितान्त आवश्यकता है—निरालाजी के हास्य की यह विशेषता है कि वह घटना-प्रधान नही, विचित्र घटनायें, दृश्य, व्यक्ति आदि का चित्रण करके हमे केवल हँसाना नही चाहते। हास्य और व्यग्य सबको आनन्द देता है। उसकी शिष्टता, स्वाभाविकता और निर्दोषता सर्वप्रिय है।'[2]

'प्रबन्ध-पद्म' मे निरालाजी ने हिन्दी के हित चितको पर व्यग किया है। वे लिखते हैं, 'हिन्दी की हितैषणा की गाठ मे गठिये का असर उसके सेवको के तर दिमाग के कारण बढता ही जा रहा है।'[3] इस प्रकार उनके गद्यात्मक व्यग कभी तीखे और कठोर भी हो जाते हैं। यदि उनके कथा-व्यग्यो मे विस्तार है, तो कविताओ की व्यग्यात्मक उक्तियाँ अधिक प्रौढ कही जा सकती हैं। उनके कथा-व्यग्य समस्या की पूर्णता को व्यक्त करते हैं किन्तु कविताओ में केवल दिग्दर्शना ही है। उनके कथा-व्यग्यो मे हास्य की प्रचुरता है, काव्य म इसकी कमी लक्षित होती है। उनके कथात्मक व्यग्यो का विकास यदि सपूर्ण जीवन के भोंडेपन को व्यक्त करता है तो कविताओ का व्यग केवल क्षणिक परिस्थितियो को। इस प्रकार दोनो म अतर दिखाई देता है। फिर भी निरालाजी के कथात्मक व्यग्य न तो नागार्जुन की भाँति अश्लील हैं और न यशपाल की भाति सिद्धान्त-बद्ध। उनमे सहज विस्तार है। उनके काव्य की भाति एक तटस्थता भी लक्षित होती है।

निष्कर्ष

निष्कर्षत उनके काव्यात्मक व्यग्यो का मूल्य, जातीय या वर्गीय न होकर मानवतावादी है, जिसमे सामान्य दीन-दुखी व्यक्तियो की चर्या से लेकर पूजीपतियो की चर्या तक का वर्णन मिलता है। सामान्य के प्रति क्रियात्मक सहिष्णुता का भाव है, परतु विशिष्ट के प्रति कोई तीव्र घृणा नही दिखाई देती। उनके व्यग्यो मे गति

१ डा० रामविलास शर्मा, स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य, पृ० १२८।
२ वही, पृ० १३०।
३ निराला : प्रबध पद्म, एक बात, पृ० ५७।

है। वे किसी एक उद्देश्य से उलझे हुये नही हैं। निरालाजी ने स्वयं लिखा है: 'साहित्य मे अनेक दृष्टियो का एक साथ रहना आवश्यक है, नही तो दिग्भ्रम होने का डर है। इसीलिये मैंने तमाम भावो की एक साथ पूजा करने का समर्थन किया।'[१] उनमे प्रगतिशीलता के प्रयोगो का प्राधान्य रहा है, जिनमे बौद्धिक-तुलना का वैशिष्ट्य दिखाई देता है, अर्थात् समीक्षात्मक दृष्टि का प्राधान्य है। परन्तु निराला की यह आलोचनात्मक दृष्टि जीवन को अनावृत्त रूप मे देखती है। किसी सिद्धान्त की आड लेकर नही। इसमे उनकी स्वाभाविक मनस्विता तथा रूढि-विद्रोह से भरे व्यक्तित्व के गुण मिलते हैं।

---

१ निराला : चयन, पृ० ६८।

५

निराला की उर्दू शैली की कविताओं का अध्ययन

हिन्दी–उर्दू की पृष्ठभूमि

हिन्दी मे सस्कृत का सौंदर्य भरने वाले और सामाजिक पदावली मे काव्य रचना करने वाले कवि निराला ने उर्दू, फारसी छदो, बहरो को भी अपनाया और 'कुकुरमुत्ता', 'बेला' और 'नये पत्ते' नाम की तीन पुस्तकों मे उर्दू के प्रयोग किये। हिंदी कवियो का उर्दू की ओर उन्मुख होना, कोई नई बात नहीं थी। पर छायावादी काव्य मे उर्दू की ओर झुकाव किसी भी कवि का नही दिखाई देता। उर्दू काव्य-रचना तो दूर रही, उर्दू के चलते प्रयोग और प्रचलित भाषा और मुहावरे भी छायावादियो ने नहीं अपनाये। इसका कारण मुख्यत यह है कि छायावादी कवि वस्तु के क्षेत्र मे ही नहीं, भाषा के क्षेत्र मे भी सौंदर्यवादी थे। एक तो उनकी भावात्मक प्रेरणा सस्कृत और अग्रेजी काव्य और भाषासौदर्य से ली गई थी, जिससे उर्दू का कुछ भी मेल नही बैठता था। दूसरे उन कवियो ने जिस प्रकार की भाव प्रधान काव्य-रचना की है, उसमें उर्दू की चमत्कार-प्रधान और मुक्तक शैली की काव्य-कृतियो के लिये अवकाश न था। छायावादी कवियो का शृगार, कल्पना प्रधान और दार्शनिक था। उर्दू की शृगारिक रचनायें ऐंद्रिक आकर्षण की अतिरजना से भरी हुई थी। दोनो मे किसी प्रकार का सामजस्य लाना सभव न था। कहा जा सकता है कि हिन्दी कविता उर्दू की काव्य प्रवृत्ति से भिन्न दिशा मे जा रही थी। वह अग्रेजी के स्वच्छन्दतावादी कवियो की भाव भूमियो के अधिक समीप थी। इसलिये आश्चर्य नही होता, जब हम यह देखते हैं कि छायावादी काव्य म अग्रेजी की ही भाति प्राकृतिक उपमानो का बहुलता से प्रयोग हुआ, पर पडोस मे रहने वाली उर्दू भाषा और उसकी भावनाधारा से छायावाद युग की हिंदी का बहुत कम सपर्क रहा।

हम यह भी देखते है कि उर्दू कविता मे ईरान और फारस के सौंदर्य प्रतीक और पौराणिक तथा एतिहासिक प्रकरण और सकेत बडी मात्रा मे अपनाये गये हैं, जिसके कारण सामान्य जनसमाज और हिन्दी की कवि-मडली मे भी उर्दू काव्य के प्रति अधिक उत्साह न था। वह समय बीत चुका था, जब उर्दू-भाषा-पठित वर्ग हिंदी को ग्रामीण भाषा कह कर उस पर गवारूपन का आरोप लगाते और उसकी उपेक्षा

किया करते थे। अब वह समय आ गया था, जब उर्दू-भाषियो को हिंदी के नये काव्य-सौंदर्य के समकक्ष पहुँचने की लालसा होने लगी थी, उर्दू मुशायरे, समस्त हिंदी भाषी प्रदेशो मे हुआ करते थे। उन्हें सुनने के लिये हिंदी के काव्य-रसिक भी पहुँचते थे और उन मुशायरो से वे एक विशेष प्रकार का प्रभाव लेकर लौटते थे। वह प्रभाव निश्चय ही मनोरजन-प्रधान होता था। मनोरजन से आगे बढने पर उन्हे मुक्तक काव्य का चमत्कार जो उर्दू मुहावरो पर आश्रित रहता था, दिखाई पडता था। इसका यह अर्थ नही कि उर्दू-कविता मे गभीरता या दार्शनिकता नही थी। वह था, पर उर्दू कविता की शैली मे उसे समाहित रूप मिलना कठिन था। दो-दो चार-चार पक्तियो मे किसी समग्र भावनाधारा को अभिव्यक्त करना, कल्पना-छवियो की एकतानता प्रदर्शित करना, अथवा दार्शनिक आशयो को सपूर्णता मे व्यक्त करना, उर्दू की मुक्तक काव्य-शैली के अनुरूप न था। आगे चल कर उर्दू मे भी सग्रथित कविता की जाने लगी। नज्मे लिखी गई; पर तब तक हिंदीकविता बहुत आगे बढ चुकी थी।

हम ऊपर कह आये हैं कि हिंदी के छायावादी कवियो ने अग्रेजी प्रगीत का आदर्श ग्रहण किया था और शैली, कीट्स, वर्ड्सवर्थ की प्रगीत-शैली से अनुप्राणित हो रहे थे। हिंदी ही क्यो? बगला, मराठी और गुजराती भाषायें भी पश्चिमी काव्य के प्रभाव से अछूती नही थी। कहना यह चाहिये कि हिंदी और बगला जैसी प्रगतिशील भाषाओं के कवि अब अग्रेजी और विदेशी काव्य-भूमियो के अधिक समीप आ गये थे। हिंदी के रीतिकाल मे जिस प्रकार फारसी भाषा और साहित्य की जानकारी आवश्यक मानी गई थी, वैसे ही वर्तमान काल में अग्रेजी भाषा का माध्यम नये काव्य विकास के लिये सहायक माना जाने लगा। अब हमारे कविगण उर्दू फारसी काव्य-रचना से विरक्त हो कर अग्रेजी और सस्कृत के काव्य-रूपो और प्रतिमानो को ग्रहण करने लगे थे।

ऐतिहासिक दृष्टि से देखने पर यह विदित होता है कि उर्दू और फारसी मुसलमानी शासन-काल मे तो राजभाषा के रूप मे प्रतिष्ठित ही थी, वे सभ्यता या तहजीब की भाषायें भी बनी हुई थी। अग्रेजो के राज्य ग्रहण करने के पश्चात् बहुत दिनो तक यही स्थिति बनी रही। उर्दू कचहरियो की भाषा बनी रही, उसे राजाश्रय मिलता रहा। कदाचित इसी कारण वह भारतीय जनता के समीप नही पहुँच सकी। उर्दू काव्य की प्रगति अधिकतर दिल्ली और लखनऊ जैसे नगरो मे हुई थी, जिससे नागरिक जीवन की रगीनिया तो उसमे आ सकी, पर लोक जीवन की विशद और प्रशस्त भूमिकायें उससे अपरिचित ही रह गई। भारतेन्दु हरिश्चन्द्रसे आरम्भ होने वाले हिंदीसाहित्य के आधुनिक युग मे हिंदी-काव्य जनता की आशा आकाक्षाओ का काव्य रहा है। हिंदीकविता की प्रगति सघर्ष की भूमिका पर हुई है। जब द्विवेदी युग मे भारतीय पुनरुत्थान की राष्ट्रीय चेतना का प्रसार हुआ, तब हिंदी के कवि उर्दू से और भी दूर जा पडे और उन्होने सस्कृत का पल्ला बडी मजबूती से पकडा। इसके कारण

हिंदीकाव्य अधिकाधिक संस्कृत पदावली से समन्वित होता गया और छायावाद-युग में आकर उसकी संस्कृतनिष्ठा और भी स्पष्ट हो गई। अभिव्यंजना में संस्कृत का आधार और भावात्मक भूमिका पर प्राचीन रहस्यवादी कवियों और अंग्रेजी के स्वच्छदतावादियों की काव्य-रचना छायावादी कवियों का आदर्श बन गई। उर्दू भाषा और साहित्य से उनका रहा सहा संबंध भी छूट गया। उर्दू के कवि और लेखक अब भी हिंदी को अविकसित भाषा मानते थे। कदाचित इसीलिये हिंदी के कवि और लेखक उर्दू के प्रति और भी उपेक्षाशील बन गये।

आरम्भ में हिंदी और उर्दू दो पृथक् भाषायें नहीं थीं। दक्षिण के हैदराबाद केन्द्र में वली जैसे अनेकानेक कवियों ने हिंदी में ही काव्य-रचना की। परन्तु क्रमश. उर्दू को राजनीतिक विशेषाधिकार मिल जाने से उसकी लोकप्रियता कम होती गई और उसका काव्य क्षेत्र सीमित होता गया। नगर निवासी जनसमाज को छोड़कर उसका प्रचलन कहीं नहीं था। इन कृत्रिम कारणों के प्रभाव से हिंदी और उर्दू का अन्तर बढ़ता गया और अन्तत उर्दू साहित्य राष्ट्रीय स्तर की व्यापकता से दूर होकर अपने सीमित क्षेत्र में इस प्रकार की काव्य-रचना करता रहा, जिसे हम एक शब्द में दरबारी' काव्य कह सकते हैं, जब कि हिंदी कविता दरबारों से दूर रही। वह अपनी सरलता और सहजता में भी लोकजीवन के गहरे संस्पर्शों से अपना विकास करती रही। हिंदी के वर्तमान युग में अनेक कवियों ने उर्दू की काव्य शैलियों को अपनाया, पर ऐसा करने में उनका कोई गंभीर आशय न था। भारतेन्दु हरिश्चंद्र और उनके सहयोगियों ने उर्दू कविता भी की है, परन्तु उनका उर्दू काव्य राष्ट्रीय विषयों और भावनाओं को लेकर आगे बढ़ा। द्विवेदी युग में लाला भगवानदीन जैसे कवियों ने उर्दू छंदों को अपना कर वीररस की काव्य-रचना की, क्योंकि उन्हें उन छंदों में प्रवाह अधिक दिखाई पड़ा। इसी युग में अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने भी खड़ी बोली की ठेठ भाषा में 'बोल चाल', 'चुभते चौपदे' और 'चोखे चौपदे' लिखे, जिनमें मुहावरों का सौंदर्य उर्दू काव्य-शैली के समकक्ष लाने का प्रयत्न किया गया। परन्तु हरिऔधजी का यह प्रयास केवल उनके भाषा-अधिकार का द्योतन करता है। उनके इन काव्य ग्रंथों में सामाजिक सुधार का आशय प्रमुख है। काव्यात्मक वैशिष्ट्य और सौंदर्य की दृष्टि से वे प्रयत्न सफल नहीं कहे जा सकते। इस प्रकार आधुनिक युग में *हिंदी कवियों के उर्दू संबंधी प्रयोग* एक सीमित भूमिका पर और प्रासंगिक लक्ष्यों को लेकर ही किये हुये हैं। विशुद्ध काव्योत्कर्ष के रूप में उर्दू का आधार नहीं के बराबर है।

आधुनिक हिंदी साहित्य में कुछ ऐसे लेखक भी हैं, जिन्हें हिन्दी और उर्दू में बराबर अधिकार रहा है। परन्तु जब हम उनके साहित्यिक प्रणयन को देखते हैं, तब ज्ञात होता है कि उन्हें उर्दू की अपेक्षा हिन्दी में आत्मप्रकाशन करने में अधिक सफलता मिली है। ऐसे लेखकों में बालमुकुंद गुप्त, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' और

प्रेमचन्दजी के नाम लिये जा सकते हैं। गुप्तजी ने द्विवेदी युग के आरम्भ से ही हिंदी उर्दू की मिली-जुली शैली को अपनाया था। पर उनकी रचनाओ का क्रमिक अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि समय की गति के साथ वे उर्दू की अपेक्षा हिन्दी की ओर अधिक झुकने लगे और उनकी भाषा मे संस्कृत का पुट अधिकाधिक बढने लगा। प्रेमचदजी ने तो उर्दू से ही अपना लेखन कार्य आरम्भ किया और उर्दू की कुछ कृतियो का हिन्दी मे अनुवाद भी किया। वे उर्दू के लेखक बने रह कर भी उच्चतम स्थान के अधिकारी हो सकते थे। उर्दू वालो ने उन्हे काफी प्रतिष्ठा भी दी और उनकी मित्रमडली मे उर्दू के लेखक अधिक सख्या मे थे। पर कोई ऐसी प्रेरणा थी, जिसने उन्हे उर्दू से हिन्दी की ओर निर्देशित किया। वह कौन सी प्रेरणा हो सकती है। प्रेमचन्दजी के सबध में यह तो कहा नही जा सकता कि वे उर्दू को मुसलमानो और हिन्दी को हिन्दुओ की भाषा मानते थे। भाषा के क्षेत्र मे जातिवाद का कुछ भी प्रभाव उन पर नही था। वैसी स्थिति मे उर्दू से हटकर हिन्दी की ओर आने मे प्रेमचन्दजी इन दोनो भाषाओ की सापेक्षिक राष्ट्रीयता के स्वरूप से प्रभावित हुये होगे। उन्हे यह अनुभव हुआ होगा कि जिस देश, जाति, और समाज का चित्र वे उपन्यासो मे देना चाहते है, वह हिन्दी के माध्यम से ही दे सकते है। जनभाषा के रूप मे उर्दू की अपेक्षा हिन्दी की पहुँच कही अधिक है। इसलिये हिन्दी का अपेक्षाकृत कम ज्ञान रखते हुये भी उन्होने अपने प्रौढ उपन्यासो मे उसी का पल्ला पकडा। यदि प्रेमचन्द की राष्ट्रीयता और उनके समाज हित के आदर्शों पर हमे सदेह नही है, तो हम यह कहने को बाध्य हैं कि प्रेमचन्द द्वारा हिन्दी का अपनाया जाना, हिन्दी की व्यापकता और उसकी राष्ट्रीय परपरा का ही परिचायक है। जब प्रेमचन्दजी ने गद्य के क्षेत्र मे हिन्दी उर्दू का यह मौलिक अन्तर समझा था, तब काव्य के क्षेत्र मे दोनो भाषाओ की प्रवृत्तियो का अन्तर समझने मे और भी आसानी है। काव्य सदैव गद्य की अपेक्षा लोकजीवन के मूलभूत तत्वो से अधिक सलग्न रहता है। कविता हमारे हृदयो का उद्‌गार होने के कारण गद्य की अपेक्षा कही अधिक राष्ट्रीय या जातीय वस्तु कही जा सकती है।

इस सबध मे एक और उदाहरण 'सनेही'जी का प्राप्त होता है, जिन्होंने स्वराज्य आन्दोलन के समय मे अपनी राष्ट्रीय कविताओ के द्वारा अत्यधिक कीर्ति अर्जित की थी। उनकी कवितायें हिन्दी और उर्दू के पत्रो मे काफी प्रकाशित होती रही। उर्दू मे उन्होंने अपना उपनाम भी अलग ही रखा था। पर अन्तत· यह देखा गया कि सनेही जी की हिन्दी मे लिखी राष्ट्रीय कवितायें अधिक प्रचलित हुईं और अधिक स्थायित्व प्राप्त कर सकी। इन उदाहरणो से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि हिन्दी और उर्दू की समानातर प्रगति मे, राष्ट्रीय और लोकजीवन के क्षेत्र में, उर्दू क्रमश पिछड़ती गई है और हिन्दी अधिकाधिक लोकप्रिय होती गई है।

छायावाद युग में आकर हिन्दी कविता अपने युगसम्मत वैशिष्ट्य को पूरी तरह प्रमाणित कर चुकी है।

निराला का उर्दू काव्य : प्रेरणा और उद्देश्य

हिन्दी और उर्दू सम्बन्धी जो पृष्ठभूमि ऊपर दी गई है, उससे यह प्रकट होता है कि ज्यों ज्यों उर्दू साहित्य को राजाश्रय मिलता गया और वह नागरिक जीवन की रंगीनियों में पड़ती गई, त्यों त्यों हिन्दी से उसका पार्थक्य बढ़ता गया है। आरम्भ में इन दो भाषाओं का अन्तर अत्यन्त अल्प या नहीं के बराबर था, जब इनका प्रयोग हिन्दू और मुसलमान बिना भेदभाव के किया करते थे। इसे रेख़ता हिंदवी आदि के नाम से पुकारा जाता था। इन दोनों भाषाओं में समानरूप से लोकजीवन के वर्ण्य विषय रहा करते थे, और दोनों ही एक समान संस्कृति की उन्नति कर रही थीं। बल्कि हिन्दी के रीतिकाल के उत्तरार्द्ध में हिन्दी की अपेक्षा उर्दू ही लोकजीवन के समीप थी। परन्तु समय के परिवर्तन से उर्दू भाषा और उसका साहित्य लोक भूमिका को छोड़कर विशिष्ट राजकीय आश्रय और राजकीय मनोरंजन का साधन बन गई। इसके विपरीत हिन्दी काव्य राजाश्रय को छोड़कर आधुनिक युग की जनतांत्रिक भावनाओं को अपनाता गया है। इस युग में जब-जब किसी कवि ने उर्दू में काव्य लिखने का उपक्रम किया है, तो इस दृष्टि से नहीं कि वह उर्दू के चमत्कार को, नागरिक सौंदर्य को हिन्दी में उतारे, वरन् इसीलिए उर्दू के प्रयोग किये हैं कि उसे लोक जीवन के अधिक समीप लाया जाय। इसीलिए हिन्दी कवियों ने उर्दू की विषय वस्तुओं में अस्पृष्ट रहकर उसके छन्दों और मुहावरों को ही अपनाने का प्रयत्न किया है। इस प्रकार इस सम्पूर्ण युग में हिन्दी कवियों ने उर्दू के कलापक्ष से ही थोड़ी बहुत प्रेरणा ली है, उसके वस्तुपक्ष से नहीं। हिन्दी उर्दू के इस पारस्परिक आदान-प्रदान से एक तीसरी भाषा का भी विन्यास होने लगा था। उसे हम बोलचाल की खड़ी बोली कह सकते हैं। इस बोलचाल की खड़ी बोली में एक ओर संस्कृत की पदावली का बहिष्कार और दूसरी ओर फारसी के शब्द-भंडार का परित्याग था। दोनों दिशाओं से मुँह मोड़कर यह बोलचाल की खड़ी बोली विशिष्ट प्रकार के काव्य निर्माण के लिये अक्षम सिद्ध हुई और हिन्दी और उर्दू की काव्य-शैलियाँ पृथक ही बनी रहीं। यहाँ तक कि प्रेमचंदजी को भी इतना साहस नहीं हुआ कि वे हिन्दी और उर्दू के बीच की भाषा का प्रयोग करते हुए अपने उपन्यास और कहानियाँ लिखते और देवनागरी और फारसी लिपियों में एक ही वस्तु को मुद्रित करा देते। उन्हें भी उर्दू में अलग और हिन्दी में अलग कृतियाँ प्रस्तुत करनी पड़ीं और अपने प्रौढ़काल में तो उन्होंने हिन्दी के माध्यम से ही साहित्यिक कार्य किया था। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि हिन्दी के लेखक और कवि उर्दू को अपने कार्य और उद्देश्य के लिए अक्षम और असमर्थ पा रहे थे।

ऐसी परिस्थिति मे निरालाजी को उर्दू काव्यरचना करने की प्रेरणा किस ओर से मिली है और उन्होने उर्दू शैली की काव्य-सृष्टि किस उद्देश्य से की, यह प्रश्न विचारणीय है। हम यह देखते हैं कि निराला की उर्दू शैली की कविताओ मे व्यग और विनोद की प्रधानता है। कदाचित उन्होंने हास्य और व्यग विनोद के लिए उर्दू की चटपटी शैली को उपयोगी समझा। इस प्रकार की व्यगात्मक और विनोदात्मक कृतियो मे निरालाजी ने मुक्तछद का प्रयोग भी किया है जिसमे प्रवाह और भाव-भगिमा की कमी न रहे। चुहल और नुक्ताचीनी के लिये यह भाषा उन्हें उपयुक्त जान पडी। उनका 'कुकुरमुत्ता'[1] काव्य इसका अच्छा प्रमाण कहा जा सकता है। 'कुकुरमुत्ता' को एक बार लिख लेने के पश्चात् निरालाजी ने उसे उर्दू के कतिपय साहित्यिको और कवियो को दिखाया था और उनसे इस्लाह लेकर उन्होने अनेक सशोधन किये थे। 'कुकुरमुत्ता' के दूसरे सस्करण मे उर्दू के प्रयोग-सम्मत स्वरूप को प्रयत्नपूर्वक अपनाया गया है। देखिये—

प्रथम सस्करण— एक सपना जग रहा था
सास ले तहजीब की,
गोद मे तरतीब की—

सशोधित सस्करण— एक सपना जग रहा था
सांस पर तहजीब की
गोद पर तरतीब की।

× × ×

प्रथम सस्करण— गले लग लग हवा चलती मद मद

सशोधित सस्करण— गले लग कर हवा चलती मद मद

× × ×

प्रथम सस्करण— बीच मे आरामगाह
दे रहा था बडप्पन की थाह

सशोधित सस्करण— बीच मे आरामगाह
दे रही थी बडप्पन की थाह

× × ×

प्रथम सस्करण— हाथ जिसके तू लगा,
पैर सर पर रख के पीछे को भगा
जानिब औरत की, मैदानेजंग छोड,
तबेले को टट्टू जैसे तग तोड,

१ निराला : कुकुरमुत्ता—प्रथम सस्करण (१९४२)—संशोधित सस्करण (१९४८)

संशोधित संस्करण—   हाथ जिसके तू लगा,
पैर सर रखकर व' पीछे को भगा
औरत की जानिब मैदान यह छोडकर
तबेले को टट्टू जैसे तग तोडकर

× × ×

इनकी इस संशोधन प्रक्रिया से यह सूचित होता है कि वे कुकुरमुत्ता तथा अन्य ऐसी कविताओ को उर्दू पाठको के लिए भी ग्राह्य और पाठ्य बनाना चाहते थे। यहाँ उनका लक्ष्य हिन्दी कविता के उर्दू पाठक उत्पन्न करना कहा जा सकता है। 'कुकुरमुत्ता' और कुछ अन्य रचनाओ मे तो निरालाजी ने सरल हिन्दी और सरल उर्दू को मिलाने का प्रयोग किया है। परन्तु बीच बीच मे संस्कृत के कुछ क्लिष्ट शब्द भी आ ही गये हैं जो इन रचनाओ को एक अंश तक दुर्बल बना देते हैं।

मन्द होकर कभी निकला,
कभी बनकर ध्वनि क्षीणा।[1]

या

मेरी सूरत के नमूने पिरामिड,
मेरा चेला था युक्लीड।
रामेश्वर, मीनाक्षी, भुवनेश्वर,
जगन्नाथ, कितने मन्दिर सुन्दर,
मैं ही सबका जनक,
जेवर का ज्यो कनक।[2]

फिर भी सामान्य रूप से कुकुरमुत्ता व्यंग और विनोद की सफल सृष्टि कहा जा सकता है और इसमें किये गये उर्दू के प्रयोग उद्देश्य की पूर्ति करते हैं।

कुछ छंदोबद्ध रचनाओ मे निरालाजी ने उर्दू की गजल शैली का अनुकरण किया है। ये प्रयोग दो प्रकार के हैं। प्रथम वे प्रयत्न जिनमे उर्दू शब्दावली की प्रधानता है, परन्तु ऐसे पद्य कम ही हैं। अधिकतर पद्यो मे छंद उर्दू का और भाषा हिन्दी-संस्कृत की रखी गई है। हम यहाँ दोनो के एक एक उदाहरण दे रहे हैं।

उर्दू पदावली—   बदली जो उनकी आँखें, इरादा बदल गया।
गुल जैसे चमचमाया कि बुलबुल मचल गया।[3]

---

१ निराला कुकुरमुत्ता (प्रथम संस्करण) पृ० ८।
२ वही पृ० १२।
३ निराला बेला—पृ० ८३।

संस्कृत गर्भित पदावली— स्नेह की रागिनी बजी
देह की सुर-बहार पर,
वर विलासिनी सजी
प्रिय के अनुहार पर।[1]

इन उदाहरणो को देखकर यह कहा जा सकता है कि एक ओर जहाँ वे उर्दू प्रधान गजलों के द्वारा इस भाषा सम्बन्धी अपनी जानकारी और क्षमता को प्रकट करते हैं वहाँ दूसरी ओर वे हिन्दी पाठकों को एक नई छदशैली भी भेंट करते हैं, जिसमें संस्कृत की पदावली उर्दू पदों के साथ जुडी हुई है। दोनो ही भूमिकाओ पर निरालाजी का यह उपक्रम उनकी प्रयोग-बहुल काव्यसाधना का परिणाम कहा जा सकता है।

हमे यह भी स्मरण रखना चाहिये कि निरालाजी ने उर्दू शैली की काव्य रचना उन कतिपय वर्षों से आरम्भ की थी, जब हिन्दी मे प्रगतिवादी आदोलन आरम्भ हो चुका था और हिन्दी के प्रगतिवादी समीक्षक भाषा को सरल बनाने का जोरदार आग्रह कर रहे थे। यह बात भी लक्ष्य करने योग्य है कि उर्दू शैली की इन रचनाओ मे निरालाजी की विचार-दृष्टि प्रगतिशीलता के बहुत समीप थी। इस आधार पर यह कहना अनुचित न होगा कि निराला के उर्दू-शैली-काव्य की प्रमुख प्रेरणा प्रगतिवादी विचारधारा से प्राप्त हुई।

इन्ही वर्षों मे श्री रघुपतिसहाय 'फिराक' और डा० रामविलास शर्मा मे हिन्दी-उर्दू काव्य-भाषा के प्रश्न को लेकर बडी लम्बी लिखा-पढी हुई थी, जिसमे रघुपतिसहाय ने हिन्दी के उच्चारणो को बोझिल और क्लिष्ट तथा हिन्दी के भाषागत प्रयोगो को बे-मुहावरा और बेढगा तक कहा। इसके उत्तर मे डा० रामविलास शर्मा के वक्तव्यों मे यह स्पष्ट किया गया था कि हिन्दी-काव्य-भाषा अपनी परम्परा के अनुरूप आगे बढ रही थी और हिन्दी पाठकों को उसमे अनगढपन या दुरुहता नजर नही आती थी। उर्दू की मुहावरेबाजी को उन्होंने दरबारी भूमिका पर तैयार किया गया बताया था और काव्य मे मुहावरो के अधिक प्रयोग को कृत्रिम कहा।

कदाचित् निरालाजी ने इन दोनो ही लेखको के वक्तव्यो मे आशिक रूप से सत्य का आभास पाया था और उन्होंने मानो यह सिद्ध करने के लिए कि हिन्दी के कवि चाहे तो दूसरे प्रकार की भाषाओ का प्रयोग भी कर सकते हैं, यदि वे भाषा रूप-विषय के अनुकूल हो। एक कवि की ओर से किया गया वादविवाद का यह समाधान कम उल्लेखनीय नही हैं। इसके द्वारा निरालाजी ने हिन्दी-उर्दू सबधी द्वद्व का किसी अश तक समाधान भी कर दिया है।

---

१ निराला . बेला–पृ० २१।

भाषागत अध्ययन —उर्दू शैली की निरालाजी की सर्वाधिक सफल कविता 'कुकुरमुत्ता' ही कही जायेगी। जैसा कि हम निवेदन कर चुके है, 'कुकुरमुत्ता' मुक्तछन्द मे लिखा गया है। 'कुकुरमुत्ता' के अतिरिक्त मुक्तछन्द मे लिखी गई निरालाजी की उर्दू शैली की अन्य कवितायें भी मिलती हैं। 'कुकुरमुत्ता' के प्रथम सस्करण मे ६ अन्य कवितायें भी है, जिनमे 'मास्को डायलाग्स', 'रानी और कानी', और 'स्फटिक शिला' मुक्तछन्द मे लिखी गई हैं। शेष तीन कवितायें 'गर्म पकौडी', 'प्रेम सगीत' और 'खजोहरा' छन्दोबद्ध हैं। 'नये पत्ते' सग्रह मे 'कुकुरमुत्ता' की कुछ कवितायें उद्धरित हैं। शेष नयी कवितायें है। इनमे से कुछ कवितायें मुक्तछन्द मे लिखी गई हैं। उर्दू शैली के तृतीय 'बेला' नामक सग्रह मे सभी कवितायें छन्दोबद्ध हैं और गजल शैली प्रस्तुत की गई है। हम उर्दू शैली के इन तीनो सग्रहो की काव्यभाषा का विवरण अलग-अलग देना चाहेंगे।

(१) कुकुरमुत्ता.—हास्य और व्यग्य-प्रधान यह कविता छन्दोबद्ध न होने के कारण उर्दू की गद्य शैली के अधिक समीप है। छन्दो और तुको के बन्धन मे पड जाने पर किसी भी भाषा मे कविता लिखना कठिन होता है। निरालाजी का उर्दू सम्बन्धी भाषा ज्ञान इतना विशिष्ट नही है कि वे उर्दू के छन्दबद्ध प्रयोग सरलतापूर्वक कर सकें। जहा कही उन्होने इस प्रकार का प्रयोग किया है, वहा वे अपेक्षाकृत कम सफल हुए हैं। कदाचित इसीलिए उनकी छन्दबद्ध उर्दू रचनाओ मे बेमेल भाषा के अधिक उदाहरण मिलते हैं। यह बात भी ध्यान देने की है कि उर्दू की छन्दबद्ध कृतियो में हास्य और व्यग की हलकी कवितायें प्राय नही लिखी जाती। उनमे गम्भीर तत्वो का समावेश करना पडता है और गम्भीर तथ्यो के लिए भाषा पर और भी सुदृढ अधिकार चाहिये। इसीलिए निराला की उर्दू शैली की छन्दोबद्ध रचनायें और भी शिथिल दिखाई पडती है। 'कुकुरमुत्ता' कविता मे बहुत दूर तक पृष्ठभूमि का वर्णन चलता है। इस वर्णनात्मक प्रसग मे उर्दू की गद्यात्मक शैली का प्रयोग करने मे निरालाजी को अधिक कठिनाई नही हुई है। उदाहरण—

> साफ राहें, सरो दोनो ओर,
> दूर तक फैले हुए सब छोर,
> बीच मे आराम गाह
> दे रहा था बडप्पन की थाह
> कही झरने, कही छोटी-सी पहाडी,
> कही सुथरा चमन, नकली कहीं झाडी।[१]

ये पक्तिया गद्यात्मक वर्णन के इतने समीप हैं कि इनका निर्माण करना किसी विशेषज्ञ की अपेक्षा नहीं रखता। इसके पश्चात निराला ने कुकुरमुत्ता के मुह से

---

१ निराला : कुकुरमुत्ता (प्रथम सस्करण) पृ० ३

जो लम्बा नाटकीय संवाद कराया है, उसमे भी उर्दू सलीमदानी की आवश्यकता नही पडी और कही-कही उर्दू के बीच हिन्दी का पुट मिल जाने पर भी रचना शिथिल नही हो पाई है।

और अपने से उगा मैं,
बिना दाने का चुगा मैं
कलम मेरा नही लगता,
मेरा जीवन आप जगता,
तू है नकली, मैं हूँ मौलिक,
तू है बकरा, मैं हू कौलिक,[१]

स्पष्ट है 'मेरा जीवन आप जगता', 'मैं हूँ मौलिक', 'मै हूँ कौलिक', आदि हिन्दी के ठेठ प्रयोग है, फिर भी यह पूरी कविता मे अच्छी तरह खप गए है। इसी प्रकार–

विष्णु का मैं ही सुदर्शन-चक्र हू
काम दुनिया मे पडा ज्यो वक्र हू–
उलट दे, मैं ही जसोदा की मथानी,
और भी लम्बी कहानी,[२]

पक्तिया पूरी की पूरी हिन्दी की हैं। परन्तु उर्दू छन्द भगिमा मे ढलकर भी वे बेमेल नही लगती।

हम यह भी देखते है कि उर्दू भाषा पर निरालाजी के पूर्ण अधिकार की कमी अग्रेजी वाक्याशो के मेल से भी जहा तहा पूरी की गई है। देखिए–

जैसे सिकुडन और साडी,
ज्यो सफाई और माडी,
कास्मोपालिटिन व मेट्रोपालिटिन
जैसे हो फ्रायड, लिटन,
× × ×
सरसता मे फ्राड
कैपिटल मे जैसे लेनिनग्राड[३]।

इस कविता म उर्दू बोलचाल की भाषा के रूप मे स्वीकार की गई है। उर्दूए मुअल्ला के रूप मे नही। कही-कही तो बाजारू शब्द भी झाकने लगते हैं–

---

१ निराला : कुकुरमुत्ता पृ०५
२ वही पृ० ६
३ निराला : कुकुरमुत्ता (प्रथम सस्करण) पृ० ८

मैं ही लायर, लिरिक मुझसे ही बने,
सस्कृत, फारसी, अरबी ग्रीक लैटिन के जने,
मत्र ,गजलें, गीत मुझसे ही हुए शैदा,
जी रहे मर रहे, फिर हो रहे पैदा ।[1]

'कुकुरमुत्ता' मे नवाबी खानदान के सम्पूर्ण वातावरण को उतारने की कोशिश की गई है। इस कार्य मे उर्दू के जमे हुए प्रयोग निरालाजी ने बडी सफाई के साथ किये हैं–

रहते थे नव्वाब के खादिम
अफ्रीका के आदमी आदिम–
खानसामा, बावर्ची, और चोबदार,
सिपाही, साईस, भिश्ती, घुडसवार
तामजाम वाले कुछ देशी कहार,
नाई,धोबी, तेली, तमोली, कुम्हार,[2]

इन पक्तियों मे नव्वाबी जिन्दगी और रहन-सहन का अच्छा नक्शा उतर आया है।

नये पत्ते:—'नयेपत्ते' में उर्दू शैली की कवितायें अधिक सख्या मे हैं, बल्कि कहना चाहिए कि इस सग्रह की २८ कविताओ में से ५-. को छोड कर शेष सब उर्दू मे हैं। परन्तु यहा उर्दू शब्द का प्रयोग हम बोलचाल की उर्दू के अर्थ मे ही कर रहे हैं। कई रचनायें तो ऐसी भी हैं, जिनम उर्दू केवल नाम मात्र को है, परन्तु बोलचाल के आ जाने से इनकी शैली मे उर्दू का आभास मिल जाता है—

फिर भी माँ का दिल बैठा रहा,
एक चोर घर मे पैठा रहा,
सोचती रहती है दिन रात
कानी की शादी की बात
मन मसोस कर वह रहती है।[3]

इस हम उर्दू की अपेक्षा हिन्दी मे ही अधिक निकट पाते हैं। इसी प्रकार 'खजोहरा' कविता हिन्दी उर्दू की मिलीजुली रचना जान पडती है —

---

१ निराला . कुकुरमुत्ता पृ० १
२ वही पृ० १५
३ निराला : नए पत्ते : 'रानी और कानी' पृ० १०

बारिश से बढ़ी ज्वार, बाजरा, उर्द
गांव हरे-भरे कुल, कलाँ और खुर्द
लोग रोज रात को आल्हा गाते
ढोलक पर, अपना जी बहलाते[1] ।

'मास्को डायलाग्स' 'थोडो के पेट मे बहुतो को आना पडा' 'राजे ने अपनी रखवाली की', 'खुश खबरी', 'दगा की,' 'चर्खा चला', 'गर्म पकौडी', 'प्रेम सगीत', ये सभी रचनायें उर्दू की चाशनी से बनी है। इन्हे हिन्दी की अपनी वस्तु कहने मे भी कोई अडचन नही है।

'स्फटिकशिला' जैसी लम्बी रचनायें कुकुरमुत्ता की अपेक्षा हिन्दी के कही अधिक समीप हैं। इसका कारण यह हो सकता है कि प्राचीन हिन्दू तीर्थ स्थान से सबन्धित वस्तु का वर्णन खालिस उर्दू मे उपयुक्त भी नही है। 'कुकुरमुत्ता' मे नवाबी खानदान के परिप्रेक्ष्य मे उर्दू का कुछ गाढापन स्वभावत: आ गया है, यद्यपि उसमे भी प्रयोग के तौर पर अग्रेजी के अनेकानेक शब्द आ गये है। जान पडता है, निरालाजी ने परवर्ती काल की इन रचनाओ मे मूलत बोलचाल की भाषा अपनाई है और विषय के अनुरूप उसमे हिन्दी उर्दू या अग्रेजी का पुट देते चले गए हैं। कदाचित इसीलिए उनकी इन रचनाओ मे उर्दू का अनुपात घटता बढता रहा है, परन्तु जो वस्तु इन सारी रचनाओ को शैली मे ढालती है, वह है इसमे आये हुए उर्दू के मुहावरे और भाषा की वह रवानगी जो उर्दू का स्मरण कराती रहती है। जहाँ एक ओर 'स्फटिक शिला' के वर्णनो मे निम्नलिखित हिन्दी की विशुद्ध पक्तियाँ मिलती हैं—

स्वच्छ मदाकिनी नदी झरनो से यही निकली,
पहाडो के बीच पडी
बादलो मे जैसे बिजली
फूट रहे हैं सस्वर
, नये स्रोत, झरने नए, गिरियो को फोड कर[2]

वहीं— आदमी भी साथ है। "खैर",
मैंने कहा, चलने की वही,
और देखे हैं पैर
अपना भी होगा गैर[3] ?

जैसी उर्दू मिश्रित शब्दावली और मुहावरे भी मिल जाते हैं।

---

१ निराला : नये पत्ते—'सजोहरा' पृ० १२
२ निराला : 'नये पत्ते'-'स्फटिकशिला' पृ० ४६
३ वही पृ० ४२

(३) बेला—ऊपर 'कुकुरमुत्ता' 'और नये पत्ते' की मुक्तछन्द मे लिखी गई हलकी फुलकी उर्दू, या मिलीजुली हिन्दी उर्दू का सक्षेप मे परिचय दिया गया, और इस प्रकार की भाषा का प्रयोग निरालाजी ने हास्य और विनोद के हल्के आशयो के लिये किया है, यह भी उल्लेख किया गया। इन प्रयोगो मे निरालाजी अधिक सफल हुए हैं, यह हम आरम्भ मे ही कह आये हैं। अब हम यहाँ 'बेला' की उर्दू कविताओं की चर्चा करेंगे, जिसमे न केवल उर्दू के छन्द अपनाए गये हैं, बल्कि गजल शैली का प्रयोग भी किया गया है। साथ ही इसमें कुछ गम्भीर भावो के निरूपण का प्रयत्न है। निरालाजी की उर्दू भाषा की वास्तविक परीक्षा 'बेला' मे ही हो सकती है, क्योकि यहाँ आकर उन्हें उर्दू के साहित्यिक स्तर के प्रयोग करने पडे हैं। यहाँ की उर्दू अपनी उच्चतर भूमिका चाहती है। मिश्रित प्रयोग यहाँ सहायता नही दे सकेंगे। हम देखते हैं, कि 'बेला' मे विशुद्ध उर्दू की थोडी सी रचनायें हैं और इनमे भी उर्दू की जबादानी बहुत थोडी कृतियो मे निखर पायी है। अधिकतर केवल उर्दू छद का निर्वाह किया जा सका है। कई उर्दू छदों मे सस्कृत-गर्भित भाषा लिखी गई है। कुछ कविताओं में सस्कृत, हिन्दी और उर्दू का मिश्रण तैयार किया गया है। परन्तु जहाँ कही निरालाजी ने इन अतिवादो को छोडकर सरल हिन्दी उर्दू की कवितायें लिखीं, वहाँ वे स्वाभाविक सौंदर्य से चमक भी उठीं। यहाँ हम विशुद्ध सस्कृत, हिन्दी-उर्दू-सस्कृत और सरल हिन्दी-उर्दू छदो के एक-एक उदाहरण देना चाहेंगे।

विशिष्ट उर्दू —निगह तुम्हारी थी, दिल जिससे बेकरार हुआ,
मगर मैं गैर से मिलकर निगह के पार हुआ।[१]

× × ×

उर्दू छद, विशुद्ध सस्कृत पदावली —

अशब्द हो गयी वीणा,
विभास बजता था।
अमिय-क्षरण नवजीवन समास बजता था।
कलुष मिला, मनसिज की विदग्धता फैली
चल उँगलियाँ रुकी डरकर विलास बजता था[२]

× × ×

हिन्दी-उर्दू-सस्कृत मिश्रित—

वही नवीना सजी और वहीं बजी वीणा,
शराबा प्याले का अब तक न बहिष्कार हुआ।

---

१ निराला 'बेला'—पृ० २६।
२ वही—पृ० २६।

निगह लड़ी उठी शमशीर, बाँके-तिरछे कटे,
गले-लगे छूटे, ससार कारागार हुआ।[1]

× × ×

सरल हिन्दी-उर्दू—

हँसी के झूले के झूले हैं वे बहार के दिन।
सलास वृन्तों के फूले हैं वे बहार के दिन।
जगे हैं सपनो मे किरणो की आँखें मल-मलकर
मधुर हवाओं के भूले हैं वे बहार के दिन।[2]

उर्दू छदो की जमीन पर लिखे गये इन चारो उद्धरणो को देखने पर यह स्पष्ट होता है कि गभीर भावाभिव्यजना में निरालाजी उपर्युक्त प्रथम तीन शैलियो मे अधिक सफलता प्राप्त कर सके हैं। अधिकार-पूर्वक उर्दू-भाषा का प्रयोग करने मे वे थोड़ी ही दूर तक चल पाये हैं। उर्दू छदो मे सस्कृत की पदावली को ढालने मे भी उनकी सफलता निर्विवाद नही कही जा सकती। एक ही कविता मे हिन्दी-उर्दू और सस्कृत की मिश्रित पदावली किसी भी सश्लिष्ट प्रभाव का निर्माण नही करती। इन अतिवादो से हटकर जब निरालाजी भाषा की सहज भूमिका पर आते हैं, तब नि.सदेह वे उत्कृष्ट काव्य के नमूने पेश कर सके हैं। यहाँ उनकी सफल हिन्दी-उर्दू मिश्रण की एक और कविता दी जाती है—

बातें चली सारी रात तुम्हारी,
आखें नही खुली प्रात तुम्हारी
पुरवाई के झोंके लगे हैं
जादू के जीवन मे आ जगे हैं,
पारस पास कि राग रगे हैं
काँपी सुकोमल गात तुम्हारी।[3]

इस सरल भावाभिव्यजना मे निरालाजी को कोई कठिनाई नही हुई, क्योंकि सरल हिन्दी और आसान उर्दू के दोनों ही क्षेत्र उनके लिये खुले हुये हैं, और उनका सचयन करते मे उन्हें कहीं से दूर की कौडी नहीं लानी पडी।

वस्तुगत अध्ययन

निरालाजी के द्वारा प्रयोग की गई उर्दू भाषा के स्वरूप पर प्रकाश डालने के पश्चात् अब हम उनकी इस शैली की कविताओं के वस्तुपक्ष पर भी दृष्टिपात

१ निराला. 'बेला'—पृ० २६।
२ वही—पृ० २४।
३ निराला : बेला—पृ० १७।

करेंगे। आरम्भ में यह ध्यान रखना चाहिये कि निरालाजी ने उर्दू शैली का प्रयोग कविता को सामान्य बोलचाल के समीप लाने और सामयिक सामाजिक विषयों की स्थापना करने के लिये ही किया था। उनकी इस प्रकार की कवितायें समसामयिक प्रश्नों और समस्याओं से सम्बन्धित हैं। जहाँ कहीं कवि ने सामयिकता का आधार छोड़कर उर्दू काव्य के परम्परागत विषयों को अपनाया, वहाँ उसकी काव्य-रचना शिथिल और अशक्त भी हो गई है। हम यह भी कह चुके हैं, कि उर्दू का व्यवहार अधिकतर व्यंग और विनोद के स्तर पर ही किया गया है। जहाँ वे इस प्रकार की पदावली से गंभीर भाव-व्यंजना करना चाहते हैं, वहाँ वे उतने सफल नहीं हुये। श्री निरंजन ने लिखा है—"गजलों की परिपाटी से उन्होंने वाक्‌चातुरी लेने की कोशिश की है, लेकिन इधर-उधर पंक्तियाँ लिखने पर भी वे बहुधा इस चातुरी का निर्वाह नहीं कर पाते। इसका एक कारण यह है कि उर्दू कवि सूक्तियों का ध्यान रखते हैं और निरालाजी भावना के संगठन का। उनकी गजलों में सम्बद्धता है, जो पुरानी गजलों में नहीं मिलती। अनेक गजलों में देश और समाज के बारे में भी बातें कही गयी हैं। कई पुरानी शैली की कल्पनाएँ भी हैं। कहीं कहीं भौतिक सौंदर्य के वर्णन हैं। गीतिका के अनेक छंदों जैसी मांसलता भी है।····उर्दू की बोलचाल का रंग अपनाया है। इन गजलों को पढ़ने से ऐसा लगता है जैसे कवि की नयी चेतना प्रकाश में आने के लिये रूढ़ियों से टकरा रही है। ये बंधन तोड़कर वह चेतना जन-गीतों के रूप में फूट निकली है।"[१]

इसी भूमिका पर हम निरालाजी की उर्दू शैली की रचनाओं का वस्तु-विवेचन कर सकते हैं।

(१) 'कुकुरमुत्ता'—में एक ओर सामंतवादी सभ्यता के कृत्रिम वैभव के चित्र दिये गये हैं, तो दूसरी ओर नये सर्वहारा वर्ग की अविकसित सांस्कृतिक स्थिति का आलेख किया गया है, और एक प्रकार से इन दोनों वर्गों के उपहास के द्वारा नयी संस्कृति के नवनिर्माण का संकेत किया गया है, जो पुरानी सामंतवादी संस्कृति का स्थानापन्न बनेगी। इसी प्रकार 'कुकुरमुत्ता' कविता में निरालाजी की मूल वर्ण्यवस्तु सांस्कृतिक द्वन्द्व की है और उनका निष्कर्ष एक नवीन समृद्ध संस्कृति के निर्माण की दिशा में है।

(२) 'नये पत्ते'—की स्फुट रचनाओं में भी निराला की वर्ण्यवस्तु व्यंगात्मक है। 'खजोहरा' में उन्होंने कुत्सित वास्तविकता को चित्रित करने का प्रयत्न किया है। 'रानी और कानी' में माता के मिथ्या मोह को यथार्थ के प्रकाश में व्यर्थता दिखाई है। 'मास्को डायलाग्स में' प्रगतिवादी कहे जाने वाले लोगों के एक खोखलेपन को

---

१ निरंजन (निराला की ५१ वीं वर्ष गाँठ पर) 'नया साहित्य' पत्रिका में प्रकाशित लेख, पृ० ६५।

प्रदर्शित किया गया है। 'गर्म पकौड़ी' एक हास्यरस की कविता है। यहाँ निरालाजी आजकल के नवयुवकों के प्रेम की बात कह रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो कोई शब्द शिल्पी अप्रस्तुत-योजना के सहारे प्रेम का पिटारा खुले शब्दों में खोल रहा हो—

> पहले तूने मुझको खीचा,
> दिल देकर फिर कपडे-सा फीचा,
> अरी, तेरे लिये छोड़ी
> बम्हन की पकाई
> मैंने घी की कचौड़ी।

इस प्रकार 'गर्म पकौड़ी' और 'प्रेमसगीत' में प्रेम के छिछले रूपो पर व्यगात्मक प्रकाश डाला गया है। 'स्फटिक शिला' में प्राचीन तीर्थस्थलो की आधुनिक गिरी हुई दशा का व्यगात्मक निरूपण किया गया है। 'झीगुर डटकर बोला' में जमींदार के हथकडों का चित्र है।

निरालाजी के उर्दू-शैली के गीत मुख्यत 'बेला' सग्रह मे मिलते है। निरालाजी की युद्धकालीन कविताएँ' शीर्षक लेख में डा० रामविलास शर्मा ने लिखा है—'नये प्रयोगो में निरालाजी की गजलें भी शामिल हैं। इनका सग्रह 'बेला' नाम से प्रकाशित हुआ है। गजलो की परपरा उर्दू में ही खत्म हो रही है। नये कवि नये ढग से मुक्तक और गीत लिख रहे हैं।"[1] 'बेला' में निरालाजी ने अपनी विषय-वस्तु को विविधता दी है और व्यगात्मक भूमिका को छोड़कर अधिक गभीर विषय-वस्तु की अभिव्यक्ति करने लगे हैं। 'बेला' की विषय-वस्तु का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है—

(१) सामाजिक भूमिका।
(२) राष्ट्रीय चेतना और देश प्रेम।
(३) वैयक्तिक प्रेम और शृगार।
(४) रहस्यात्मक एव धर्मपरक।
(५) पुरानी शैली के कुछ प्रयोग।

इनमें से हम प्रत्येक पर सक्षेप में विचार करेंगे—

(१) सामाजिक भूमिका—

> नये विचारो के ससार मे आया है सभी
> सही चढाव को उतार से लाया है सभी (बेला, पृ० ३६)

ईश्वर भी नये विचारो के ससार मे उतर आया है, तब नये समाज के रूप का वर्णन करता है। इसी प्रकार—

---

१ डा० रामविलास शर्मा : 'निराला' पृ० १७५।

वन्दीगृह वरण किया, जनता के हृदय मे जिया
वहिर्जगत के निर्मम हरने के लिये नियम
साधन कितना उत्तम किया, जला दिया दिया—(वेला पृ० ४०)

यहा तत्कालीन राजनीतिक गतिविधि पर राष्ट्रप्रेमी के कर्तव्य का चित्रण है। अपनी कविता मे वे कहते हैं—

भीख मागता है अब राह पर
मुट्ठी भर हड्डी का यह नर।
एक आख आज के बानिज की
पराधीन होकर उस पर पडी, आदि (पृ० ५३)

सामाजिक जीवन वर्गों मे बँटा है। वर्गीय सभ्यता मे शोषित वर्ग के ऊपर सवेदनशील होना स्वाभाविक है। ऊपर निरालाजी ने दरिद्र जीवन का चित्र खीचा है।

नयी चेतना के समय सामाजिक मर्यादाओ को नया मोड मिलता है। युगीन विपमताओ से घबराया हुआ मन जब क्रमप्रेरित होता है, तब परिवर्तन के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। जागरण हो गया है, अत जो परिवर्तन होगा, उसका दृश्य खीचा है। देखिए—

चढी हैं आँखें जहा की, उतार लायेगी।
वढ़े हुओ को गिराकर सवार लायेंगी। (पृ० ५८)

× × ×

मुसीबत म कटे हैं दिन,
मुसीबत म कटी रातें। (पृ० ६१)

सामाजिक जीवन की असहाय अवस्थाओ पर, अधविश्वासो के कुरूप परिणामो पर ऊँचनीच-भेदक दृष्टियो के ऊपर प्रहार किया गया है।

(२) राष्ट्रीय चेतना और देश प्रेम—राष्ट्रीय आन्दोलन का मत्र था कर्मशक्ति का विश्वास तथा देश प्रेम। नया उत्साह भी उत्तरदायित्वपूर्ण प्रेरणा मागता है। जोशे जवानी का मतलब भोगविलास नही, सामाजिक कर्म को गति देना है। निरालाजी का यही मन्तव्य यहा है—देखिए—

अगर तू डर से पीछे हट गया तो नाम रहने दे।
अगर बढना है अरि की ओर तो आराम रहने दे।
विगड कर बनते और बनकर विगडते एक युग बीता,
परी और शाम रहने दे, शराब और जाम रहने दे। (पृ० ६५)

अंग्रेजी साम्राज्यवाद का आदर्श भारतीयों को सभ्य करने का रहा है, पर वास्तविकता यह है—

खुला भेद, विजयी कहाये हुए जो,
लहू दूसरे का पिए जा रहे हैं। (पृ० ६०)

समाजवादी दृष्टि—

देश को मिल जाय जो
पूजी तुम्हारी मिल में है।
हार होंगे हृदय के
खुलकर सभी गाने नये। (पृ० ६७)

राष्ट्रीयकरण की भावना न केवल सम्पत्ति से है; वरन् प्रत्येक मानव ही राष्ट्र की सम्पत्ति है।

सारी सम्पत्ति देश की हो
सारी आपत्ति देश की बने,
जनता जातीय वेश की हो
वाद से विवाद यह ठने,
काँटा काँटे से कढ़ाओ। (पृ० ७०)

अदम्य प्रगतिशीलता—

आंख से आख मिलाओ
उनका डर छोड़ो।
पार करके नयी दुनिया
अपना घर छोड़ो। (पृ० ८२)

राष्ट्रीय आन्दोलन की गतिविधि में राजनीतिक नेताओं का योगदान कैसा रहा है, इसका एक व्यंग्यात्मक चित्र खींचा गया है। देखिये—

काले-काले बादल छाये, न आये वीर जवाहरलाल।
कैसे-कैसे नाग मडलाये न आये वीर जवाहरलाल। (पृ० ४६)

भुखमरी, महगाई का चित्र—

मंहगाई की बाढ़ बढ़ आई, गाव की छूटी गाढ़ी कमाई,
भूखे नंगे खड़े शरमाये, न आये वीर जवाहरलाल। (पृ० ४६)

(३) **वैयक्तिक प्रेम और शृंगार**—उर्दू शायरी का मूल्यांकन प्रेम और सौन्दर्य की शारीरिक चेतना से किया जा सकता है। यद्यपि दार्शनिक प्रवृत्तियों में इश्के-हकीकी का हाल भी सुनने को मिल जाता है। परन्तु हुस्न के नज्जारे पर आशिक की तर्जे अदायें मुख्तलिफ रंगो मे रंगीन हो जाती है। कम से कम मुशायरो

का दर्द और वाह्-वाह् इसी प्रेरणा की द्योतक रही है। निरालाजी ने भी इस प्रकार की कतिपय नज्मे-गजलें लिखी हैं।

वसन्त की मधुरिमा मे प्रेम की उमगो से प्रेमी के चित्र की चचलता को नया उभार मिलता है। अनेक हाव-भाव चेष्टाओ की नूतनश्री से युक्त 'बहार' के दिनो का वर्णन किया जा रहा है। देखिए—

हसी के तार के होते हैं ये बहार के दिन।
हृदय के हार के होते हैं ये बहार के दिन।
निगह रुकी कि केशरों की वेशिनी ने कहा
सुगध-भार के होते हैं ये बहार के दिन। (पृ० २३)

* * *

कदम के उठते कहा प्रियतमा ने फूलो से
उरो मे तीरो के हूले हैं ये बहार के दिन। (पृ० २४)

प्रेमी और प्रेमिका के विलक्षण क्षणो मे अन्त बाह्य सौंदर्य का रूप—

उनके बाग मे बहार, देखता चला गया
कैसा फूलों का उभार, देखता चला गया।
प्रेम का विकास वह, आँखें चार हो गईं,
पड़ा रश्मियो का हार देखता चला गया
मैंने उन्हें दिल दिया, उनका दिल मिला मुझे,
दोनो दिलो का सिंगार, देखता चला गया। (पृ० २७)

(४) रहस्यात्मक एवं धर्मपरक—उर्दू-काव्य का दार्शनिक पक्ष सूफिय प्रेम को महत्व देता है, जिसम सादगी के साथ भाव-व्यजना की प्रधानता है, आधुनिक कालीन उर्दू-कविताओ म यह प्रवृत्ति देखने को मिलती है। 'इकबाल' की दार्शनिक कविताएँ विश्वकाव्य की अनूठी रचनायें हैं। निरालाजी ने भी उर्दू शैली मे कुछ प्रयोग किये हैं।

नये विचारो के ससार मे आया है समी।
सहो चढाव को उतार से लाया है समी।
पड़े ये पैरा तले जो उन्हें किया है खड़ा,
शरीर कैसा कि रग-रग में समाया है समी।

ईश्वरी शक्ति के दर्शन से जो नया हुआ, उसकी खामी का स्वरूप कैसा होता है, यह बताया गया है—

शराब लोहे की ऐसी पिलाई है उसने,
कि चादी-सोने की भी आखो को भोया है समी

तरंगें और बढ़ी और उमंगें और आई,
जवानों, आज बुड्ढे-बुड्ढे पर छाया है सभी। (पृ० ३६)

सारा जहाँ खुदाए-हुस्न की मस्ती का नजारा है। परन्तु इस नजारे का रहस्य क्या हो सकता है ?

गिराया है जमी होकर, छुटाया आसमा होकर।
निकाला, दुश्मने जां; और बुलाया, मेहरबां होकर।

× × ×

बड़ो को गिरने से रोका, ऐसी आँखें लड़ाई है,
सभी उपमाएँ ले ली हैं, न होकर, निरुपमा होकर। (पृ० ६२)

निरालाजी की उर्दू शैली मे विविधता है। कहीं-कहीं अस्पष्टता भी नजर आती है। पुरानी मुशायरा-शैली के भी कतिपय प्रयोग किये गये हैं।

(५) पुरानी शैली के कुछ प्रयोग—घर से निकलकर जब चार यार-दोस्त जरा शाने मुहब्बत के लहजे मे बोलते हैं, तो उर्दू शैली का समा बंध जाता है। निराला ने भी कुछ इस प्रकार की रचनायें की है।

बदली जो उनकी आँखें, इरादा बदल गया।
गुल जैसे चमचमाया कि बुलबुल मसल गया।
यह टहनी से हवा की छेड-छाड थी, मगर
खिलकर सुगन्ध से किसी का दिल बहल गया। (पृ०८२)

× × ×

सकोच को विस्तार दिये जा रहा हूँ मैं,
छन्दो को विनिस्तार दिये जा रहा हूँ मै—(पृ०८५)

अतः; 'बेला' संग्रह मे उर्दू शैली की कवितायें वैविध्यपूर्ण हैं। इसीलिए 'बेला' की भूमिका मे निरालाजी लिखते हैं—"प्रायः सभी तरह के गेय गीत इसमे हैं। भाषा सरल तथा मुहावरेदार है।····नई बात यह है कि अलग-अलग बहरों की गजलें भी हैं, जिनमे फारसी के छद शास्त्र का निर्वाह किया गया है।"[१]

(६) निष्कर्ष

इस प्रकार हम देखते है कि उर्दू शैली मे लिखी गई, निराला की ये समस्त कवितायें उनकी प्रयोगशील अभिरुचि का परिणाम हैं। जिस प्रकार निराला ने अपने काव्य-जीवन के आरम्भ मे मुक्त छद की सृष्टि और उसका प्रयोग किया, तत्पश्चात् सगीतात्मक पदावली मे गीत रचना की और इन दोनो प्रकार की काव्य-सृष्टियो मे अपूर्व सफलता प्राप्त की है; उसी प्रकार का एक अन्य प्रयोग इन उर्दू शैली

१ निराला : 'बेला' (आवेदन से)

की कविताओ मे देखा जा सकता है। परन्तु, यहाँ यह निवेदन करना आवश्यक है कि उर्दू शैली की निराला की कवितायें वहाँ अधिक सफल हुई हैं, जहाँ उन्होंने हास्य और व्यग का पल्ला पकडा है। 'कुकुरमुत्ता' इसका एक अच्छा उदाहरण है। परन्तु जहाँ निरालाजी उर्दू शैली मे किसी गभीर भाव या वस्तु की योजना करना चाहते हैं, वहाँ उनकी सफलता सदिग्ध हो जाती है। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि निराला का उर्दू गजलो, बहरो और विशेषत. उर्दू भाषा पर वह अधिकार नही था, जो हिन्दी और सस्कृत पर था। हास्य और विनोद की रचनाओ मे तो सामान्य भाषा भी खप जाती है; क्योंकि वहाँ भाषा के अनधिकृत प्रयोग भी हास्य की सृष्टि मे बाधा नही डालते। परन्तु जहाँ किसी गभीर भाव की सृष्टि करनी होती है, वहाँ भाषा पर, उसकी परम्परा का यथेष्ट अधिकार आवश्यक होता है। यहाँ एक बात और ध्यान देने योग्य है। उर्दू की गजल शैली मे प्रगीत काव्य की एकाग्रता आवश्यक नहीं। दो-दो पक्तियो मे भाव और विषय बदले जा सकते हैं। निराला ने भी इस छूट का लाभ देकर उर्दू की गजल-शैली का प्रयोग किया है। अतएव उन्हें भावात्मक समरसता का निर्वाह करने से आप ही आप छूट मिल गई है। परन्तु, उर्दू की गजलो मे एक अन्य तत्व भी होता है। वह तत्व है चमत्कार का। उक्ति-वैचित्र्य, अलकार-योजना और मुहावरो के प्रयोग से इस प्रकार का चमत्कार उर्दू के कवि बराबर लाते रहे हैं। निराला ने भी यह चमत्कार लाने का प्रयत्न किया है। परन्तु यहाँ उन्हे उर्दू के टक्साली कवियो की सी सफलता नही मिली। एक तो उर्दू भाषा पर, उसके मुहावरे और चमत्कार शैलियो पर निराला का वैसा अधिकार नहीं था। दूसरे निरालाजी खालिस उर्दू की गजलें न लिखकर हिन्दी, उर्दू, सस्कृत के मिश्रण का रास्ता पकडकर चले हैं। इससे उर्दू कविता का निखार वे नहीं ला सके हैं। यदि हम यह कहें कि वे उर्दू शैली की काव्य रचना मे हिन्दी की कविता कर रहे हैं, तो यह कहना भी अर्धसत्य ही होगा। निराला वास्तव मे उर्दू के प्रयोग कर रहे थे। हिन्दी और उर्दू का मिश्रण उन्हें अभिप्रेत न था। परन्तु उर्दू की उनकी जानकारी काफी सीमित थी। इसीलिये उन्हें यह मिश्रण करना पडता है। यही कारण है कि ये रचनायें न तो सलीस उर्दू की हैं, और न शुद्ध हिन्दी की। ये हिन्दी मे उर्दू और उर्दू मे हिन्दी मिलाने का प्रयोग बनकर ही रह गई हैं। जैसा कि ऊपर कहा गया है, हास्य और व्यग की कृतियो में यह प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक सफल हुआ है, परन्तु शेष रचनाओं मे यह प्रयोग मात्र रह गया है। एक प्रतिभाशाली कवि की कलम स्थान-स्थान पर अपना वैशिष्ट्य दिखाती है, पर अपरिचित क्षेत्र मे प्रतिभा का प्रयोग भी अनुर्वर हो सकता है। निराला की उर्दू शैली की काव्य-रचानाऍं भी इस अनुर्वरता से रहित नहीं हैं।

5

निराला की प्रगतिशील कविताओं का अध्ययन

निराला के प्रगतिशील काव्य की पृष्ठभूमि

निराला प्रारम्भ से ही विद्रोही कवि रहे हैं। उनकी दृष्टि प्रत्येक दिशा मे नवीन आधारो की सृष्टि करती आई है। स्वभावतः उनके काव्य मे सामाजिक जीवन के वैषम्यो का भी आकलन है। उनकी जिन रचनाओं मे प्रत्यक्ष रीति से सामाजिक वैषम्यो की प्रतिक्रिया व्यक्त हुई है, उन्हे ही उनका प्रगतिशील काव्य कहा जा सकता है। निरालाजी एक सामान्य परिवार मे उत्पन्न हुये थे और यद्यपि उनका सम्पर्क और उनका साहित्यिक अध्ययन भारतीय जीवन के महान उन्नायको और उनकी कृतियो का था, फिर भी वे मूलत. अपनी सामान्य सामाजिक स्थिति से छूट नही सके थे। उनके काव्य मे इसी कारण जनजीवन का स्वर मुखर हुआ है। जातीय दृष्टि से निरालाजी ब्राह्मण-समाज की उस श्रेणी से सम्बन्धित थे, जो हीन समझी जाती थी। कान्यकुब्ज (कनौजिया) ब्राह्मणो मे बीघे-बिस्वे की परम्परा चली आ रही थी। निरालाजी उस परम्परा की निचली कडी से सम्बन्धित थे। मूलत उनके मानस मे इस जातीय भूमिका पर विद्रोह की एक ज्वलत प्रेरणा मौजूद थी। वे कहा करते थे कि कनौजिया-समाज मे वे ही परिवार ऊँचे माने गये है, जो अकबर के दरबार मे जाकर अपने अनुगत होने का विज्ञापन कर आये थे। जो परिवार दरबार तक नही पहुचे, वे मर्यादा की दृष्टि से हीन माने गए। इसलिये उनका मत यह था कि वास्तव मे नीचे समझे जाने वाले ही ऊँचे हैं, क्योकि उनमे आत्म-सम्मान था और वे राजदरबार मे जाकर अपनी तौहीन नही करा आए थे। कान्यकुब्ज ब्राह्मण-समाज के लिए उन्होने 'सरोज-स्मृति' कविता मे जो व्यग्यात्मक उल्लेख किये हैं, उनसे भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है। निराला का सामाजिक विद्रोह सम्भवत इसी वैयक्तिक भूमि पर उनकी जातीय स्थिति का परिणाम है, यद्यपि निराला के विद्रोह मे क्रमश. अन्य व्यापक आधारो का भी योग हुआ। निराला अपने व्यक्तिगत उदार सस्कारो और युग की आदर्शोन्मुख विचार-धाराओ के कारण अधिक विस्तृत क्षेत्र मे जाकर सामाजिक समानता का पोषण करने लगे थे।

निरालाजी की निजी आर्थिक स्थिति भी सन्तोषजनक नहीं रही है। विशेष-कर १६२८ से लेकर ३५-३६ तक वे किसी प्रकार अपना आर्थिक यापन करते रहे हैं। उन पर एक बड़े परिवार का बोझ भी रहा है, जिसकी चर्चा हम अन्यत्र कर चुके हैं।

सन् ३६ के पश्चात् द्वितीय महायुद्ध के दौर मे निराला का अर्थ-संकट चरम सीमा पर पहुच गया था और वे अपनी गार्हस्थिक इकाई को चला सकने मे असमर्थ होकर अपने मित्रो और साथियों के साथ रहने लगे थे। अर्थ के विषम विभाजन के प्रति निराला की प्रतिक्रिया इसी वैयक्तिक भूमिका पर आरम्भ हुई थी। यद्यपि यह वहीं तक सीमित नही है। 'जागो फिर एक बार' नाम की कविता मे उन्होंने सारे देश की सम्पन्नता का आवाहन किया था। परन्तु देश की आर्थिक स्थिति के वैषम्य दूर नही हुये। इसके पश्चात् निराला की व्यंग और विद्रूप-भावना व्यक्त हुई और उन्होंने प्रचलित आर्थिक व्यवस्था के विरोध मे अपना स्वर ऊंचा किया।

इसी प्रकार निराला मे नारी जाति के स्वातंत्र्य के लिए भी एक बद्धमूल आकांक्षा रही है, जिसका प्रकाशन वे आरम्भ से ही करते आये हैं। नारी की सामाजिक क्रांति को लेकर उन्होने 'प्रेयसी' और 'वनबेला' कविताओ की रचना की है। 'वनबेला' कविता मे उन्होंने राजनीतिक नेताओ के ऊपर भी छींटाकशी की है।

धार्मिक रूढियो को लेकर भी निराला का असतोष उनकी प्रारम्भिक कृतियो से ही व्यक्त होने लगा था। 'दान' शीर्षक कविता मे उन्होंने उन धार्मिको की भर्त्सना की है, जो बदरो को पकवान खिलाते और मनुष्यो को फटकार बतलाते हैं।

विदेशी शासन की साम्राज्यवादी नीतियो से समस्त भारतीय जनमानस को क्षोभ हो रहा था। गाधीजी का आन्दोलन आरम्भ होने के पहले ही बंगाल मे उग्र राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न हो चुकी थी। निरालाजी इसके साहचर्य मे आ चुके थे। विदेशी शासन के प्रति निराला की प्रतिक्रिया अन्य राष्ट्रीय कवियो से भिन्न नही है। भिन्नता इतनी ही है कि निराला ने राष्ट्रवदना के जैसे सुन्दर गीत लिखे हैं, वैसे बहुत कम कवि लिख सके हैं। उनकी राष्ट्रीयता मे जातीय गौरव के साथ भारत के सांस्कृतिक उत्कर्ष की भी झांकियां हैं। विदेशियो की विभेद उत्पन्न कर शासन करने की नीति का आभास 'छत्रपति शिवाजी का पत्र' शीर्षक कविता मे मिल जाता है। इसी कारण निरालाजी राष्ट्र को विघटित करने वाले तत्वो के प्रति आरम्भ से ही सावधान दिखाई देते हैं। निराला की प्रगतिशील रचनाओ की यही पृष्ठभूमि है।

● प्रगतिवाद की रूपरेखा

साहित्य जीवन के आत्म-सत्य का उद्घाटन करता है। अत: इसमे मानवीय संस्कारों से लेकर सामाजिक वातावरण की अन्त:प्रक्रिया का रूप निहित रहता है।

जिस प्रकार से समाज विकासवादी सिद्धान्त का प्रतिफल है, उसी प्रकार साहित्य की चेतना भी गतिशील रहती है। साहित्य जीवन के गतिशील तत्वों का गत्यात्मक चित्र होता है, तभी तो प्रगतिशीलता साहित्य का प्राथमिक जीवन्त-तत्व है। शक्तिवान साहित्य किसी भी जाति या राष्ट्र की आत्मचेतना के बल का परिचायक और उसकी ज्ञान परंपरा के निश्चयत्व-बोध का प्राह्प होता है। प्रगतिशीलता, सामाजिक विकासवाद की स्वाभाविक प्रक्रिया और व्यक्तित्व निर्माण की आवश्यक दशा है। अतः साहित्य दोनो ही प्रकार के सत्य का अभिव्यक्ति-स्थल है, जिसमे सामाजिक जीवन को इकाई का रूप मिल जाता है। रेनेवेलेक ने साहित्य और समाज के संबंध पर विचार करते हुये कहा है कि साहित्य, सामाजिक संस्था है। यह भाषा के माध्यम से सामाजिक सृजन है।[1]

लेनिन ने सत्य को सामाजिक परिवेश मे देखकर कहा कि—'Truth is formed out of totality of all aspects of a phenomenon of reality, and their (mutual) relationships.'[2]

अतः, साहित्य अनुकृति है 'जीवन' की और बड़े पैमाने मे 'जीवन' एक सामाजिक वास्तविकता है।[3] इस प्रकार सामाजिक प्रतिबिंब के रूप मे साहित्य के साक्ष्य का मूल्याकन उसकी प्रगतिशीलता का परिचय देता रहा है। एक अन्तर्विरोध सामने आता है। जब हम प्राचीन और मध्यकालीन साहित्य की तुलना मे आधुनिक साहित्य का अध्ययन करते है। आधुनिक साहित्य प्राचीन की अपेक्षा बुद्धि-सत्य के आश्रित होने मे ही गर्व समझता है। वह जीवन को भावना से अतिरंजित करने मे, आदर्श का पर्दा ढकने मे, नीति और धर्म के बंधन से बँधने मे कम आश्वस्त है। उसका कारण जड़ विज्ञान का विकास और उसकी परंपरा मे विश्वास कर लेना ही है। नया समाज प्राचीन की तुलना मे एक यथार्थवादी परंपरा की स्थापना कर रहा है। जिसका आधार पदार्थ-विज्ञान है। दो ब्रोल्युबोव ने कहा है—'पदार्थ-विज्ञान के विकास ने हमारे युग मे बोध-प्राप्ति की एक नई पद्धति को तैयार और पक्का किया है। एक ऐसी पद्धति को जो अनुभव पर आधारित है, जो अपने तमाम सैद्धान्तिक निष्कर्षों को तथ्यात्मक ज्ञान पर आधारित करती है, किन्ही स्वप्निल मान्यताओं और धुंधले अनुमानो पर नही।[४]

नयी जीवन-दृष्टि सामाजिक अहं को प्रधानता देती है, जिसके द्वारा ही कवि का 'अनुभव' तथ्य को ग्रहण करता है और फिर उसकी पदार्थपरक अभिव्यक्ति

1 Rene wellek and Austin Warren. Theory of Literature, p. 89.
2 Quoted by Relph Fox : The Novel and the People, p. 71.
3 Renewellek : Theory of literature, p. 89
४ दर्शन साहित्य और आलोचना पृ०-२१८।

करता है। इसका मूल कारण वैज्ञानिक विकास रहा है। साहित्य मे विज्ञान सत्य का प्रादुर्भाव, प्राचीन को चुनौती और नवीन को आशाप्रद साबित हुआ है। १९ वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध से ही विज्ञान और समाज साहित्यिक दृष्टि बन गये। १७८९ की फ्रास की क्रान्ति ने स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृत्व भाव की भावनाओ को बढाया। परिणामत जनजीवन और साहित्य का निकटतम सबध स्थापित हुआ। दैनिक जीवनचर्या के वैज्ञानिक सिद्धान्तो से बँध जाने के बाद चारित्रिक मान्यताओ मे यथार्थ का मूल्य बढ गया। प्रथम विश्वयुद्ध और द्वितीय महायुद्ध ने परम्परा को ही बदल दिया। फलत रूस का साहित्य जीवन और समाज को मार्क्सवादी ढाचे मे बाधकर देखता है। इतिहास को द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की वर्गीय दृष्टि से खडो मे विभाजित करके कार्ल मार्क्स ने सामाजिक विकासवाद को अर्थ की दृष्टि स देखा है। जीवन की उपलब्धि, सामाजिक स्तर पर अर्थ की महत्ता मे निहित है। मोक्ष का आदर्श त्याग मे नही, अर्जन मे निहित है जो एकदम भौतिकवादी पदार्थ है। अत व्यक्ति की चेतना से समाज नही, वरन् सामाजिक चेतना से व्यक्तित्व का निर्माण होता है। व्यक्तित्व की अखडता का अर्थ ही सामाजिक चेतना के अनुभव से है। मार्क्सवादी काव्य दृष्टि समाजशास्त्रीय तत्वो को स्वीकार करती है। पदार्थ-सौन्दर्य पर उसकी मूल्य निधि टिकी है।

काडवेल ने कहा है—'Poetry springs from the contradiction between the instincts and experience of the poet'[1]

प्रवृत्तिया पदार्थ तत्व की स्वीकृति मे और अनुभव उसके वातावरण की स्वीकृति मे ही सृजन करता है। अत मानव की समस्त चेतनायें समाज से सबद्ध हैं *और उसी से पैदा होती हैं।*[2] *तभी, उसने कविता की परिभाषा को सामाजिक श्रम* के रूप मे स्वीकार किया है। वह प्रकृति के साथ होने वाले मनुष्य के सघर्ष का भावात्मक श्रम सीकर है।[3]

इस प्रकार समाजवादी साहित्यिक दृष्टि अर्थ को मूल प्रेरक-तत्व स्वीकार करके पूजीवाद और समाजवाद, शोषक शोषित, जातीय भेद भावा म अविश्वास, राष्ट्रीय भावना और क्रान्तिशील तत्वो से युक्त है।

प्रगतिशील इस *अर्थ म है क्योकि इन विचारकों का कहना है कि पूँजीवादी* समाज, रूढ़िग्रस्त परम्परा को विज्ञान-युग का सत्य नहीं बना सकता जिसमे धर्मरूपी अफीम का नशा, पूजी के अतिरिक्त भोगविलासो को स्वीकार किया जावे। यह क्रान्तिशील तत्वा *को अपनाता है। समाज को जनतन्त्र की विधि सिखाता है।*

1 Christopher Caudwell Illusion and Reality, p. 160
2 Ibid p 298
3 Christopher Caudwell : Illusion and Reality, p 110

गया था। यथार्थवादी-शिल्प में हास्य-व्यंग्य विनोद के साथ-साथ गंभीर समस्याओं पर भी दृष्टिपात भारतेन्दु तथा उनके सहयोगी कवियों ने किया था। हिन्दी के प्रगतिवादी युग की मूल भूमिका इस युग में मिल जाती है। फिर भी सिद्धान्ततः कोई सैद्धान्तिक क्रम नहीं खोजा जा सकता। प्रगतिवादी दृष्टिकोण का सिद्धान्तपक्ष भले ही १९३६ के बाद निखरा हो, परन्तु भारतीय समाज का खुला चित्र भारतेन्दु के विशाल साहित्य में देखने को मिलता है। वहाँ साम्राज्यवादी प्रतिहिंसा का क्षोभ है, यहाँ समाजवादी आदर्श को पनपाने की लालसा।

अतः शोषण और बंधन से मुक्ति की लालसा के निमित्त 'वामपथ के साहित्यकारों ने संगठित होकर १९३६ में एक प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना की।"[१] प्रेमचन्दजी इसके सभापति हुये। इसका लक्ष्य ही समाजवादी आदर्शों के द्वारा वर्गवाद को मिटाकर आर्थिक समानता के गीत गाना था। इससे प्रभावित होकर प्रौढ़ विद्वान राहुल सांकृत्यायन, प्रकाशचन्द्र गुप्त, शिवदानसिंह चौहान, रामविलास शर्मा, भगवतशरण उपाध्याय, यशपाल, रांगेय राघव, अमृतराय, शिवमंगलसिंह 'सुमन', नागार्जुन आदि ने साहित्य की प्रत्येक विधा पर प्रगतिवादी प्रयोग किए। सुमित्रानन्दन पंत और निरालाजी के परवर्ती काव्य में इसका प्रभाव स्पष्ट रूप से लक्षित होता है।

७ निराला काव्य की प्रगतिशीलता का स्वरूप

निराला का काव्य उनके विकासशील व्यक्तित्व की प्रतिकृति है, जिसमें उनकी वैयक्तिकता और सामाजिकता का विद्रोह-पक्ष प्रबल रहा है। वैयक्तिकता की सृजन-स्थली उनकी सांस्कृतिक देन है तथा सामाजिकता की उत्सभूमि उनकी प्रभाव-ग्रहणशीलता में खोजी जा सकती है। उनके विद्रोही व्यक्तित्व में अनुभव की तीव्रता रही है, तभी तो वे एक साथ दार्शनिक, चिन्तक और सामाजिक तथ्यों के उद्घाटक के रूप में रह सके हैं। उनके पूरे काव्य-विकास में उनका 'अध्यात्मबल' खो नहीं गया है, फिर भी प्रगतिशील कवि के रूप में उन्होंने उल्लेखनीय कार्य किया है। उनके प्रगतिशील काव्य का आरम्भ 'रूपाभ' के प्रकाशन से होता है। "निराला सन् १९३८ ई० से ही इस दिशा में आये। 'रूपाभ' का संपादन सुमित्रानंदन पंत करते थे, जिनको निरालाजी जैसे श्रेष्ठ प्रगतिशील साहित्यिक का सहयोग प्राप्त हुआ।"[२]

'बेला' काव्य-संग्रह का प्रकाशन सन् १९४३ में हुआ, परन्तु उसकी कविताएँ, गजलें, १९३७ के आसपास तक की हैं। यह उनकी प्रगतिशील काव्य-दृष्टि का प्रथम उन्मेष है। इसके बाद 'नये पत्ते', 'कुकुरमुत्ता' आदि में उनकी प्रगतिशील विचार-

---

१ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य-पृ० ४९६।
२ गिरीशचन्द्र तिवारी : कवि निराला और उनका काव्य साहित्य, पृ० ५३।

धारा का विकसित रूप मिलता है। इसके साथ ही निरालाजी की कथा-सृष्टि का मूलरूप ही यथार्थ-शैली की प्रधानता मे व्यक्त हुआ है, यद्यपि उनमे रोमान्स के छुट-पुट दृश्यो की भी भरमार है। उन्होने 'बिल्लेसुर बकरिहा', 'चमेली', 'काले कारनामे' आदि मे व्यंग्यात्मक रूप से सामाजिक विषमता और परिणामों को देखा है।

निरालाजी इस क्षेत्र मे सबसे बडे क्रांतिदर्शी के रूप मे सामने आते है। परन्तु उनकी यह क्रांति सिद्धांतों से बद्ध नही थी। उसमे सामाजिक प्रवृत्तियों को उस अर्थ मे उकसाने का उपदेश नही था जैसा अन्य प्रगतिवादी कवियो मे है। स्वच्छंद सामाजिक-चित्र की कल्पना यहाँ भी उनकी विशेषता कही जा सकती है। प्रश्न पूछा जा सकता है कि निरालाजीकी प्रगतिशील दृष्टि म मार्क्सवादी सिद्धातो का कितना प्रभाव पडा है ? यह नही भूलना चाहिये कि वे व्यक्तिवादी दर्शन की भूमिका से सामाजिक भूमि स्पर्श करते है। उनमे विद्रोही प्रवृत्ति थी, जिसने बधन-मुक्ति के आदर्श को स्वीकार किया था। अत निराला मार्क्स या किसी भी समाजवादी सिद्धात के प्रयोग-कर्ता नही हैं। सामाजिक वैषम्य से मुक्ति को तत्कालीन भारतीय समाज की आवश्यकता मानकर ही उसको अभिव्यक्ति दी है। प्रेमचन्द की भाँति सामाजिक विषमता के कटु परिणामो पर सहृदयात्मक दृष्टि डालना ही निरालाजी का कार्य था, जिसमे व्यग्य और उपहास की शैली अपनाई गई। निराला का समाजवाद अधिक विस्तृत है, जिसमे समानता का आदर्श स्वतत्रता के बगैर हो ही नही सकता।

'निराला' की प्रगतिशील कविताओ मे 'समाज' की अवस्थाओ को चित्रित किया गया है, जिसके आवरण मे भारतीय जीवन को गति मिल रही थी। निराला ने जातीय मतभेदो,छोटे बडे की भावनाओ, अधविश्वाओ, छल-कपट, स्वार्थ आर्थिक कष्टो, दरिद्रता, भुखमरी, चारित्रिक दोष, आदि को वर्णित किया है। हास्य व्यग्यो के सहारे तीखे प्रहार भी किये हैं। इस प्रकार सामाजिक-यथार्थ की अभिव्यक्ति मे निराला का काव्य समस्याओ का इतिहास बनकर भी समस्या समाधान के साधनो और परिणाम पर दृष्टि डालता है। साधन रूप मे उनके काव्य का प्रमुख स्वर स्वतत्रता, समानता और भ्रातृत्व म गुजित होता है जो क्राति के तत्व रहे हैं तथा परिणाम के क्षेत्र मे वे मानवतावादी सहानुभूति के पक्षपाती दिखाई देते हैं। उनकी सहानुभूति केवल बौद्धिक या आदर्शवादी नही है। उसका एक क्रियात्मक पक्ष भी है जो उनके चरित्र से सबधित रहा है।

प्रगतिशील कविताओ के अध्ययन के पूर्व हमें यह भी देख लेना चाहिये कि उनके रचना-साहित्य मे युगीन सत्य के उद्घाटन और भारतीय परिस्थितियो को प्रधानता मिली है या किसी वैचारिक आदर्श को ? केवल खडन ही है या निर्माण का स्वरूप भी ? खडन की प्रवृत्ति को क्या साम्यवादी क्रियात्मकता का आदर्श दिया गया है ? और मडन मे क्या किसी नीति को स्वीकार करते हैं ? उनके काव्य की शिला

पर खुदे शब्दों में 'सामाजिक अनुभव' की विशाल योजना मिलती है, जिसमें युग, सत्य को भावात्मक अतिरेक से बचाने का प्रयत्न किया गया है। बौद्धिक आदर्श का पालन किया गया है।

प्रगतिशील कविताओं का वर्गीकरण : निराला की प्रगतिशील कविताओं को देखने पर यह स्पष्ट होता है कि उनकी ऐसी रचनाएँ अधिकतर सामाजिक विषयों को लेकर हैं। इनमें से कुछ में उद्बोधन का भाव है। अधिकांश व्यंग्य-प्रधान हैं। कुछ में यथार्थवादी शैली की नियोजना है। कुछ गीत हैं। अनेक रचनाओं में सामाजिक स्थिति के साथ आर्थिक और राजनीतिक स्थितियाँ भी जुड़ी हैं। विशुद्ध साम्यवादी भावना की भी कुछ रचनाएँ हैं। इसी सामाजिक प्रगतिशीलता के एक अंग के रूप में निरालाजी की नारी-उत्थान संबंधी रचनायें भी आती हैं। धार्मिक रूढ़ियों के प्रति व्यंग भी यद्यपि सामाजिक क्षेत्र के अंतर्गत ही हैं, परन्तु उसे हम स्वतंत्र स्थान भी दे सकते हैं।

निराला की प्रगतिशील कविताओं का दूसरा वर्ग राजनीतिक क्षेत्र से संबंधित है। इसके अंतर्गत अनेक रचनाओं में राजनीतिक गतिविधि पर व्यंग्यात्मक उल्लेख है। कुछ में राष्ट्रीयता का पोषण है और कुछ राष्ट्रगीत हैं।

निराला के प्रगतिशील काव्य का तीसरा वर्ग आर्थिक वैषम्य को लक्षित करने वाला है। इसीके अंतर्गत पूँजीवादी सभ्यता पर व्यंग भी किये गये हैं। कहीं-कहीं आर्थिक स्थितियों का यथार्थवादी चित्र भी आया है। दैन्य और विपन्नता के दृश्य भी दिखाए गये हैं।

निराला के प्रगतिवाद का एक अन्य स्वरूप वह भी है, जिसमें मानवतावादी भूमिका अपनाई गई है। न केवल भारत में बल्कि समस्त विश्व में मानव समाज जिन व्याधियों का शिकार है, उनका चित्रण करते हुए निराला ने उनसे मुक्ति का उपाय भी बताया है। मानव समाज की दयनीय दशा पर करुणा भरे उद्गार भी हैं और कहीं-कहीं ईश्वर से प्रार्थना है कि इस मानव - समाज का उद्धार किया जाय। किन्तु यहाँ भी अधिकांश रचनाएँ व्यंग्यात्मक हैं। इस प्रकार जो रचनायें निराला की इस काल की सामान्य मनोभावना की परिचायक हैं, उनका सामान्य मनोभाव आक्रोश का ही रहा है इसीलिये व्यंग की प्रधानता है।

इस प्रकार हम 'निराला की प्रगतिशील कविताओं का वर्गीकरण' निम्नलिखित छ भागों में कर सकते हैं।

१ प्रगतिशील सामाजिक कवितायें।
२ नारी उत्थान संबंधी प्रगतिशील रचनाएँ।
३ धार्मिक व्यंग, रूढ़ियों का दिग्दर्शन।

४ राजनीतिक उद्‌बोधन, राष्ट्रगीत और राजनीतिक व्यंग्यात्मक कविताएँ।
५ आर्थिक विषमता को लक्षित करने वाली प्रगतिशील रचनाएँ।
६ प्रगतिशील रचनाओं का मानवतावादी पक्ष।

उपर्युक्त वर्गीकरण मे से प्रत्येक वर्ग पर अलग-अलग विचार करने के पूर्व हम यह उल्लेख कर देना चाहते हैं कि यद्यपि यह निराला के परवर्ती काव्य से ही सबन्धित वर्गीकरण है, परन्तु जैसा कि हम इस अध्याय की पृष्ठभूमि मे लिख आये हैं, निराला आरभ से ही प्रगतिशील विषयो की रचनायें करते हैं। यह उल्लेख किया जा सकता है कि इस विषय की उनकी आरभिक कवितायें अधिक आवेगपूर्ण हैं। उनमे क्रांति का स्वर भी मुखर है। जब कि इन परवर्ती रचनाओ मे व्यग्य-शैली की ही प्रधानता है। इससे यह सूचित होता है कि अपने अनुभवो की वृद्धि के साथ निराला मे सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक वैषम्यो की अधिक गम्भीर प्रतिक्रिया है और वे अपने आरभिक आशावाद और क्रांति-भावना को छोड कर बहुत कुछ यथार्थोन्मुख हो गये हैं। इस सामान्य अन्तर के निर्देश के पश्चात अब हम उनकी परवर्ती काल की प्रगतिशील रचनाओ को ऊपर निर्देश किये गए ६ वर्गों मे रखकर देखना चाहेगे। अपने इस निबन्ध की सीमा मे हम उनकी सभी रचनाओ को नही ले सकते। इसलिए कुछ चुनी हुई कविताओ को लेकर ही विचार करेंगे।

(१) प्रगतिशील सामाजिक कवितायें—इसके अन्तर्गत सर्व प्रथम 'अनामिका' मे प्रकाशित हुई 'तोडती पत्थर' कविता पर, जो सामाजिक वैषम्य से सबधित है, विचार करेंगे। 'अनामिका' की 'तोडती पत्थर'[1] ४-४-३७ की रचना है। हिन्दी ससार ने १९३६ में प्रगतिवादी सिद्धान्तो पर लखनऊ अधिवेशन मे विचार-विमर्श किया था। अनेक कवियो ने छुटपुट प्रयोग भी किये। निराला के साहित्य मे आर्थिक दृष्टि के यह प्रगतिवादी प्रयोग बहुत पहले से ही मिलते हैं। परन्तु उनकी 'तोडती पत्थर' रचना मे समाजवादी विचारधारा का स्पष्ट रूप देखने को मिलता है।

वह तोडती पत्थर
देखा मैंने उसे इलाहाबाद के पथ पर
वह तोडती पत्थर।

प्रस्तुत कविता मे दुबारा 'वह तोडती पत्थर' कहा गया है जिससे लक्षित होता है कि कविता का लक्ष्य ही यह है जो सहानुभूति के रूप मे व्यक्त होता है। विषय की लक्ष्य-योजना को पहले से ही ध्वनित करके कवि ने अपने मन की करुणा भरी दृष्टि का परिचय दिया है।

---

१ निराला अनामिका, पृ०७९ (तृतीय सस्करण)

विषय के वातावरण को प्रस्तुत करने के लिए कवि कहता है–

(१) नही छायादार,
पेड वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार;

(२) श्याम तन, भर बधा यौवन
नत नयन, प्रिय कर्म-रत मन,

(३) गुरु हथौडा हाथ,
करती बार बार प्रहार,

(४) चढ रही थी धूप
गर्मियो के दिन

(५) उठी झुलसाती हुई लू,
रुई ज्यो जलती हुई भू,
......वह तोडती पत्थर।

इलाहाबाद जैसे शहर की भूमिका मे पत्थर तोडती हुई गरीब स्त्री की हालत पर जिस वातावरण का निर्माण हुआ है, वह समाज के आर्थिक अभाव का ढाँचा प्रस्तुत करता है। श्रम के महत्व मे विश्वास की तीव्र आकाक्षा भी प्रस्तुत की गई है। श्रम और समस्या के मिलन-बिंदु पर निर्मित वातावरण कविता मे नई आशा का सचार करता है जिसमें अभावों से मुक्ति पाने की इच्छा तथा ऐश्वर्य के प्रति ईर्ष्यालु तितिक्षा भी मौजूद है।

देखते देखा, मुझे तो एक बार
उस भवन की ओर देखा, छिन्न-तार,
× × ×
देखा मुझे उस दृष्टि से
जो मार खा रोई नही
× × ×
एक क्षण के बाद वह काँपी सुघर,
ढुलक माथे से गिरे सीकर,
लीन होते कर्म मे फिर ज्यो कहा—
"मैं तोडती पत्थर।"

कविता की ध्वनि में कर्म की महत्ता के आदर्श को प्रस्तुत किया गया है, जो अभावसूचक स्थितियो मे मात्र सबल है। मूल तो अर्थ ही है पर समाधान क्रांतिकारी नही। क्रांति है काहिली और आलस्य से छुटकारा पाने की।

'तोडती पत्थर' कविता निराला की विचारधारा को सामाजिक-धर्म के रूप मे प्रस्तुत करती है।

'बेला' की कतिपय गजलों मे निरालाजी ने सामाजिक प्रगति-शीलता के भाव संजोये हैं। उदाहरण के लिए–

भेद कुल खुल जाय वह
सूरत हमारे दिल में है
देश को मिल जाय वो
पूंजी तुम्हारी मिल मे है।[1]

इस कविता में निरालाजी ने नई समाज-रचना का संकेत दिया है। वे कहते हैं कि मेरे मन में वह नक्शा है जिससे सामाजिक विषमता दूर हो सकती है और देश उन्नति के मार्ग पर चल सकता है। यदि मिलों में लगी हुई पूँजीपतियों की पूँजी देश को मिल जाय, पूंजी का राष्ट्रीयकरण हो जाय तो देश का नक्शा बदल सकता है। उस बदली हुई स्थिति मे जो नये साम्यवादी गाने गाये जायेंगे, वे सबके हृदयों के हार होंगे। नई महफिल का राज (नये समाज का आमोद-प्रमोद) सबको प्राप्त होगा। अभी हमारी आखें, विलासमय शृगार मे डूबी हुई हैं; पर नई जीवन-व्यवस्था आने पर आज का नारी-सौंदर्य और भी निखर पड़ेगा। क्रांति की आंधी आने पर बहुत से पेड़ टूटेंगे, पूजीपतियों का खातमा होगा। इस क्रांति के साथ खिलवाड़ नही किया जा सकता। यह वह बिच्छू का बिल, है जिसमे हाथ डालना ठीक न होगा।

इसी प्रकार 'बेला' की एक और गजल–

बिना श्रमर हुए यहाँ काम न होगा।
बिना पसीना आये नाम न होगा। (पृ० ८८)

मे श्रम की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। 'बेला' की एक और कविता है–

"यह जीने का सग्राम जो करते हुए चले,
पहले के रहे दाम जो भरते हुए चले।" (पृ० ६४)

इसमे निरालाजी ने वर्तमान समाज के साधनहीन वर्गों की कठिनाइयो का उल्लेख किया है। आज का जीवन-सग्राम न्याय की भूमिका पर नही चल रहा है। लोगों को पुराना ऋण चुकाना पड रहा है (अर्थात् अपने पूर्वजो की काहिली का भार ढोना पड रहा है)। यहाँ सामान्य लोगो को अनेक प्रकार के प्रहार सहने पड़ते हैं। पर सम्पन्न वर्गों के लोभ के कारण साधारण लोगों को जीत कर भी हारना पडता है।

'बेला' मे आई–"जल्द-जल्द पैर बढाओ आओ आओ" (पृ० ७०) निराला के साम्यवादी दृष्टिकोण को व्यक्त करती है। सामाजिक-व्यवस्था और आर्थिक समस्या को साम्यवादी क्राति के आदश मे प्रस्तुत किया गया है जिसमें दीन-

---

१ निराला : बेला–पृ० ६७।

हीनों, किसानो के महत्व की स्थापना, जाति-पाँति, छुआछूत का समाप्त होना और सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण आदि प्रश्नो को उठाया गया है। सामाजिक प्रगति से नई गति का मन्त्र दिया गया है, जिस पर बढकर समानता का आदर्श स्थापित हो सके। कविता का लक्ष्य पूजीवादी, सामतवादी व्यवस्था को तोडने का है। इसमें क्रांति का आदर्श है, जिसकी पूर्ति अभावग्रस्त समाज करेगा।

> जल्द-जल्द पैर बढाओ, आओ आओ।
> आज अमीरो की हवेली,
> किसानों की होगी पाठशाला,
> धोबी, पासी, चमार, तेली
> खोलेंगे अँधेरे का ताला,
> एक पाठ पढेंगे, टाट बिछाओ।[1]

यह तो कविता का सामाजिक और आर्थिक पक्ष है। इसके आगे राष्ट्रीय और देश की व्यवस्था और सामाजिक दायित्व पर विचार किया गया है। आर्थिक समानता की पूर्ति के बाद जो सम्पत्ति होगी, वह व्यक्तियो की निजी न होकर देश की होगी। प्रजातन्त्र का लक्ष्य जन-सुलभ सरकार मे ही सभव होगा। स्थापना के प्रयत्नो मे जो आपत्तियाँ आयेगी, वह भी देश की होंगी, अर्थात् व्यक्ति का मूल्य देश के निमित्त होगा। तभी तो जनता जातीय आदर्श की पूर्ति कर सकेगी।

> "सारी सम्पत्ति देश की हो
> सारी आपत्ति देश की बने
> जनता जातीय देश की हो
> काटा काटे से कढाओ।"

इस प्रकार हिन्दी के प्रगतिवादी दृष्टिकोण को यह नव-परिवर्तन का आदर्श प्रस्तुत करती है।

९ नये पत्ते

'नये पत्ते' सग्रह मे निरालाजी अपनी प्रगतिशील भावनाओ मे और भी मुखर हुए हैं। इस सग्रह मे हास्य और व्यग अधिक खुले हुए हैं और रग बिरंगे भी हैं। श्री डा० कमलाकान्त पाठक ने ठीक ही कहा है कि "नये पत्ते" मे सामान्य जनता का जागरण दिखाना और जीवन का यथातथ्य व्यग्यात्मक निरूपण करना साधारणत. निरालाजी का इष्ट रहा है। उन्होने प्रगति को छायावाद की प्रतिक्रिया के रूप में गृहीत किया और समाज, धर्म, राजनीति, राष्ट्रीयता, ऐतिहासिकता, धर्म-चेतना

१ निराला 'बेला' पृ० ७०।

आदि को इसी दृष्टि से उपस्थित किया। निरालाजी ने बोलचाल की सरल और प्रवाहमयी उर्दू मिश्रित भाषा अपनाई तथा हास्य-व्यंग्य प्रधान नई अभिव्यंजना शैली का आविष्कार किया। अवश्य ही प्रगतिवादियों की भाषा शैली से यह बहुत पृथक नहीं है।[1] यहाँ हम 'नये पत्ते' की कतिपय प्रगतिशील कविताओं पर विचार करेंगे। 'मास्को डायलाग्स' मे स्वयं साम्यवादियो का मजाक किया गया है। ऐसे साम्यवादी जो नई से नई रसी पुस्तक लिये घूमते हैं पर जो अपनी देशभाषा का एक वाक्य भी शुद्ध नही लिख सकते। 'रानी और कानी' कविता मे कवि ने माता की कल्पना-प्रधान भावनाओं पर व्यंग किया है, जो यथार्थ को नही देखती। यह प्रतीकात्मक कविता भी कही जा सकती है, जिसमे कानी देश की एकागी दशा की परिचायक है और कानी की मा देश की नेता-मडली की। जो अपनी पुत्री का कानापन नहीं देखना चाहती, भविष्य मे देश का क्या होगा, इसकी ओर जिसका ध्यान नही है। 'खजोहरा' कविता रवीन्द्रनाथ की कल्पना और सौंदर्य प्रधान 'विजयिनी' शीर्षक कविता का व्यंग है। रवीन्द्रनाथ ने जहाँ अनिद्य सौदर्य-सम्पन्न नारी का चित्रण किया है, वहाँ निरालाजी खजोहरा लगी हुई बुआ का चित्र उपस्थित करते है। इस कविता के कुरूप और भोडे चित्र स्वयं निराला की स्वच्छदतावादी प्रवृत्तियो के विरोध मे खडे है। 'महँगू महँगा रहा' कविता मे निरालाजी ने राजनीतिक नेताओं पर व्यंग किया है। वे नेता जो उच्च मध्यम वर्ग के हैं, जनता से दूर हैं फिर भी जनता का नेतृत्व करना चाहते हैं। दूसरी ओर महँगू है और लुकुवा है जो सर्वहारा-वर्ग के प्रतिनिधि हैं। महँगू कहता है कि स्वराज्य मिल जाने पर भी क्या होगा ? यदि सामाजिक ढाँचा नही बदला, यदि संपत्ति कुछ ही लोगो के हाथ मे रही, तो महँगू महँगा ही बना रहेगा।

'गर्म पकौडी' कविता मे निरालाजी ने आधुनिक नैतिक उच्छृंखलता पर व्यंग किया है। गर्म पकौड़ी के पीछे आज के युवक दीवाने हो रहे है। उनके नैतिक मानदड गिर गये हैं।

(२) नारी उत्थान से सम्बन्धित प्रगतिशील कविताएं :—यो तो निरालाजी का समस्त काव्य नारी की स्वतन्त्रता का पोषक है और जहाँ कही उन्होने नारी की चर्चा की है,—'खजोहरा' आदि २–३ रचनाओ को छोडकर-उसकी प्रसन्न और शोभाशालिनी मुद्राओं का ही अकन किया है। परन्तु प्रगतिशील दृष्टि से भी उन्होने कुछ कविताएँ लिखी हैं। उनमे से एक 'वह तोडती पत्थर' नारी से ही सम्बन्धित है, उसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। उनकी 'बनबेला' कविता का भी स्वच्छदतावादी स्वरूप हम देख चुके है। इस कविता मे निराला ने विवाह-सम्बन्धी सामाजिक रूढ़ियो का भी अतिक्रमण किया है। स्वयं अपनी कन्या सरोज

---

१ डा० कमलाकान्त पाठक : आधुनिक हिन्दी काव्य, (द्वितीय भाग) पृ० १३८।

के विवाह का जो स्मृति चित्र उन्होंने 'सरोज-स्मृति' कविता में अंकित किया है, वह विद्रोही भावनाओं से संयुक्त है। द्वितीय 'अनामिका' में सन् १-३-३८ की लिखी *'वे किसान की नई बहू की आँखें'* कविता में निरालाजी ने सीधी-सादी ग्रामीण नारी की सौंदर्य-छवि का जो वर्णन किया है, उसमें भी नारी के प्रति उनकी उज्ज्वल भावना का परिचय मिलता है। 'सम्राट् एडवर्ड अष्टम के प्रति' रचना में जो सन् ३६ के *अन्त में लिखी गई थी, कवि ने नारी-प्रेम के उस आदर्श की प्रतिष्ठा की* है, जो साम्राज्यों को भी तिलांजलि दे सकती है। सम्राट एडवर्ड का 'स्तवन' नारी के प्रति उनकी ऐकान्तिक निष्ठा के कारण ही किया गया है।

(३) धार्मिक व्यंग : रूढ़ियों का दिग्दर्शन :— सामाजिक जीवन में ही धर्म की रूढ़ियां व्याप्त रहती हैं। निराला ने इन रूढ़ियों के विरुद्ध स्थान-स्थान पर आवाज उठाई है। उनकी एक कविता 'आ रे, गगा के किनारे' 'बेला' संग्रह में प्रकाशित हुई है। इसकी कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं—

पंडों के सुघर सुघर घार हैं
तिनके की टट्टी के गठ हैं
यात्री जाते हैं, श्राद्ध करते हैं
कहते हैं, कितने तारे।

यहां धार्मिक अंधविश्वास पर प्रच्छन्न व्यंग है। 'दान' शीर्षक कविता में और भी तीखा व्यंग्य है। उसका उल्लेख हम ऊपर कर आये हैं।

(४) राजनीतिक कविताएं—निराला ने राजनीतिक गतिविधियों पर भी काफी कर्कश व्यंग किये हैं। लोकगीत की धुन में लिखी गई उनकी एक कविता इस प्रकार है—

काले काले बादल छाये, न आये वीर जवाहरलाल
कैसे कैसे नाग मंडलाये, न आये वीर जवाहरलाल।
बिजली फन के मन की कौंधी, कर दी सीधी खोपड़ी औंधी,
सर पर सरसर करते धाये, न आये वीर जवाहरलाल।

यहां भारतीय परिस्थितियों के मेघाच्छन्न हो जाने पर भी जवाहरलाल मदद को नहीं आते, यह व्यंग्य है। इसी कविता में आगे लिखा है—

महगाई की बाढ़ बढ़ आई, गांठ की छूटी गाढ़ी कमाई,
भूखे-नंगे खड़े शरमाये, न आये वीर जवाहरलाल।
कैसे हम बच पाये निहत्थे, बहते गये हमारे जत्थे,
राह देखते हैं भरमाये, न आये वीर जवाहरलाल।

देश की आर्थिक दशा खराब होती जा रही है। लोग अन्न-वस्त्रहीन हो रहे हैं। फिर भी नेतागण किसी प्रकार की सहानुभूति नहीं दिखाते। स्पष्ट ही यह राजनीतिक परिस्थिति पर व्यंग है।

व्यंग्यात्मक कविताओं के अतिरिक्त निरालाजी ने देश के प्राकृतिक सौन्दर्य और उसके सांस्कृतिक महत्व पर अनेकानेक गीत लिखे हैं। 'भारत जय विजय करे' शीर्षक उनका राष्ट्रगीत अत्यधिक प्रसिद्ध है।

सन् ४२ की एक अन्य रचना इस प्रकार है—

'भारत ही जीवन धन, ज्योतिर्मय परम-रमण,
सर-सरिता वन-उपवन।
तपः पुंज गिरि-कन्दर, निर्झर के स्वर पुष्कर,
दिव् प्रान्तर मर्म-मुखर, मानव मानव-जीवन।
धौत-धवल ऋतु के पल, सचारण चरण चपल,
धारण-सवारण, वल्कल धारण, सुकृतोच्चारण।
नही कही जाड-अघन्य, नही कही अहमन्य,
नही कही स्तन्य-वन्य, चिन्मय केवल चिन्तन।'[1]

इस गीत मे भी स्वदेश की महिमा का अकन ओजस्वी स्वरो मे किया गया है।

(५) आर्थिक विषमता को लक्षित करने वाली रचनाएं—निरालाजी ने अपने परवर्ती काव्य-युग मे आर्थिक विषमता पर मार्मिक व्यंग्यात्मक कविताएँ लिखी हैं। यह क्षेत्र निराला के निजी अनुभवो का भी रहा है। उनका सवेदनशील मानस गरीबो की विपन्नता पर द्रवित हो गया है। 'बेला' सग्रह की 'भीख मागता है अब राह पर' (पृ० ५३) कविता मे कथानक का स्वरूप सामाजिक दृष्टि के विविध पहलुओ और भिखारी के सकेत पर खडा किया गया है। इस कविता मे मुख्य समस्या एक है जो अर्थाभाव की प्रतीक कही जा सकती है, परतु जिस पर समाज की प्रतिष्ठित और मान्य स्वीकृतिया उससे तुलना करके सतोष पाती हैं। निर्बल के अभावो से सबल को सतोष होता है। अर्थ-दारिद्र्य से विलासो की तुलना होती है, मूल्याकन होता है, इस प्रश्न को इस कविता मे रखा गया है।

कविता के कथानक का प्रेरक तत्व है—

भीख मागता है अब राह पर
मुट्ठी भर हड्डी का यह नर।

इसी से पूरी सामाजिक दृष्टि का लगाव है।

(१) एक आँख आज के बाजि की
पराधीन होकर उस पर पडी,

---

१ निराला बेला—पृ० ५३।

(२) कहा मला ने कल का यह वर
(३) एक आँख कारीगर की गडी,
कहा आदमी की यह है घडी।
(४) एक आँख पडी महाराज की,
कहा देख ली है स्तुति-व्याज की,
(५) एक आँख तरुणी की जो अडी,
कहा यहाँ नही कामना सडी,
इससे मैं हूँ कितनी सुन्दर।'[1]

इसी प्रकार की एक कविता 'अणिमा' मे आई है जो भावात्मक न होकर व्यग्यात्मक अधिक है। इसका शीर्षक है 'चूँकि यहाँ दाना है।'[2]

'चूकि यहाँ दाना है' इसमे पूजीवादी सभ्यता पर व्यग करते हुए वे कहते हैं कि पैसे पर ही धर्म पनपता है, प्रेम पल्लवित होता है, कविता पुष्पित होती है। (उनका आशय सच्चे कवियो से नही, चारणो से है)। माँ बाप का प्रेम भी अर्थाश्रित होता जा रहा है। पैसे वाले के घर उसके साले और ससुर भी रहने लगते हैं। इस प्रकार पैसा कितनी सामाजिक विकृतियो का कारण बनता है, इसका निदर्शन किया गया है। कुछ पक्तियाँ इस प्रकार हैं—

चूकि यहाँ दाना है
इसीलिए दीन है, दीवाना है।
लोग है, महफिल है,
नग्मे हैं, साज है, दिलदार है और दिल है,
शम्मा है, परवाना है।

× × ×

अम्मा है, बप्पा है,
झापड है और गोलगप्पा है,
नौजवान मामा है और बुड्ढा नाना है,
चूकि यहाँ दाना है।[2]

पूजीवादी सभ्यता पर एक और अन्य व्यग 'गीतगुज' पुस्तक मे 'मानव जहाँ बैल घोडा है' शीर्षक रचना मे देखा जाता है। यह सन् ५२ के अन्त की रचना है। वर्तमान आर्थिक वैषम्य के कारण मनुष्य के तन-मन मे, उसकी कथनी और करनी मे महान अन्तर आ गया है। जीवन मे कृत्रिमता आ गई है। मनुष्य बर्बर हो चला है। यह अर्थवादी सभ्यता सावन के फोडे की तरह मवाद से भर गई है।

---

१ निराला बेला—पृ० ५३।
२ निराला अणिमा पृ० १०३ (रचना ४३)

कदाचित् इसी आर्थिक सम्पता से त्रस्त होकर निरालाजी इस संसार को अधकार कहते हैं—

> "गहन है यह अधकारा;
> स्वार्थ के अवगुठनो से
> हुआ है लुण्ठन हमारा।"[1]

जड़ता की दीवार सबको घेर रही है। लोगो मे एक दूसरे के प्रति सौहार्द्र नही रह गया। ससार की शोभा नष्ट हो गयी है। सूर्य, चंद्रमा, तारे अस्तगत हो गये हैं। एक रुद्र-गर्जन हो रहा है। इससे त्राण पाने के लिए निराला देह की वह नयी चेतना चाहते है, जो उन्हे मानवजीवन के सच्चे आदर्शो से संलग्न रख सके।

इसी भाव की एक और कविता सन् ५० मे लिखी गई थी। जो 'अर्चना' में प्रकाशित हुई है—

> आशा आशा मरे,
> लोग देश के हरे।

कवि कहता है कि सच्चाई का नाम नही रह गया। झूठ का सर्वत्र बोलबाला है। भूख-प्यास से लोगो के होंठ सूख गये हैं। आशा दृष्टिगत नही होती।

आर्थिक विषमता से सम्बन्धित निराला की प्रसिद्ध 'कुकुरमुत्ता' कविता के सम्बन्ध मे हम अन्यत्र लिख चुके हैं। अतएव यहाँ उसकी पुनरावृत्ति अनावश्यक है। आर्थिक वैषम्य को इगित करने वाली कुछ पक्तियाँ इस प्रकार हैं—

> अबे, सुन बे, गुलाब,
> भूल मत जो पाई खुशबू, रगोआब,
> खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
> डाल पर इतराता है कैपीटलिस्ट।[2]

(६) मानवतावादी पक्ष :—अन्त मे हम प्रगतिशील रचनाओ के अन्तर्गत निराला के मानवतावादी पक्ष की कुछ चर्चा करेंगे। वास्तव मे प्रगतिशील भावना सामाजिक और राष्ट्रीय होते हुए भी अन्तत. मानवतावाद मे परिणत होती है। एक सुखी विश्व का स्वरूप, जिसमे समस्त मनुष्य स्नेह और समानता के रेशमी पाश मे बँधे हो, जहाँ ईर्ष्या, द्वेष, ऊँच नीच आदि के भेदभाव समाप्त हो गये हो, वही मानव की प्रगतिशील भावना विराम लेती है। इस स्थिति के अभाव की सूचना निराला अनेकश: देते हैं।

---

१ निराला : अणिमा, पृ० ६५ (रचना ४३)

२ निराला : कुकुरमुत्ता—पृ० ३।

कही वे व्यग्यपूर्वक कहते हैं—

ऊँट बैल का साथ हुआ है।
कुत्ता पकडे हुये जुआ है।[1]

इस कविता का स्वर मानवतावादी है। यद्यपि मनुष्य के पास सासारिक साधन बढ गये हैं, सम्पन्नता आ गई है, फिर भी उसकी भावनायें उतनी ही गदली हैं, जितनी असभ्य समाज मे हो सकती हैं। मानव समाज द्वेष-जर्जर हो गया है। उसमे सघर्ष का ताप चढा हुआ है। उसके शरीर को शीतल करने वाले चेतना-जल का कहीं पता नहीं है। यह चेतना-जल ही मानव-समाज के सभी (चेतनारूपी जल के) विकारों को धो सकता है।

निरालाजी मानव-समाज के उन्नयन के लिए ईश्वर से प्रार्थना भी करते हैं। ससार की दीन दशा पर प्रभु की करुणा उतरे, ससार तनमन से हरा भरा हो। तुम्हारा दिव्य आलोक उसमे व्याप्त हो जाय। मनुष्य का सिर वैभव को देखकर आतकित न हो। वह स्थिर होकर सदैव असगतियो का विरोध करता रहे। यह शक्ति तुम्हारी अनपायनी कृपा से ही प्राप्त हो सकती है। इसी भाव को लेकर अणिमा मे वे कहते हैं—

• दलित जन पर करो करुणा।
दीनता पर उतर आये
प्रभु तुम्हारी शक्ति, अरुणा।
× × ×
देख वैभव न हो नत सिर,
समुद्धत मन सदा हो स्थिर,
पार कर जीवन निरन्तर
रहे बहती भक्ति-वरुणा।[2]

○ निराला के प्रगतिशील काव्य मे व्यग्य-हास्य का आधार

सन् १९३५-३६ के पश्चात निराला की काव्य-रचना मे एक ओर हास्य-व्यग्य की प्रधानता हो गई है और दूसरी ओर अत्यन्त भावात्मक आत्मनिवेदनपरक गीतो का निर्माण होने लगा है। ध्यान देने की बात यह है कि निराला की आरभिक कविताओ म प्रगतिशीलता और क्रान्ति के तत्व व्यग्यात्मक शैली म व्यक्त नहीं हुए हैं। इस अध्याय के आरभ म हमने उनके प्रगतिशील काव्य की जो पृष्ठभूमि दी है, उस दौर की अधिकाश कवितायें, प्रवाह और उद्वेग के माध्यम से प्रगतिशील तत्वो

---

१ निराला आराधना, गीत—७२ (रचना–१५–१२–५२)

२ निराला . अणिमा, पृ०१४ (रचना–३९)

को भी व्यक्त करती है। हम उनके 'बादलराग' की रचनाओ को ले, अथवा नारी स्वातन्त्र्य सम्बन्धी 'वनवेला' जैसी कृतियो को लें, तो देखेंगे कि उनमे सामाजिक प्रगतिशीलता की भावना कम नही है, पर उनकी शैली व्यंग्यात्मक नही है। इसी प्रकार उनके आरम्भिक गीतो मे और उनके परवर्ती गीतो मे भी विषय की समानता रहते हुए भी भाव और शैली का अन्तर दिखाई देता है। उनके आरंभिक गीत अधिक उल्लासपूर्ण हैं, जब कि उनके परवर्ती गीत करुणा की छाया से समन्वित हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि निराला-काव्य का प्रथम युग अपनी मूल चेतना मे एक प्रकार का और उनका परवर्ती-काव्य दूसरे प्रकार का है। प्रगतिशील रचनाओ मे व्यग्य और हास्य के प्रयोग निराला की मन स्थिति के द्योतक हैं। आत्मविश्वास और ऊर्ध्वोन्मुखता के ओजस्वी स्वर व्यग्य और विनोद की अपेक्षा क्षीण ध्वनियो मे परिणत हो गये हैं। इस बदले हुए रूप को कुछ लोग निराला की यथार्थवादी प्रवृत्ति का आधार मानते है। वैसी स्थिति मे यह भी मानना पडेगा कि निराला की इस यथार्थोन्मुख प्रवृत्ति मे शक्तिमत्ता की कमी होगई है। कहा जा सकता है कि निराला के आरभिक काव्य मे आये हुए प्रगतिशील तत्व उनकी भावुकता के परिचायक हैं जब कि उनकी परवर्ती कविता मे व्यंग्य और हास्य के माध्यम से आई हुई सामाजिक और आर्थिक विषमताओ के चित्र अधिक अनुभवप्रवण हैं। यह तो सच है कि कवि क्रमश. आशा और आस्था की भूमि से हट कर अपने अनुभवो के आधार पर अधिक व्यावहारिक हो गया है और इसी व्यावहारिकता और मानसिक कटुता की परिचायक उनकी हास्य-व्यग्य की शैली है जो उसकी प्रगतिशील रचनाओं मे प्रयुक्त हुई है। यह भी सभव है कि निराला इन कविताओं द्वारा पाठको मे अधिक क्षोभ की भावना उत्पन्न करना चाहते हैं। इसीलिए व्यग्यो के विषाक्त अस्त्र का प्रयोग करते हैं। जो कुछ हो, इतना तो निश्चित है निराला के प्रगतिशील काव्य के इस उत्तरार्द्ध में सामाजिक अनुभवो की अधिक गहरी अनुभूति है। यद्यपि इनमे मुक्ति का वह स्वर नही, जो उनकी आरम्भिक कविताओ मे है।

प्रगतिशील काव्य की भाषा

राष्ट्र-गीतो और कतिपय अन्य सास्कृतिक रचनाओ को छोडकर निराला की अधिकाश प्रगतिशील कविता चलती हुई भाषा मे लिखी गई है। भावानुरूप भाषा के सिद्धात-मर्म को जानने वाले कवि निराला के लिए यह स्वाभाविक था कि वे हास्य-व्यग्य विनोद की शैली को अपनाने के पश्चात तदनुरूप भाषा का भी अनुसधान करते और यही उन्होंने किया भी। यह तो स्पष्ट है कि राष्ट्रीय उत्कर्ष के व्यंजक गीतो मे बोलचाल की भाषा काम नही दे सकती। परन्तु अन्य अवसरो पर जहा निराला किसी गभीर आधार को लेकर नहीं चल रहे, भाषा का यह सरल और सामान्य स्वरूप अधिकाधिक लोगो के पास पहुँचने मे सहायक भी हुआ है। निरालाजी की

'कुकुरमुत्ता' कविता अपनी भाषा की सफाई और रवानगी के कारण ही इतनी लोकप्रिय हुई है। संस्कृतनिष्ट भाषा के साथ मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग सम्भव नहीं होता। क्योंकि मुहावरे और लोकोक्तियां साधारण जन-समाज की वस्तुयें हैं, जो संस्कृत की गरिमा में अनुस्यूत नहीं हो सकतीं। काव्य में मुहावरों और लोकोक्तियों का चमत्कार स्वतः एक उपलब्धि है और निराला अपनी परवर्ती भाषा में इन्हें यथेष्ट मात्रा में ला सके हैं। कदाचित निराला का आदर्श हिन्दी के ऐसे स्वरूप का निर्माण करना था जो उर्दू के मुहावरेदार प्रयोगों से होड़ ले सके और इस कार्य में उन्हें आंशिक सफलता भी मिली है। अपनी परवर्ती काव्य-रचना में इस प्रकार के भाषा-प्रयोग के द्वारा भी निरालाजी काव्य को यथार्थोन्मुख साँचे में ढाल सके हैं।

नवजागरण की भूमिका और निराला का प्रगतिशील काव्य : एक मूल्यांकन

निराला भारतीय नवजागरण के जागरूक कवि हैं। इनमें राष्ट्रीय आन्दोलन और पतनोन्मुख रूढ़िवादी परम्पराओं का विकासात्मक गतिचित्र दिखाई देता है जिसमें प्रथम की स्वीकृति और द्वितीय की अस्वीकृति दिखाई देती है। निराला के नवजागरणशील साहित्य में आस्था है, परन्तु वह आस्था संघर्षरत विकासवाद के सहारे अपनाई गई है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से निराला का प्रगतिवाद भारतीय समाज की असहाय आस्था के बल पर खड़ा हुआ है। निराला ने प्रगतिवाद को नवजागरण की समस्या के रूप में स्वीकार किया है। उसकी बन्धन से बाधकर समाजवादी या मार्क्सवादी प्रचार नहीं किया है।

शिवमंगलसिंह 'सुमन' के 'हिल्लोल', 'जीवन के गान', प्रलय-सृजन', काव्य-संग्रहों में पूँजीवादी अर्थनीति की विषम वेदना है। परन्तु इनमें निराला की भांति विषय-विस्तार और सामाजिक व्यंग्यात्मकता नहीं। निराला समाज के व्याख्याता के रूप में सामने आते हैं। केदारनाथ अग्रवाल की रोमानी प्रगतिशीलता में कोई महान योजना नहीं दिखाई देती। उनकी कुछ कवितायें, मजदूरों की अवस्थाओं का यथार्थ चित्र उपस्थित करती हैं। नागार्जुन तो एकदम कम्यूनिस्ट धरातल से काव्य-प्रयोग करते हैं, जिनमें लक्ष्य की एकाग्रता है। लक्ष्य तक पहुँचने की विविध-विस्तार योजना नहीं, जो निराला के प्रगतिवादी काव्य में दिखाई देती है। नरेंद्र शर्मा, अंचल, रामविलास शर्मा आदि प्रगतिवादी कवि समाजवादी प्रचार को ध्यान में रखकर कवितायें सजोये रहे हैं। इनमें निराला की काव्यदृष्टि का विस्तार नहीं है। निराला का प्रगतिवाद, सामाजिक विविधता का सजीव व्यपरूप है। हिन्दी के प्रगतिवादी कवियों में निराला का स्थान इसी कारण शीर्षस्थ है। क्योंकि उनमें राष्ट्रोत्थान, नारी-जागरण, जातीय गौरव तथा क्रांति के साथ-साथ यथातथ्य स्थितियों का रूप-निर्देशन

किया गया है। समस्यानुकूल भाषा-प्रयोग तथा विषयानुकूल पदावली का व्यवहार निराला के इस प्रकार के काव्य मे मिलता है। ध्वस का अर्थ यदि बन्धन-मुक्ति से लिया जाय, नये निर्माण के लक्ष्य से लिया जाय, तो निराला का प्रगतिशील दृष्टि-कोण अधिक व्यापक है। प्रगतिवादी काव्य के बारे मे जार्ज थाम्पसन ने ठीक ही कहा है—

"मुक्त मानव-समाज के ये नये गीत अपने स्वरूप मे राष्ट्रीय भावना-सपन्न होगे। उनका वस्तुपक्ष समाजवादी होगा। वे अनेक राष्ट्रो के समवेत स्वर मे मनुष्य-मात्र के उस आल्हाद का गान करेंगे जो रचनात्मक श्रम से उपलब्ध होता है। यह नई परिवर्तित वस्तु अपने मे इतनी गभीर होगी कि उसके आधार पर बनी हुई कविता नये प्रकार की कविता कही जा सकेगी। ठीक उस तरह जैसे सभ्य समाज का कवि किसी मसीहा या जादूगर से भिन्न होता है, क्योकि वह सत्य और कल्पना के सम्बन्धो को समझता है। उसी प्रकार नवीन समाजवादी कवि वर्गीय समाज के कवि से इस अर्थ मे भिन्न होगा कि वह अपनी प्रेरणा के उन स्रोतो को समझ सकेगा जो सामाजिक जीवन से नि:सृत है। अपने अन्य मानव-साथियो के साथ वह ससार को बदलने का लक्ष्य पूरा करेगा और जैसे-जैसे यह कार्य आगे बढेगा, वैसे-वैसे कवि मे और सामाजिको मे अन्तर मिटता जायगा और अत मे सारे मनुष्य कवि बन जायेंगे।"[1]

जब सब लोग सम्पन्नता के गीत गायेंगे, तब प्रगतिशील काव्य की सौंदर्य-दृष्टि का सामान्य रूप या सर्वजन-सुलभ रूप दिखाई देगा। इस प्रकार की काव्य-प्रक्रिया मे वर्ग-रहित समाज की प्रतिबिम्ब योजना रहेगी, जिसकी प्रभावोत्पादकता में

---

1 "These new songs of the liverated peoples of the earth will be national in form, socialist in content. They will express in a chorus of many nations men's common joy in creative labour. This change of content is so profound that the poetry it produces will be a new kind of poetry. Just as the civilised poet differs from the prophet or magician in being conscious of his illusion as an illusion, so the socialist poet differs from the poet of class-society in his understanding of the social process from which his inspiration springs. Together with his fellow men he works to transform the world, and, as that work progresses, the distinction between him and them will disappear and all men will be poets again."

—George Thompson : Marxism and Poetry, P. 68.

एक तटस्थता भी आ जायगी। अभी वह समय नहीं आया है, इसलिये निराला के प्रगतिशील स्वरों में व्यंग्य और वेदना का प्राधान्य है।

निष्कर्षत. निराला के प्रगतिशील साहित्य में सामाजिक विषमता को विस्तार में, जनवादी प्रभाव-क्षमता के विद्रोहशील कार्यरूप में, देखा गया है। वह हिन्दी-प्रदेश की जनता-जनार्दन का यथार्थरूप लक्षित करता है; साथ ही टीका-टिप्पणी से भरी दृष्टि में सत्य की अप्रत्यक्ष इच्छा को भी व्यक्त करता है जो अर्थ की दृष्टि से समानता और मानवता की दृष्टि से भ्रातृत्व-भाव की पूरक है।

७

निराला की प्रयोगशील कविताओं का अध्ययन

प्रयोगशीलता का अर्थ

इस अध्याय मे प्रयोगशील शब्द का प्रयोग हम एक विशेष अर्थ मे कर रहे है। हिन्दी की नवीनतम कविता मे शैली, शिल्प और अभिव्यजना के कुछ बहुत ही नए और अनोखे प्रकार अपनाए जा रहे हैं। इस नयी कविता को प्रयोगशील या प्रयोगवादी कविता कहते हैं। काव्य मे प्रयोगशीलता से इन दिनो अभिव्यक्ति के अनोखेपन का आशय लिया जाता है। जिस काव्यकृति को पढकर हमारा ध्यान उसके भावोत्कर्ष की ओर न जाकर शैलीगत चमत्कारो की ओर चला जाय, उसे ही प्रयोगशील कृति कहा जा सकता है। प्रयोगशीलता वस्तु की नही होती, उसके अभिव्यंजन की होती है। इसका यह आशय भी लिया जा सकता है कि प्रयोगशील रचना मे कथ्य की अपेक्षा कथनशैली प्रमुख हुआ करती है।

साहित्यिक इतिहास मे ऐसी घडियां आती हैं, जब लेखक और कविगण चमत्कारपूर्ण प्रकाशन को ही काव्य का प्रधान आकर्षण मानने लगते हैं। उनके लिये इस बात का महत्व नही होता कि वे क्या कहना चाहते हैं ? शायद कहने के लिये उनके पास अधिक कुछ रहता भी नही। उनका ध्यान इस बात पर रहता है कि वे किस प्रकार अपनी बात कहते है। इसी कारण उनकी काव्य-रचना कथन-प्रकारो का वैचित्र्य लेकर आती है। सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि प्रयोगशील काव्य वह है जिसमे रस की अपेक्षा अलकार को, भाव की अपेक्षा प्रकाशन को, रमणीयता की अपेक्षा चमत्कार को प्रधानता दी गई है।

हिन्दी मे सबसे प्रथम प्रयोगशील कवि केशवदास कहे जा सकते हैं। इन्हे इस बात की चिंता नही थी कि वे रामकथा के मार्मिक अशो को लेकर 'रामचन्द्रिका' का निर्माण करें। उनके लिए कथा के सभी अश एक-से हैं, यदि वे उसमें विलक्षण उक्ति की योजना कर सकें। उनके लिये वास्तविक चरित्र-सृष्टि की भी विशेष उपयोगिता नही है। उनके महाकाव्य 'रामचन्द्रिका' मे किसी चरित्र विशेष का निर्माण नही हुआ, बल्कि अनेक स्थलो पर अस्वाभाविक रूप से चरित्र-रेखाएं अकित की गयीं। वन जाते हुए राम के द्वारा अपनी माताओ को दी गई नैतिक शिक्षा और

उपदेश अस्वाभाविक वस्तु चित्रण का एक अच्छा उदाहरण है, परन्तु ऐसे चित्रणों से उनका काव्य भरा पडा है। केशवदास की प्रयोगशीलता इस बात में है कि वे अपने पांडित्य के प्रदर्शनार्थ कृत्रिम श्लोकों और चमत्कार-प्रधान अलंकारों को बिना औचित्य का विचार किए ला-ला कर रखते जाते हैं। ऐसे कवि की रचना को पाठक किस दृष्टि से देखते हैं ? यह तो निश्चय है कि उन्हें काव्य-रसास्वाद की स्थितियां और अवसर मिलते ही नहीं। हां काव्य-विनोद, बुद्धि-कौशल और पांडित्य-परिचय के अवसर बार-बार मिलते हैं। पुरानी शब्दावली में कहें, तो कह सकते हैं कि ऐसे कवियों का कलापक्ष उनके वस्तु या भाव-पक्ष पर हावी हो जाता है।

केशव के पश्चात् हिन्दी के रीतिकाल के अनेकानेक कवि छोटे-छोटे मुक्तकों में, अभिव्यंजना का चमत्कार भरने में व्यस्त रहे हैं। कुछ समीक्षक इन कवियों की रचनाओं को रसात्मक भी कहा करते हैं, पर यहां रस शब्द का प्रयोग एक हल्के अर्थ में किया गया मानना पड़ता है। दो या चार पंक्तियों की स्फुट रचना में रसात्मकता लाना संभव ही नहीं है। विशेषकर जब ऐसी रचनाओं का लक्ष्य दरबार के रसिकों से वाहवाही प्राप्त करना हो। बिहारी के अधिकांश दोहे छोटी सीमा में संपूर्ण चित्र देने का कौशल तो प्रकट करते हैं, परन्तु इस कारण उन्हें रसात्मक कहना काव्यसंवेदन के प्रति हल्की दृष्टि रखना ही कहा जायगा। रीतिकालीन अधिकांश कवियों की काव्य-कृतियां शैलीप्रधान होने के कारण प्रयोगशील ही कही जायेंगी।

संस्कृत के काव्यशास्त्र की दृष्टि से देखा जाय, तो वहां काव्य के तीन प्रमुख भेद माने गये हैं—(१) ध्वनि काव्य, (२) गुणीभूत व्यंग और चित्रकाव्य। इनमें से चित्रकाव्य तो पूर्णतः चमत्कार और बुद्धि-कौशल पर आधारित है। संस्कृत का प्रहेलिका साहित्य, हिन्दी के कूटपद और उलटवासियाँ एक प्रकार के चित्रकाव्य ही हैं। गुणीभूत रचनाओं में भी भावात्मक प्रेरणा की अपेक्षा बौद्धिक तत्वों की विशिष्टता रहा करती है। इसी कारण किसी भाव-विशेष की व्यंजना गौण रूप से हो पाती है और कविता अपनी रसात्मक भूमि से वंचित रह जाती है। यदि इस शास्त्रीय दृष्टि से देखा जाय तो ध्वन्यात्मक काव्य को छोड़कर शेष दोनों प्रकार के काव्य चमत्कारप्रधान, बौद्धिक या प्रयोगशील ही कहे जायगे। इस प्रकार प्रयोगशीलता का अर्थ शास्त्रीय भूमिका पर यह होगा कि जो कृतियां प्रमुखतः भावात्मक नहीं हैं, तथा जिनमें उक्ति कौशल, बौद्धिकचमत्कार और क्लिष्ट कल्पनाओं की प्रचुरता है वे किसी न किसी रूप में प्रयोगशील रचनायें हैं।

वर्तमान युग में प्रयोगशीलता का एक वाद ही चल निकला, जिसे प्रयोगवाद कहा जाता है। इसके अभिभावक भी यह स्वीकार करते हैं कि आज का कवि अपनी उलझी हुई संवेदनाओं को, जिनके मूल में अनेक प्रकार की मौन-वर्जनायें रहा करती हैं, प्रकाशित करने के लिए अधूरे वाक्यांशों, सीधी टेढ़ी लकीरों, उल्टे-सीधे मुद्रणों के

माध्यम से अपने वाक्यो में प्रेषणीयता लाने का जो उपक्रम करते है, वही उनके प्रयोग हैं और वही उनकी प्रयोगशील कविता है ।[1]

इससे यह सूचित होता है कि प्रयोगशीलता, वास्तव मे शिल्प और अभिव्यंजना की वस्तु है । उलझी हुई सवेदनाओ को प्रकाशित करने के लिए ये शिल्पगत प्रयोग किये जाते हैं । उलझी हुई सवेदनायें भी शास्त्रीय विवेचन की दृष्टि से अधूरी, अपूर्ण या अविकसित सवेदनायें हैं और वह वास्तव मे काव्य सवेदना नही कही जा सकती । उलझी सवेदनाओ का सारा काव्य गुणीभूत व्यग्य का काव्य ही कहा जायेगा ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि साहित्यिक प्रयोगशीलता या प्रयोगवादिता के विषय मे प्राचीन और नवीन मतो मे कोई विशेष अन्तर नही है । कला मे जो कुछ प्रयत्न साध्य है, अस्पष्ट है । चाहे वह वस्तु पक्ष की अस्पष्टता हो या शैली की अस्पष्टता हो, प्रयोगशील ही कहा जायेगा । प्रयोगों के द्वारा उलझी सवेदनाओ को प्रेषणीय बनाने का प्रयत्न भी प्रयोगमात्र ही है, क्योकि उलझी सवेदनायें कवि की स्वाभाविक कल्पना और उसकी मौलिक भाव-चेतना मे बाधास्वरूप ही रहेगी और ऐसी मन स्थिति मे वह वास्तविक काव्य-रचना कर ही नही सकेगा । ऐसे अवसर पर उसे जिन कृत्रिम साधनो का प्रयोग करना पडता है, वे निश्चय ही बौद्धिक प्रयोग हैं और इसलिए अकाव्यात्मक हैं ।

आधुनिक प्रयोगशील कवियों का एक और भी दल है जो अपने को वास्तविक प्रयोगवादी मानता है । ये काव्य मे प्रयोगों को साधन नही, साध्य मानते हैं । और इस प्रकार शिल्प को ही काव्य का सर्वस्व घोषित करते हैं । अज्ञेय जैसे प्रयोगशील विचारक प्रयोगो को केवल साधन मानते हैं । किन्तु नकेनवादी लेखको ने इस दृष्टि का विरोध किया है और यह सस्थापित करना चाहा है कि काव्य-व्यापार वास्तव मे प्रयोगो का ही व्यापार है । आधुनिक प्रयोगशीलता के इन दोनो सम्प्रदायो मे ऊपरी

---

१ प्रयोगवाद के एक पुरस्कर्त्ता अज्ञेयजी का वक्तव्य है—"प्रयोग सभी कालो के कवियों ने किये हैं, यद्यपि किसी एक काल मे किसी विशेष दिशा मे प्रयोग करने की प्रवृति होना स्वाभाविक ही है । किन्तु कवि क्रमश अनुभव करता गया है कि जिन क्षेत्रो मे प्रयोग हुए हैं, उनसे आगे बढकर अब उन क्षेत्रो का अन्वेषण करना चाहिए जिन्हे अभी नही छुआ गया है या जिनको अभेद्य मान लिया गया है । भाषा को अपर्याप्त पाकर विराम सकेतो से, अको और सीधी तिरछी लकीरो से, छोटे-बडे टाइप से, सीधे या उलटे अक्षरो से, लोगो और स्थानो के नामो से, अधूरे वाक्यो से, सभी प्रकार के इतर साधनो से कवि उद्योग करने लगा, कि अपनी उलझी हुई सवेदना की दृष्टि को पाठको तक अक्षुण्ण पहुचा सके ।"

—आत्मनेपद -(पृ० ३६)

अन्तर चाहे जो कुछ हो, पर मूलतः ये दोनों सम्प्रदाय काव्य के शिल्पपक्ष और उसकी अभिव्यंजना सम्बन्धी योजनाओं को ही काव्य का प्रमुख आधार मानते हैं।

● निराला-काव्य की प्रयोगशीलता

जब हम निराला-काव्य की प्रयोगशीलता का विचार करते हैं, तब हमारे समक्ष काव्य-निर्माण की वे रूपरेखायें प्रस्तुत होती हैं, जो प्रयोगशीलता के संकीर्ण अर्थ में समाहित नहीं हो सकती। ऊपर हमने प्रयोगशील काव्य में शिल्पगत विशेषता को केन्द्रीय स्थान दिया है। पर निराला का प्रयोगशील काव्य केवल शिल्प की भूमिका पर नहीं परखा जा सकता। न हम उसे अभिव्यंजना या शैली प्रधान-काव्य के रूप में देख सकते हैं।

निराला काव्य की क्रांतिकारी भूमिका, में प्रखर भावोद्वेगों का बाहुल्य है। ऐसी स्थिति में निराला-काव्य के प्रयोग उनके उद्दाम व्यक्तित्व और भावचेतना से संबद्ध हो जाते हैं। निराला का सबसे पहला प्रयोग तो मुक्तछन्द ही है। मुक्तछन्द वास्तव में अभिव्यंजना की शैली मात्र नहीं है। वह निराला के काव्य-व्यक्तित्व और भावावेग का वाहक साधन है। अतएव यदि हम मुक्तछन्द को निरालाकाव्य का प्रयोगशील पक्ष मानते है, और उस प्रयोगशीलता के अन्तर्गत मुक्तछन्द के रूपात्मक वैशिष्टो की जाच करते हैं, तो हमें वह जांच मूलतः निराला के भावपक्ष को केन्द्र में रख कर ही करनी पड़ेगी। इस प्रकार निराला की प्रयोगशीलता काव्य के शैली पक्ष का अतिक्रमण करती है और उसके वस्तुपक्ष में केन्द्रित हो जाती है। यह निराला का प्रथम काव्यप्रयोग है।

निरालाकाव्य के द्वितीय प्रयोग उनके सगीतात्मक गेय पद है, जिनमे उन्होंने सगीत और काव्यकला का अप्रतिम सयोग कराया है यदि हम एक दृष्टि से देखें, तो काव्य रचना मे सगीत भी एक प्रयोग ही है। और उस सगीत की सिद्धि के लिये जिन गेय छन्दो का आविष्कार किया गया, वे भी निराला के नये प्रयोग हैं। परन्तु प्रश्न यह है कि इन गेय गीतो मे प्रयोगात्मक कला के निर्देशन प्रधान हैं, अथवा वे गीतो के भावात्मक सौंदर्य को प्रकट करने के साधनमात्र हैं। इन गीतो मे जो बिंब योजनायें हैं, वे प्रमुख है या इन बिम्बो को सयोजित करने वाला शिल्प प्रधान है ? निराला-काव्य के अनुशीलन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं, कि निराला की शिल्पात्मक प्रयोगशीलता उनके काव्य के वस्तु पक्ष का अथवा भावपक्ष का अनिवार्य प्रतिफलन है। उनके शिल्प को स्वतत्र रूप से परखना सभव नही। जिस प्रकार कतिपय भावो की प्रखरता और प्रवेग को व्यक्त करने के लिए निराला ने मुक्तछन्दो का प्रयोग किया है, उसी प्रकार कतिपय भावो के माधुर्य को प्रत्यक्ष करने के लिए उन्होने सगीत कला का सहारा लिया।

भाषा की भूमिका पर भी निराला प्रयोगशील रहे हैं। उन्होने अपने काव्य के अनुरूप कथन-प्रणालियो को नये-नये रूप दिये हैं। शृगारी गीतो मे उनकी भाषा

सामासिक और अर्थगाभीर्य से भरी हुई है। परन्तु आगे चलकर उनकी गीत भाषा मे अधिक सरलता और प्रासादिकता आ गई है। इसी प्रकार उनकी मुक्तछन्द की भाषा जहाँ 'बादलराग' जैसी रचनाओ मे सस्कृत शब्दावली से युक्त होकर मद्र गम्भीर घोष की सृष्टि करती है वही 'शिवाजी का पत्र' जैसी रचनाओ मे वार्तालाप की भाषा के अधिक निकट पहुँच जाती है।

इस प्रकार निराला-काव्य के अन्य प्रयोगो पर दृष्टि डालने से हमे यही प्रतीत होता है कि उनकी विविध प्रकार की शैलीगत प्रयोगशीलता मार्मिक होती हुई भी स्वतत्र शिल्प का उदाहरण नही है। वह एक प्रकार से निराला-काव्य-प्रयोग का अभिन्न अग बन कर आई है। रीतिकालीन कवियो अथवा आधुनिक प्रयोगशील कवियो की अभिव्यजनायें जिन चमत्कारो पर आश्रित हैं, उनसे निराला की काव्याभिव्यजना बहुत कुछ भिन्न है।

परन्तु निराला के इन मौलिक प्रयोगो से आगे बढ कर जब हम उनके परवर्ती काव्य की भूमिका पर पहुँचते है, तब हमे यह प्रतीत होता है, कि निराला की काव्य-रचना मे क्रमश अभिव्यजना के नये चमत्कार आने लगे हैं और उनकी परवर्ती रचना मे प्रयोगशीलता की मात्रा बढने लगी है। हम तो यहाँ तक कह सकते है कि निराला के पूर्ववर्ती काव्य और उनके परवर्ती काव्य का एक मुख्य भेदक उपकरण उनकी यह नई प्रयोगशीलता ही है। सन १९३७-३८ के पश्चात निराला-काव्य मे हास्य और व्यग की प्रवृत्तियाँ बढने लगी और ऐसी प्रवृत्तियो को आकार देने के लिए निरालाजी ने भाषा और शैलीगत नये-नये प्रयोगो को अपनाया। निराला की परवर्ती रचनायें, इसीलिये शैलीगत चमत्कारो से अधिक सम्पन्न है।

'राम की शक्ति पूजा' जैसी काव्यकृति मे जो कृत्रिम पदावली आई है, अथवा उनके 'तुलसीदास' मे जो आयास साध्य छन्द आये है, वही से निराला की काव्यकला एक नया मोड लेती प्रतीत होती है और उसके पश्चात उनकी समस्त काव्यरचनाओ मे विभिन्न प्रकार के प्रयोगो की स्थिति दिखलाई देने लगती है। निराला-काव्य की प्रयोगशीलता से हमारा आशय उनकी परवर्ती रचनाओ के उस चमत्कार-प्रधान पक्ष से है, जिनमे वे भाषा, छन्द, और काव्य-शिल्प के अनेक सचेत प्रयोग कर रहे थे।

निराला की प्रयोगशील कविता से आशय उनकी शैली की विशेषता, मनोविज्ञान के तत्व, शब्द प्रयोग, भाषारूपो और अभिव्यजना के नये चमत्कारो से है। उनमे कुछ गद्यात्मक कविता, यथार्थ की शैली, बिम्बात्मक चित्रण भी हैं। कुछ लोग निराला की रचनाओ मे उनकी मानसिक विकृति के कारण जो अस्पष्टता आ गई है, उसे ही प्रयोग मानने लगे हैं। विशेषावस्था मे अतिकाल्पनिक सृष्टियाँ (फैंटेसी) जैसे मानसरोवर, कैलास यात्रा, इसे अति यथार्थवाद कहते हैं। इसे यदि हम प्रयोगवादी

रचना मानें तो एक विशेष अर्थ मे ही वह प्रयोगवादी हो सकती है। 'कैलास मे शरद' जैसी रचनाओ मे एक अतिकल्पना या फैन्टेसी ही है। हम कह सकते हैं कि वे यहाँ एक असबद्ध भूमिका पर चले गये हैं। 'बेला', 'नये पत्ते' की अधिकाश रचनायें शैली की दृष्टि से प्रयोग हैं। विषय की दृष्टि से, चित्रण की दृष्टि से, शैली की दृष्टि से, तथा भाषा की दृष्टि से हम इन प्रयोगो को देखना होगा। स्वय कुकुरमुत्ता एक प्रयोग है। विषय की दृष्टि से इसम जो अतिरजित कल्पनायें हैं, वे अद्भुत प्रयोग हैं। विषय की अति काल्पनिकता, यथार्थ की प्रवृत्ति, गजल छन्दो का विधान, हास्य-विनोद के प्रयोग, व्यगात्मक प्रयोग आदि सब निराला प्रयोगो के भिन्न रूप हैं।

'बेला' की गजलें एक दूसरा प्रयोग है। यहाँ यथार्थ चित्रण, की प्रवृत्ति भी दिखाई देती है। 'नये पत्ते' मे 'कुत्ता भौंकने लगा', यह भी एक प्रयोग है तो 'अणिमा' मे 'सडक के किनारे दुकान है' भी एक प्रयोग है।

यहाँ हम निराला के प्रयोगात्मक काव्य को ले रहे हैं, जो हिन्दी की भावना-धारा और स्वय निराला की सामान्य रचनापद्धति से भिन्न प्रकार की चीज है। फिर भी कुछ तथ्य ऐसे हैं, जिसे हम विषय, भाषा आदि की भूमि पर प्रयोगात्मक पाते है। निराला की प्रयोगवादी काव्यदृष्टि उनकी पूर्ववर्ती-स्वच्छद योजना को विस्तार देती है, यथार्थ के धरातल का निर्माण करती है और उस निर्माण के स्वरूप की बहु-मुखी अभिव्यजना करती है।

● यथार्थवादी दृष्टि की स्वीकृति

यथार्थवादी काव्य दृष्टि मे निराला ने व्यक्तिवाद और समाजवाद दोनो को स्वीकार किया है। व्यक्तिवादी यथार्थ पक्ष की व्यजना, उनके विद्रोही व्यक्तित्व के अह रूप चित्रो तथा समाजवादी यथार्थ की व्यजना मे उनके विशाल-अनुभव का योगदान रहा है। दोनो ही प्रकार के विषयो मे कुरूपता पर व्यग्य, भद्देपन पर हास्य तथा दयनीयता दरिद्रता के कारणो पर प्रहार किया गया है। नित्यप्रति के बोलचाल के शब्दो का प्रयोग, उर्दू फारसी तथा अन्य लोकभाषी मुहावरो का प्रयोग, विषयो मे बौद्धिक समाधान खोजने के कारण छदगत गद्यात्मकता सी आ गई है। काव्यगत लयविधान, सगीत आदि उनके इस नये काव्य मे नही खोजे जा सकते। विषय के तारतम्य को भी खोजना सरल नहीं है। यह सब उपकरण नयी चेतना के सूचक हैं, जिनका प्रथम प्रयोग निराला ने किया। कृष्णदेवप्रसाद ने लिखा है—"हिन्दी वाले, जिन्हें नई रचना, नये ढग की आवश्यकता प्रतीत हो रही थी, इन लोगो की ओर आकृष्ट हुये। नवयुग की दागबेल निराला के पहले पड चुकी थी। नींव डालनी थी, दीवार उठानी थी, यद्यपि ऊपर के ढाचे की स्पष्ट रूपरेखा किसी के मन मे न थी।[१]" निराला ने इसको पूरा किया।

---

१ कृष्णदेव प्रसाद गौड साहित्य प्रवाह पृ०, १०३

एक अग्रेजी विद्वान जी० एस० फ्रेजर ने अपनी पुस्तक 'Vision and Rhetoric' मे प्रयोग के बारे मे कहा है—'भावो पर यह सीधा आक्रमण, लयो का यह साहसिक और व्यजनात्मक प्रयोग, बहुत सदर्भों का यह सतरगी निर्माण, बिंब प्रतीक की यह केन्द्रीय स्थिति कदाचित् इस शताब्दी की अग्रेजी कविता की प्रयोगवादी धारा के मुख्य अग हैं। प्रयोगवादी कविता यदि सफल है, तो हम उसे तत्काल स्वीकार कर लेंगे। परतु बौद्धिक माध्यम से उसको पूरी तरह समझ लेना कदापि सभव न होगा।"[1]

फ्रेजर का प्रयोगशील काव्य के सम्बन्ध मे यह वक्तव्य निराला के परवर्ती काव्य के सम्बन्ध मे पूरी तरह चरितार्थ होता है। इस वक्तव्य के द्वारा फ्रेजर ने अग्रेजी काव्य की प्रयोगशीलता का उल्लेख किया है। उसमे केवल शैलीगत बारीकियों का स्थान नही है, बल्कि काव्य के सपूर्ण विधान मे आने वाली नवीनता का है। फ्रेजर के अर्थ मे निराला हिन्दी के प्रमुख प्रयोगशील कवि ठहरते हैं।

निराला-प्रयोगों का विकासात्मक अध्ययन—अब हम निराला-काव्य के प्रयोगशील पक्ष का विकासात्मक अध्ययन करेंगे।

परिमल—उनके 'परिमल' काव्य-सग्रह मे छदगत नवीनता मिलती है। स्वच्छदतावादी विषय-योजना मे छदगत नवीनता हमे परिमल की अनेक कविताओ में प्राप्त होती है, यथा 'पहचाना', 'धारा', 'वनकुसुमों की शय्या', 'रास्ते के फूल से', 'आग्रह, 'बादल राग', 'जागो फिर एक बार', 'छत्रपति शिवाजी का पत्र', 'पचवटी प्रसग' इत्यादि—परन्तु इस शिल्पगत नवीनता मे लय की अन्विति और शब्दो की सगीतात्मकता है। निराला के पूर्ववर्ती काव्य की यह शिल्पगत नवीनता हिन्दी साहित्य की अनुपम देन कही जा सकती है।

अनामिका—इसके बाद 'अनामिका' काव्यसग्रह मे 'परिमल' की चेतना का विकास तथा परवर्ती बीज-सृष्टि का रूप दिखाई देने लगता है। यहा हम 'अनामिका' की नयी कविताओ को ही लेंगे जो निराला के परवर्ती काव्य की पृष्ठभूमि को सुदृढ़ करती हैं।

---

1 This direct attach on the emotions, two daringly-expressive use of rhythm, this elliptical effect of mutiple reference, this central reliance on the image-symbol are, it might seem, essential parts of what we mean by experimentalism in the English poetry of this century. Experimental poetry is poetry which, if it is successful, we apprehend immediate but which we may never perhaps, fully intellectually comprehend.'

—G. S. Fraser, Vision and Rhetoric (Experiment in Verse) P. 24

'तोड़ती पत्थर' यथार्थ दृष्टि और नई काव्य-शैली पर रचित लोकप्रिय रचना है। इसमें निम्न वर्ग की समस्या के वातावरण को खुले रूप में चित्रित किया गया है। छंद-योजना, शब्द-योजना तथा लय, संगीत का माधुर्य और सौन्दर्य यहां विषय की मर्मभेदी योजना में समाहित हो गया है। यहां आकर निरालाजी ने अपनी स्वच्छंदतावादी काव्य-प्रवृत्ति को सामाजिक यथार्थ से पहली बार जोड़ा है। यह हिन्दी की प्रगतिवादी काव्यशैली का निराला का दिया स्वच्छंदतावादी रूप है।

'वनबेला' कविता में नयी सामाजिक चेतना का स्वरूप मिलता है। 'वनबेला' वास्तव में अव्यवस्थित समाजरूपी वन की निर्द्वन्द्व बेला का स्वरूप है, जिसमें अनेकमुखी विषय-योजना को स्वतन्त्र शिल्प से सजाया गया है। इसमें स्वच्छंदतावादी, प्रतीकवादी, यथार्थवादी, प्रयोगवादी शैली का समागम है। सभी प्रकार की भाषाओं का प्रयोग हुआ है। यह निराला की नयी चेतना का प्रशस्त आरम्भ-बिन्दु है। नवीन द्वार है—

वर्ष का प्रथम,
पृथ्वी के उठे उरोज मंजु पर्वत निरूपम
किसलयों बंधे,
पिक-भ्रमर-गुंज भर मुखर प्राण रच रहे सधे
प्रणय के गान ''''' से आरम्भ होकर
फिर लगा सोचने यथा सूत्र—मैं भी होता
यदि राजपुत्र-मैं क्यों न सदा कलंक ढोता,
ये होते जितने विद्याधर मेरे अनुचर,
मैं देता कुछ, रख अधिक, किन्तु जितने पेपर,
सम्मिलित कण्ठ से गाते मेरी कीर्ति अमर
देश की नीति के मेरे पिता परम पंडित
एकाधिकार रखते भी धन पर, अविचल-चित
होते उग्रतर साम्यवादी, करते प्रचार
× × ×
हिन्दी-सम्मेलन भी न कभी पीछे को पग
रखता कि अटल साहित्य कहीं यह हो डगमग।
लार्ड के लाडलों को देता दावत, विहार
इस तरह खर्च केवल सहस्त्र-षट् मास-मास
× × ×
बिकती जो कौड़ी-मोल
यहाँ होगी कोई इस निर्जन में,
खोजें, यदि समतोल

देखता बडे, छोटे; असमान, समान वहा —
सब सुहृद वर्ग [1] आदि आदि,

'वनवेला' नयी सामाजिक चेतना का प्रयोग है। उसमे परपरागत और नवीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और कला-सम्बन्धी योजनाओ को समेटकर एक अभिनव काव्य-रचना प्रस्तुत की गयी है। इसमे निराला का सामाजिक वैषम्य मूलक व्यग्यात्मक स्वर पहली बार झकृत हुआ है। 'वनवेला' एक प्रयोग है, जिसकी विषययोजना व्यग्य मिश्रित है।

'वननेला एक शिल्प की रूपरेखा भी है जो बधन रहित है। 'खुला आसमान' गीत भी नयी शैली का प्रयोग है —

बहुत दिनो बाद खुला आसमान
निकली है धूप हुआ खुश जहान की भूमिका मे
चरने को चले ढोर··
लोग गाँव-गाव को चले [2]····

बाजार का चित्र, पनघट का चित्र आदि दिए गए हैं। विषय के तथ्य को नही, उसके रूप को ही लक्ष्य किया गया है। एक और कविता—'सेवा प्रारम्भ' है जो शिल्पगत प्रयोगशीलता को लक्ष्य किए हुए है। 'अनामिका' सग्रह के प्रयोगवादी चित्र स्वच्छदतावादी विषय-गरिमा पर रचित हैं। शिल्प की प्रयोगात्मकता तो है, पर विषय की उतनी नही। यद्यपि एक दो कविताएँ यथार्थवादी पद्धति पर लिखी मिल जाती हैं। डा० रामरतन भटनागर ने 'परिमल' और 'अनामिका' की तुलना करते हुए लिखा है 'परिमल' और 'अनामिका' की प्रौढ रचनाओ की तुलना करने मे पहली बात जो बडी सरलता से समझ मे आ जाती है, वह यह है कि इस नए काव्य-सग्रह मे निराला का स्वर बदल गया है। नये प्रयोग यहाँ भी है, विशेपकर छदो के क्षेत्र मे, परतु शैली और विचारधारा की दृष्टि से महान अन्तर हो गया है। कवि नि सदेह एक नए प्रकार की काव्य-सृष्टि कर रहा है।[3]

अणिमा—'अणिमा' निराला के गीतो का सग्रह है। 'अणिमा' के गीतो मे विषाद, दुख और करुणा की झलक मिलती है। इस सग्रह के काव्य का सौन्दर्य 'वेला', नये पते', 'कुकुरमुत्ता' की तुलना मे नही आका जा सकता। 'अणिमा' के गीतो मे रहस्यवादी और करुणामूलक स्वर, राष्ट्रीय और मानवतावादी स्वर सुनाई पडता है। प्रशस्तिमूलक कवितायें भी इसमे है जो कवि की आस्था को प्रकट करती हैं (परन्तु

---

१ निराला अनामिका की 'वनवेला' कविता से—पृ० ८३, (रचना ११-७-३७)
२ निराला-अनामिका की 'खुला आसमान' कविता से—पृ० १३८, (रचना ६-१-३८)
३ डा० रामरतन भटनागर—कवि निराला एक अध्ययन, पृ० १६०।

इसका अर्थ यह नही कि 'अणिमा' का आदर्श एकदम पुराना है।) नए पुराने का सम्बन्ध बतलाते हुए डा० भटनागर ने लिखा है 'अणिमा' मे अधिकाश पुराना है, परन्तु नया भी कम नहीं है। वास्तव मे 'अणिमा' सधि-काव्य है। छायावाद और प्रगतिवाद के दुराहे पर खडा कवि, अपने सारे साहित्यिक जीवन का लेखा-जोखा ले रहा है और नए मैदान मे उतर रहा है। अनेक कविताओं की भाषा-शैली, छद में पुरानापन है। परन्तु कुछ कविताओं मे कवि नये क्षेत्र म आ गया है। जहाँ प्रकृति के चित्र हैं, वह गद्य-मात्र हैं। किसी भी प्रकार के अलकार के प्रति कवि को मोह नही रह गया है।[१]

अणिमा की लम्बी कविताओ मे 'सहस्राब्दी' कविता निराला की सास्कृतिक-ऐतिहासिक दृष्टि का परिचय देती है। इसमे सास्कृतिक इतिहास का सजीव चित्र है और राष्ट्रीय सदेश भी। इसको परिमल की 'यमुना' और अनामिका की 'दिल्ली कविताओ के साथ रखा जा सकता है। 'मेरे घर के पश्चिम की ओर रहती है' 'तथा 'सडक के किनारे दुकान है' प्रयोगशैली के उदाहरण हैं। देखिये—

सडक के किनारे दुकान है
पान की, दूर एक्कावान है
घोडे की पीठ ठोकता हुआ,
पीतवस्त्र एक बच्चे को दुआ
दे रहा है, पीपल की डाल पर
कूक रही है कोयल, माल पर
बैलगाडी चली ही जा रही है।
बाईं तरफ चिडियाँ कुछ बैठी हैं,
खुली जडें सिरसे की ऐठी हैं।

प्रस्तुत कविता मे कथानक टुकडों का जोड है, जिसका प्रत्येक टुकडा स्वतत्र अस्तित्व रखता है। कवि जो देखता है, उसी का अभिधेय रूप सामने रख देता है। वह प्रगतिशील चित्र भी उपस्थित करता है।

एक और प्रयोगपद्धति पर लिखा व्यग है—

चूँकि यहाँ दाना है
इसीलिए दीन है दीवाना है।
लोग हैं, महफिल है,
नग्मे हैं, साज है, दिलदार है, और दिल है,

---

१ डा० रामरतन भटनागर—कवि निराला . एक अध्ययन, पृष्ठ १२३-२४।

शम्मा है, परवाना है,
चूंकि यहाँ दाना है।
× × ×
अम्मा है, बप्पा है,
झापड़ है और गोल गप्पा है,
नौजवान मामा है और बुड्ढा नाना है,
चूंकि यहाँ दाना है।

यहाँ दाने को लक्ष्य करके व्यंग किया गया है। इसकी विषय-वस्तु प्रगतिशील भावना की द्योतक है परन्तु इसकी निर्मिति नयी प्रयोगशीलता का पल्ला पकड़े हुए है। इसके प्रगतिशील पक्ष पर हमने अन्य अध्याय में प्रकाश डाला है, जहाँ हमने इसे पूंजीवादी सभ्यता का व्यंग्यात्मक चित्र कहा है।[1] इसकी प्रयोगशीलता का स्वरूप इसके चमत्कार में है। निरालाजी दीन या धर्म के साथ दीवाना या आवारा प्रेमी को भी जोड़ देते हैं। जहा पैसा है वहां महफिलें (नृत्यकला) हैं नग्मे (काव्यकला) हैं, साज (संगीतकला) है इन को 'अर्थाश्रित' बताया है। दिलदारी भी इसी से पैदा होती है। शम्मा और परवाना से निरालाजी का आशय प्रेमी और प्रेमिका से है। इन दोनों का समागम भी वही होता है, जहाँ दानाहै। यही नही; निरालाजी पारिवारिक संबंधों मे भी अर्थ की प्रमुखता देखते हैं। अम्मा और बप्पा (माताजी और पिताजी) भी तभी तक स्नेह, ममता और सम्मान के अधिकारी हैं जब तक वे भरे-पूरे घर की गृहस्थी चला सकते हैं। जब अम्मा और बप्पा की स्थिति ठीक है, तो नौजवान मामा और बुड्ढा नाना भी वहीं आकर रहते हैं। निरालाजी ने सामाजिक जीवन और व्यवहारो के यथार्थ-पक्ष पर बडा तीव्र प्रकाश डाला है और सारे संबंधों को अर्थाश्रित बताया है। इस कविता का अन्तिम प्रयोग 'झापड़ है,' 'गोलगप्पा है' और भी विचित्र है। इसका आशय यह जान पडता है कि पैसा होने पर ही झापड़ लगाने का भी अधिकार प्राप्त होता है और पैसे वाला व्यक्ति ही गोलगप्पा खिलाकर लोगों को संतुष्ट कर सकता है, यद्यपि इस प्रयोगशील रचना में व्यंजना की शक्ति को आवश्यकता से अधिक खीचा गया है, परन्तु कदाचित इस प्रकार को खीचन्तान के बिना यह कविता बनती ही नही, जिसे हम प्रयोगशील नाम से जानते हैं।

७ अणिमा के प्रयोग की विशेषतायें

'अणिमा' सग्रह मे कवि के अन्तःस्पर्श को व्यजना हुई है। साथ ही उसका आदर से पूर्ण श्रद्धापरक भाव भी प्रशस्तिमूलक कविताओं मे व्यक्त हुआ है। फिर भी कवि ने कतिपय प्रयोगात्मक कविताओ को इसमे सकलित किया है जो यथातथ्य वर्णन को प्रमुखता देती हैं।

---

१ देखिए—इस प्रबन्ध का अध्याय ६, प्रगतिशील कविताओं का अध्ययन-पृ० १३६

● कुकुरमुत्ता

निराला की सर्वाधिक लोकप्रिय नयीदृष्टि 'कुकुरमुत्ता' है। विद्वानो ने इसे एक साथ प्रगतिवादी और प्रयोगवादी सावित किया है। कुकुरमुत्ता सर्वहारा के वातावरण का प्रतीक है, जिसकी अपनी कोई सस्कृति नही है। निराला ने उसके चरित्र-चित्रण मे निम्नवर्गीय स्वाभाविकता को बनाये रखने का पूरा प्रयत्न किया है। 'कुकुरमुत्ता' प्रगतिवादी विषयवस्तु मे नयी काव्य चेतना का परिचायक है। वह हिन्दी की सस्कृति का बीज है जो साम्राज्यवादी व्यवस्था का प्रतिरोध करता है। 'कुकुरमुत्ता' निराला के सामाजिक आदर्श का वह केन्द्र बिन्दु है जिसमे तत्कालीन वर्गीय दृष्टियाँ अपने सही रूप का इजहार करती हैं। 'कुकुरमुत्ता' निराला की परवर्ती काव्य-प्रतिभा की सशक्त-सर्जना, उनकी उर्वर बुद्धि की प्रशस्त समस्या तथा उनके विकासशील व्यक्तित्व की अनुपम प्रदक्षिणा है। नयी कविता के विषय और शिल्प को लेकर 'कुकुरमुत्ता' का हिन्दी साहित्य मे अभिनव स्वागत हुआ है। आरम्भ से अन्त तक इसकी गद्यात्मक काव्य पक्तियो मे विषय के बिखराव को एक लक्ष्य से जोड दिया गया है।

विषय का बिखराव और नयी शिल्प का प्रयोग:–(१) अभिधेय चित्रो के द्वारा, जिनमें नामावली गिनाई गई है, फूलों की किस्मे, फलो के नाम आदि। (२) 'कुकुरमुत्ता' का गुलाब पर व्यग्य और उसकी अशिष्ट फटकार, गुलाब को सबोधित करते हुये 'कुकुरमुत्ता' कहता है–

हाथ जिसके तू लगा
पैर सर पर रखकर, वह पीछे को भगा
जानिब औरत की लड़ाई छोड कर
टट्टू जैसे तबेले को तोडकर
शाहों, राजों, अमीरों का प्यारा, –(पृ० ३)
× × ×

'कुकुरमुत्ता' की अपनी जो तहज़ीब है– वह है। वह स्वय अपनी प्रशस्ति मे गुलाब से कहता है–

तू है नकली मैं हूँ मौलिक
तू है बकरा मैं हूँ कौलिक –(पृ० ४)
+ × ×
चीन मैं मेरी नकल, छाता बना
छत्र भारत का वही, कैसा तना, –(पृ० ५)
× × ×
विष्णु का मैं ही सुदर्शन चक्र हूँ
काम दुनियाँ में पड़ा जो वक्र हूँ

उलट दे, मैं ही जसोदा की मथानी
और भी लम्बी कहानी
मैं कुकुरमुत्ता हूँ
पर बेनज़ोइन वैसे
बने दर्शन-शास्त्र जैसे
ओमफलस और ब्रह्मावर्त,
वैसे ही दुनिया के गोले और पर्त
जैसे सिकुडन और साडी.... —(पृ० ६-७)

कुकुरमुत्ता अपनी बडाई म बहुरूपियापन झलकाता है। मानो युग-युग से तृषित-आत्मा को कुछ कहने का अवसर मिला हो और बिना-सोचे समझे ससार भर के देखे-दिखाये ज्ञान को अपना ही समझ कर कह रहा हो। कुकुरमुत्ता सामाजिक चेतना का उन्माद है, जो मानव जाति की युग-युगीन तहजीबो-तमुद्दन पर व्यग्य करता है।

सासाधिना चल रही जितनी तरह
देख, सबमे लगी मेरी ही गिरह
× × ×
कत्थक हो या कथकली या बालडान्स
क्लियोपेट्रा, कमल भौंरा, कोई रोमास,
बहेलिया हो, मोर हो, मनिपुरी, गरबा
पैर, माझा, हाथ, गरदन, भौंहे मटका,
नाच अफ्रीकन हो या योरोपियन
सब मे मेरी ही गढन। —(पृ० ८-९)

आगे कहता है, 'दुनिया' म सबने मुझी से रस चुराया। ससार-चेतना के आनंद का मूलरूप कुकुरमुत्ता है।

मुझी मे गोते लगाये आदि कवि, व्यास ने
मुझ से पोये निकाले भास-कलिदास ने
× × ×
कही का रोडा कही का लिया पत्थर
टी० एस० इलियट ने जैसे दे मारा,
पढने वालो ने जिगर पर हाथ रख कर
कहा, "कैसा लिख दिया ससार सारा". —(पृ० १०)

कथानक के विकास मे गोली (मालिन की लडकी) और बहार (नवाब की लडकी का सहयोग होता है। दोनो ही बाग मे आकर उसकी शोभा देखती हैं और 'कुकुरमुत्ते' को कबाब बनाने के निमित्त गोली तोड लाती है। कबाब बनता है।

बहार खाकर बहुत लजीज बतलाती है। अपने अब्बा मियाँ नवाब से उसकी तहरीर करती है। अब्बा मियाँ मालियों को हुक्म देते हैं कि 'कुकुरमुत्ता' लाओ। माली जवाब में कहता है... हुजूर।

> कुकुरमुत्ता अब नहीं रहा मजूर
> अर्ज हो, रहे हैं अब सिर्फ गुलाब। —(पृ० २४)

माली का यह उत्तर सुनकर नवाब गुस्से से लाल-पीले होकर क्या कहते हैं, देखिये– कहा,

> चल गुलाब जहाँ थे, उगा,
> सबके साथ हम भी चाहते हैं अब कुकुरमुत्ता।
> माली ने कहा, "मुआफ करें खता,
> कुकुरमुत्ता उगाया नहीं उगता।" —(पृ० २४)

डा० भटनागर ने 'कुकुरमुत्ता' का स्थान बताते हुए कहा है "निराला के छायावाद-काव्य में जो स्थान 'जूही की कली' का है। वही स्थान उनकी नई कविताओं में 'कुकुरमुत्ता' को मिलना चाहिए।" आगे कहते हैं, "यह नई कविता का आदि काव्य है। यह गद्यमय सजीव व्यग्य है। यह युग की नवीन भाषा में युग के अनुकूल विचार है। निराला का यह नया काव्य अपने ही काव्य पर एक तीखे व्यग्य के रूप में हमारे सामने आता है।"[1]

प्रयोगवादी रचनाओं का यह विशद रूप हिन्दीसाहित्य को नया-नया सा था। क्योंकि छायावाद और प्रगतिवाद की दो योजनाओं के बीच इसका स्वरूप निर्मित हुआ था। निराला की इस प्रयोगदृष्टि का मूल्यांकन इस प्रकार के काव्य-हेतुओं और काव्य-रूपों को लक्ष्य करके किया जा सकता है। प्रयोगवादी कवि निराला अपनी प्रतिभा को क्रांतिकारी वातावरण से जोड़कर जिस जनवादी साहित्य की सृष्टि करते हैं, वह रूप वैभव में भी लोक भाषा से सज्जित है।

बेला—'बेला' काव्यसंग्रह निराला की उर्दू-गजल की शैली में नये विषम प्रयोगों को सामने लाता है। बेला का आगमन निराला के साहित्यविकास में एक अपूर्व घटना रही है। निराला का विचार था कि वे उर्दू के द्वारा हिन्दी पाठकों को नयी चेतना का आभास करायें क्योंकि जनसामान्य में उर्दू की मुहावरा पद्धति का अधिक प्रचलन था। 'बेला' के आवेदन में स्वयं निरालाजी ने लिखा है "नई बात यह है कि अलग-अलग बहारों की गजलें भी हैं। जिनमें फारसी के छन्दशास्त्र का निर्वाह किया गया है। आज भी ब्रजभाषा के प्रभाव के कारण अधिकांश जन तुतलाते हैं, खड़ी बोली के गीत खुलकर नहीं गा पाते। प्रायः सभी दृष्टियों से उनको फायदा

---

१ डा० भटनागर, कवि निराला एक अध्ययन, पृ० २०६, २१२

पहुँचाने का विचार रखा गया है ।''[1] हिन्दी को संस्कृति का दायित्व सौंपकर निराला सभ्यता की ऊपरी सतह को उर्दू के द्वारा व्यंजित करना चाहते हैं । तभी तो लहजे तर्जेबदा और वाह-वाह का रूप इस संग्रह में प्रचुरता से देखा जा सकता है । इस संग्रह के गीतों की प्रयोगात्मक उपयोगिता है, जिसमें लोक-भाषा और उर्दू-फारसी के प्रयोग किये गये हैं । श्री गिरीशचन्द्र तिवारी ने लिखा है ''बेला' में भी कवि की दृष्टि प्रयोग के विचार से नये पत्ते की ही तरह से है । बेला में गीतों की नयी मान्यताएँ प्रदान की गई हैं । कवि ने छन्दशास्त्र की व्यवस्था कर फारसी एवं उर्दू की गजलों और बहारों का प्रयोग किया है । यद्यपि बहारों का प्रयोग नया नहीं है, फिर भी ,निराला ने आधुनिक युग में व्यवहृत कर उसको बहरों में एक स्थान प्राप्त कराया है ।''[2]

'बेला' संग्रह में प्राकृतिक, आध्यात्मिक और शृंगारी रचनाएँ भी आई हैं । जो कवि की स्वस्थ प्रवृति का परिचय देती है । भले ही उसकी भाषा सुबोध, सरल और उर्दू मिश्रित ग्रामिणी रही हो । 'बेला' की रचनायें विषय की दृष्टि से 'परिमल' 'अनामिका' 'गीतिका' और 'गीतगुञ्ज' की कड़ी में रखी जा सकती हैं । परन्तु कुछ कवितायें ऐसी भी हैं जो प्रगतिशील तथा प्रयोगशील कही जा सकती है । शैली की दृष्टि से बेला की कविताओं को एक प्रयोग ही कहा जायगा । जैसा कि हम पहले कह आये हैं कि 'बेला' की गजलें भी एक प्रयोग ही है । राजनीतिक प्रयोगों का व्यंग्यात्मक और तिरस्कृत रूप इन कविताओं में देखने को मिल जाता है । 'बेला' की कतिपय प्रयोगवादी कविताएँ हैं–'छला गया' 'किरनों का प्रकाश कैसे करें' ? (पृ० ५६), 'वह चलने से तेरे छटा जा रहा है' '(पृ० ५६)' 'गिराया है जमी होकर, छुटाया आसमा होकर' (पृ० ६२), 'बदली जो उनकी आँखें, इरादा बदल गया' (पृ० ८३) 'अगर समस्त पदों का किसी को डर होता' (पृ० ६२)'तुम हो गतिवान जहाँ' (पृ० ६७) । इन कविताओं के अलावा भाषा, शैली विषय की दृष्टि से अन्य कई कविताऐं भी एक प्रयोग ही नजर आती हैं। देखिए–

साथ न होना । गाठ खुलेगी, छूटेगा उँर का सोना
आख पर चढे, कि लडे, फिर लडे,
जीवन के हुए और कोस कडे ?
प्राणों से हुआ हाय धोना । साथ न होना ।
× × ×
हाय बचा जा, कहने से माथ बचा जा,
अपने को सदा लखा जा,
सोच न कर मिला अगर कोना । साथ न होना । (बेला, पृ० १२)

---

१ निराला : 'बेला' के आवेदन से ।

२ गिरीशचन्द्र तिवारी : 'कवि निराला और उनका काव्य साहित्य-पृ० ५६ ।

यद्यपि यह एक दार्शनिक गीत है; पर यह भी एक प्रयोग है। इसी प्रकार का एक दार्शनिक गीत है 'फूलों के कुल काटे, दल, बल', यहाँ फूलों को सबोधित करके मानव-जीवन पर, उसकी कमजोरियों पर प्रयोग किया गया है। देखिये—

फूलों के कुल काटे, दल, बल।
कवलित जीवन की कला अकल।
विष, असगुन, चिन्ता और सोच,
उक्साये, खाये करे लोच,
कर गये पोच से और पोच;
मुरझे तरु-जीवन के सम्बल। —(पृ० १३)

'बेला' की १५ वी, १ - वी कविता मे वसंत का वर्णन किया गया है। ये कविताएँ गजल की शैली मे हैं जो प्रेम की मादकता का वर्णन करती हैं। चौबीसवी कविता मे अस्पष्टता आ गई है—

अपने को दूसरा न देख,
दूसरे को अपना न कह।
सपने को कल्पना न मान,
कल्पना को सपना न कह।
आँख की आन के लिए
आन की आख से गुजर,
तपने को बैठना सही,
बैठने को तपना न कह।
जैसे हुबाब गाठ बाध,
जैसे गुलाब गाँठ खोल,
आख के लगने से सुधर
आख का तू झपना न कह। —(पृ० ३२)

उर्दू की नज्म-पद्धति पर हिन्दी के शब्दो का प्रयोग हुआ है, जिसम मुशायरे की गध आती है। परन्तु बोधगम्यता का अभाव लक्षित होता है।

पैंतीसवी कविता 'बाहर मैं कर दिया गया हूँ। भीतर, पर, भर दिया गया हूँ। दार्शनिक गीत होते हुए आध्यात्म विषय से सम्बन्धित है। परन्तु उसकी विषय-योजना मे कोई स्पष्टता नही दिखाई देती। ऐसा मालूम होता है कि शब्दो को जोड़-कर रचना की गई हो। कतिपय पक्तियाँ इस प्रकार हैं—

बाहर मैं कर दिया गया हूँ। भीतर, पर, भर दिया गया हूँ।
ऊपर वह बर्फ गली है, नीचे यह नदी चली है,

भीतर, बाहर, बाहर, भीतर, देखा जब से, हुआ अनश्वर,
माया का साधन यह सस्वर,
ऐसे ही घर दिया गया हूँ। बाहर मैं कर दिया गया हूँ। (पृ०४३)

× × ×

४४ वी कविता 'आ रे, गगा के किनारे' नये कवियो की भाति का एक प्रयोग है। इसमे चित्रित विषय यथार्थवादी है, वातावरण प्राकृतिक और योजना सामाजिक। इस कविता मे पडो पर व्यग्य किया गया है जो धर्म के सहारे स्वार्थ-सिद्धि करते हैं। इसका उल्लेख हम पहले कर आये हैं। यहा यही कहना पर्याप्त होगा कि इस प्रयोग की एक विचार-भूमि है जो गभीर न होकर स्पष्ट अवश्य है। इसमे बोधगम्यता है। देखिये—

आ रे, गगा के किनारे
झाऊ के बन से पगडडी पकडे हुए
रेती की खेती को छोडकर, फूस की कुटी,
बाबा बैठे झारे-न्हारे।

× × ×

बाबा साधक हैं और कढे भी हैं,
सारए की पोथिया पढे भी हैं,
आखो मे तेज है, छाया है,
उस छवि की गेह सिधारे। –(पृ० ५२)

● बेला की विशेषतायें : प्रयोगशील काव्यदृष्टि से

(१) उर्दू-फारसी भाषा और छदो का प्रयोग किया गया है, जिसमे गजलें, बहरें, ख्याल, रुबाइया आदि मे कवितायें की गई हैं। ध्यान इस बात का रखा गया है कि वे इतनी कठिन न हो जायें जो बोधगम्य न हो, तभी तो लोकभाषा के शब्दो को भी उनमे प्रयुक्त किया गया है। मुशायरे की पद्धति पर जनमानस को प्रभावित वाली प्रभावोत्पादकता बनाये रखने का प्रयास इन कविताओ मे बराबर रहा है। 'बेला' की गजलें एक विशेष प्रकार का प्रयोग ही हैं।

(२) प्राकृतिक, आध्यात्मिक से लेकर सामाजिक और राजनीतिक कवितायें इस सग्रह मे हैं। जो भाषागत विविधता और विषयगत सरलता को प्रकट करती हैं।

(३) बेला की प्रयोगवादी रचनाओ की कोई विचारधारा नही है। कोई गभीर उद्देश्य नही है। उनका महत्व सामाजिक और तात्कालिक प्रभाव-क्षमता मे ही आका जा सकता है।

(४) भाषा-प्रयोग की विविधता से अस्पष्टता भी आ गई है, जो पाठक की रुचि को अनगढ़ प्रयोग-सी जान पडती है।

(५) ये प्रयोग निराला की बहुज्ञता की सूचना देते हैं।

नये पत्ते

'नए पत्ते' संग्रह का आगमन १९४६ में हुआ, जब द्वितीय महासमर समाप्त हो चुका था। भारत की आर्थिक स्थिति और साम्राज्यवादी मार, राष्ट्रीय आन्दोलन का नया जोश और दमनकारी नीति, अत्याचार, साम्प्रदायिक झगड़ों आदि से सामाजिक व्यवस्था का रूप बिगड़ रहा था। निराला के संवेदनशील मन और उनकी अस्तव्यस्त जीवन-विषमताओं ने उनको झकझोर दिया था। इस समय तक उनकी मानसिक विक्षिप्तता बढ़ चुकी थी। 'नए पत्ते' का आगमन ही साहित्य-तरु में नहीं—हरीतिमा से समझना चाहिए। यह निराला की प्रगतिवादी और प्रयोगवादी स्थली है। इसमें विविध प्रकार के प्रयोग हुए हैं। काव्य-शिल्प को नया रूप मिला है। काव्यगत विषय को विविधता, काव्यभाषा को सरलता और चलताऊपन मिला है तथा काव्य के प्रयोजन को प्रयोगशीलता। 'नये पत्ते' की कतिपय प्रयोगशील कविताओं पर यहाँ हम विचार करेंगे। यह हम पहले ही कह आए हैं कि यह विषयगत, शैलीगत, छंदगत, भाषागत एक प्रयोग है।

'रानी और कानी छंदबद्ध, विषय-प्रयोग है जो प्रगतिवादी समस्या को लेकर एक व्यंगचित्र उपस्थित करता है। शब्द-योजना से जो रूप बना है वह 'शिल्प' का प्रयोग कहा जा सकता है। देखिये—

> बीनती है, काड़ती है, कूटती है, पीसती है,
> डलियों के सीले अपने रूखे हाथों मीसती है,
> घर बुहारती है, करकट फेंकती है,
> और घड़ों भरती है पानी, —(पृ० ९)

'खजोहरा' कविता प्रयोगवादी—नयीदृष्टि की सूचक है—

> दौड़ते हैं बादल ये काले काले
> हाईकोर्ट के वकले मतवाले।
> जहाँ चाहिये वहा नहीं बरसे,
> धान सूखे देखकर नहीं तरसे।
> × × ×
> नाम है हिलगी, बनी है भूघुम्बी
> जैसी लौकी की लम्बी तुम्बी।
> कच्चे घर ऊबड़ खाबड़, गन्दे
> गलियारे, बन्द पड़े कुल धन्धे।..आदि।—(पृ० ११-१२)

इस कविता में अनेक प्रकार के शब्द हैं जो उनकी प्रयोगशीलता का परिचय देते हैं—वकले, मुहकहे, हिलगी, तुम्बी, टुन्नी-टुन्ने, सजे सजे, मेंढ़क एक बोलता है,

जैसे सुकरात,····आदि। यहाँ विषयगत बिखराव है पर भाषा की चुस्ती और शब्दों की शालीनता नही है।

इसी प्रकार 'मास्को डायेलाग्स' भारतीय साम्यवादी राजनीति के आडम्बर-प्रधान रूप पर व्यंग्यात्मक प्रयोग है। 'आँख आँख का काँटा हो गई' शीर्षक कविता तो प्रयोगशील कविता का उत्कृष्ट उदाहरण है।

मुँहो-मुँह रहे
एक पेड़ पर दो डालों के काँटे जैसे
अपनी-अपनी कली तोलते हुए।
हर्फ न आया;
× × ×
छाँह में बैठालकर तग नसें ढीली की;
फिर बुखार उतारा;
राही जगा,
अपना रास्ता लिया
आँख आँख का काँटा हो गई। (पृ० २०-२१)

उनके इस प्रकार के प्रयोग उनकी मानसिक विक्षिप्तता का परिचय देते हैं। वैज्ञानिक विकास और परम्परा के ह्रास ने जो वातावरण प्रस्तुत किया है उसको लक्ष्य रखकर 'थोडो को बहुतो के पेटे में आना पड़ा' कविता की सृष्टि हुई है। आँख आँख का काँटा हो गई, की भाँति ही यह कविता प्रयोग-दृष्टि का उदाहरण कही जायगी।

घूहों और गुफाओं और पत्थरों के घरो से
आजकल के शहरो तक, दुनियाँ ने चोली बदली।
बिजली और तार और भाप और वायुयान
उसके वाहन हुए।
जान खीची खानो से
कल और कारखानो से। (थोडों के पेट मे बहुतो को आना
× × × पडा—पृ० २२)

'खुशखबरी' मे सिनेमा-सगीत और कविता के नये फैशन पर व्यंग्यात्मक प्रयोग है। 'दगा की' नई सम्यता के कंकाल पर व्यग्यात्मक प्रयोग कहा जा सकता है। 'गर्म पकौड़ी' कविता मे गर्म पकौडी को प्रतीक रूप मे लेकर व्यंग्यात्मक प्रयोग किया गया है जो आजकल के नवयुवकों पर प्रयोग कहा जायगा। 'स्फटिक शिला' कविता 'नये पत्ते' की सर्वमान्य प्रयोगशील रचना कही जायगी, यद्यपि इसका विषय यथार्थवादी दृष्टि से सबन्धित है। इसमे रामलाल का अन्य साथियो के साथ

स्फटिक शिला, चित्रकूट जाने की तैयारी से लेकर वहाँ पहुँचने तक का दृश्य दिखाया गया है। जाने के क्रम से पहुँचने तक के वातावरण का वर्णन अंकित है। यह वातावरण ही इस कविता का कथानक है, यही इसकी प्रयोग-शीलता का रूप कहा जायगा। इसमें लेखक की रुचि व्यंग्य और हास्य के द्वारा प्रयोगात्मक चित्र उपस्थित करने की रही है। पूरी कविता पढ़ने पर एक अजीब सी विषय-योजना, लगती है। 'कुत्ता भौंकने लगा' यथार्थवादी दृष्टि का अच्छा खासा व्यंग्यात्मक प्रयोग है। 'झींगुर डटकर बोला', 'डिप्टी साहब आये', 'महँगू महँगा रहा' आदि कविताएँ प्रयोगवादी दृष्टि की कही जायेंगी। 'कैलास में शरत्' कविता जैसा अति-काल्पनिक चित्रण भी एक प्रकार का प्रयोग है। इसमें अतिरंजित कल्पनाएँ आयी हैं। विषय की अतिकाल्पनिकता इस कविता को देखने पर दृष्टिगत होती है। यह एक विलक्षण, अद्‌भुत प्रयोग है। कतिपय पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत की जाती हैं—

> सारे देशों की हम लोगों ने यात्रा की।
> किश्तियाँ डाली गईं,
> उन पर चढ़-चढ़ कर हम
> मानसर पर चले।
> सर्वोत्तम स्थान यह।
> इन्दीवर करोड़ों,
> करोड़ों अन्य कमल, कोकनद, शतदल
> ऐसी सुगन्ध की मदिरा न फिर मिली।
> उन्मद विहार किया।
> एक ओर सिन्धु, एक ओर ब्रह्मपुत्र का
> उद्‌गम सुहावना।
> एक नदी और है
> यहाँ से निकली हुई।
> दिव्यता के भीतर हम
> दिव्य बने ही रहे।[1]

❸ नये पत्ते की विशेषताएँ—प्रयोगशील दृष्टि से

निराला यहाँ यथार्थ की भूमि पर उसके सुडौल रूप को, मार्मिक रूप को कम देखते हैं। भोंडापन भद्दापन ही हास्य और व्यंग्य के रूप में चित्रित किया गया है। अतियथार्थवाद का स्वरूप उभर आया है, जिसे अतिकाल्पनिकता भी कह सकते हैं।

(२) तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था और राजनीतिक गतिविधि पर जो दृश्यावलोकन किया गया है, वह किसी गंभीर लक्ष्य की ओर प्रेरित नहीं करता।

---

१ निराला नये पत्ते—'कैलास में शरत्' कविता से, पृ० ६४–६५।

मनोविनोदात्मक शैली के प्रयोगो मे कोई सुसम्बद्धता या क्रमिकता नही है। विकृत-यथार्थ के हास्यात्मक दृश्य हैं।

(३) यथार्थवादी काव्य-दृष्टि का जो वातावरण इन प्रयोगशील कविताओ मे रक्खा गया है उसका कोई 'वाद'–बद्ध या दृष्टियद्ध उद्देश्य नही है। यह तो प्रयोग के निमित्त प्रयोग से जान पड़ते हैं। इनका लक्ष्य हास्य और व्यग की हल्की चोट हो सकता है।

(४) यह प्रयोगशीलता कवि की मन स्थिति के विकृत रूप को बतलाती है। कवि के मन और बुद्धि का सन्तुलन, नियमित और क्रमबद्ध तथा गतानुगतिक नही रहा है।

(५) भाषा के ऊबड-खाबड प्रयोग, जिनमे अर्थ की अभिधेयता और शब्द की निरकुशता लक्षित होती है, जो शायद काव्य-भाषा के शब्द नही हो सकते, उनको बलात्, वे सोचे-समझे किसी जगह पर प्रयुक्त कर दिया गया है।

प्रयोगशील कविताओ की साहित्यिक विशेषता

हिंदी मे प्रयोगवाद प्रतीकवाद का ही दूसरा नाम है। ऊपर लिखे कुछ तथ्यो के अनुसार विषयगत शैलीगत, छदगत तथा भाषा की भूमि पर हम निराला की कतिपय कविताओ मे प्रयोगशील दृष्टि देखते हैं। गद्यमय काव्य-पक्तियाँ, अतुकात छद विधान, लोकभाषा, मुहावरेदानी, अप्रचलित शब्द तथा देशज भाषाओं का प्रयोग, उर्दू फारसी से लेकर अग्रेजी शब्दो तक का प्रयोग, अनिश्चित भाव-विस्तार, अभिधेयात्मक चित्रव्यजना, दैनन्दिनी प्रयोग-चर्या का व्यवहार, कटुता, रूक्षता, व्यग्य, हास्य, ईर्ष्या, राग, द्वेष आदि का वैचारिक और वर्गगत स्वरूपांकन आदि की प्रयोगशीलता निराला के इस काव्य मे मिलती है। 'अणिमा', 'कुकुरमुत्ता', 'बेला', 'नये पत्ते' उनकी नयी दृष्टि के परिचायक हैं, जिसमे सामाजिक चेतना की नयी-जागृति है। इस जागृति का नया लक्ष्य है। इस लक्ष्य का नया मार्ग है। इस मार्ग का नया रूप है और इस नये रूप की नई सृष्टि है निराला का प्रयोग-शील काव्य।

८

निराला के परवर्ती गीतों का अध्ययन

● प्रस्तावना

निराला-काव्य मे गीतो का विशेष स्थान है। उनकी जितनी काव्य-रचनायें प्रकाशित हुई हैं, कदाचित् 'कुकुरमुत्ता' और 'तुलसीदास' को छोडकर, शेष सब मे न्यूनाधिक सख्या मे गीतो का भी चयन किया गया है। किन्तु ये दोनो काव्य-पुस्तकें एक ही लम्बी कविता के आधार पर बनी हैं, इसलिए इनमे स्फुट गीतो के सग्रह का अवकाश नही था। निरालाजी के दूसरे दो सग्रह बेला' और 'नये पत्ते' हैं, इनमे से 'बेला' मे उर्दू गजल-शैली का प्रयोग किया गया है। 'गजल' भी एक प्रकार के गीत ही हैं, यद्यपि इन्हे निराला के अन्य गीतों की तुलना म नहीं रखा जा सकता, जो अधिक परिनिष्ठित सगीत की सृष्टि करते हैं। इसी प्रकार 'नये पत्ते' काव्य-सग्रह मे प्रयोगात्मक शैली के कुछ गीत हैं, जिनम वह सौष्ठव नही जो निरालाजी के हिन्दी-शैली के गीतो मे है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि निराला का झुकाव गीतो की ओर प्रारम्भ से ही रहा है और अन्त तक बना रहा है, बल्कि यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि अपने अन्तिम वर्षो मे निरालाजी प्रमुखत क्या, एकान्त भाव से गीत ही लिखते रहे हैं। उनकी अन्तिम तीन कविता-पुस्तकें 'अर्चना' 'आराधना और 'गीतगुज' आद्यन्त गीतो से समन्वित हैं।

गीतो की सृष्टि अन्य काव्यरूपो की सृष्टि स भिन होती है। इसमे काव्य-कला के साथ सगीतकला का सयोग होना है। जब तक दोनो विधाओ का सपूर्ण और प्रौढ़ अभ्यास न हो, यही नही, दोनों विधाओं को सजोकर, उन्हें समन्वित कर एक में रखने की शक्ति न हो, तब तक सफल गीत-सृष्टि नही हो सकती। निरालाजी ने स्वय कहा है कि उनके कुछ गीत कवि सम्मेलनों या अन्य गोष्ठियों मे गाकर की गई अदायगी से बहुत भिन्न हैं।[1] किसी तरह कविता को गाकर सुना देना एक

---

१ निराला : 'गीतिका' की भूमिका (पृ० १२)—कुछ गीत समय के दायरे से बाहर हैं। उनके लिए गायक का उचित निर्णय आवश्यक होगा। उनके भाव किस-किस रागिनी मे अच्छी अभिव्यक्ति पायेंगे, यह मैंने गायक की समझ पर छोड

बात है, किन्तु उसे सगीत-कला के माध्यम से उपस्थित करना और स्वीकृत रागरागिनियो मे उन्हे बाधकर सुनाना दूसरी बात है। छदो की सफल योजना भी सफल गीत का निर्माण करे, यह आवश्यक नही। हिन्दी मे अधिकतर कवियो ने छद-बद्ध गीत लिखे हैं पर उनमे छद की प्रधानता है, गीत की नही। उन्हे गाकर सुनाने मे छद की समरूपता तो आ जायगी, पर गीत का स्वर-सभार नही आ सकेगा। उधर दूसरी ओर ऐसे सगीतज्ञ मिलते हैं जो सगीत के स्वरो का, रागरागिनी और तालो का निर्माण और निर्वाह तो कर लेते है, परन्तु जिनकी शब्दयोजना अत्यन्त शिथिल और निष्प्राण होती है। यहा सगीत-पक्ष प्रधान हो जाता है, गेयता ही लक्ष्य वन जाती है; पर काव्य के भावो और रसो का स्वतन्त्र रूप से प्रवेश नही हो पाता। हम मानते हैं कि सगीत स्वय अपने मे अपना साध्य है। वह एक स्वतन्त्र कला भी है। उसमे स्वरो की योजना से भावो और रसो की सृष्टि भी हो सकती है, और होती है, परन्तु जहाँ साहित्य और काव्य की चर्चा की जाती है, वहाँ सगीत उसका अग बनकर ही आ सकता है। हम यहाँ कवि निराला के गीतो पर लिख रहे है, इसलिए हमारा प्रयोजन केवल सगीतशास्त्र से नही सघ सकता। काव्य की भूमिका पर सगीत का प्रवेश जिस भाव या रस की सृष्टि मे सहायक होता है, हमारा प्रयोजन उसी सगीत से है। हम यहा निराला के काव्य की समीक्षा कर रहे हैं। अतएव उनके गीतो मे आए हुए सगीत को सहायक तत्व के रूप मे ही ले सकते हैं।

निरालाजी ने स्वय इस बात की चर्चा की है कि उनके गीतो मे सगीत की रागरागिनियो का निर्वाह किस रूप मे हुआ है। छद-शास्त्र के नियमो के अनुसार निरालाजी ने मात्राओ की योजना पर पूरा बल दिया है। गीतिकाव्य के लिए यह अपेक्षित भी है। पर मात्राओ पर बल देते हुए भी सगीत-शास्त्र की दृष्टि से उनकी गेयता अबाधित रही है। यह अवश्य है कि जब किसी गीत को रागरागिनी मे बाँधकर गाया जायगा, तो सगीत के आग्रह से सगीत की मात्रायें घटाई और बढाई जा सकेंगी। जब किसी कविता को सगीत का स्वरूप दिया जायगा, तब इस प्रकार के सशोधन आवश्यक हो जायगे। ऐसा न होने पर काव्य-कला और सगीत-कला का समन्वय ही सभव नही होगा। एक उदाहरण देकर निरालाजी ने इस स्थिति को और भी स्पष्ट किया है—

'प्राणघन को स्मरण करते
नयन झरते नयन झरते [१]

दिया है। पर यह निश्चित है कि व्रजभाषा के पद गाने वालो के लिए साफ उच्चारण के साथ इन गीतो का गाना असम्भव है। वे इतने मार्जित नही हो सके।

१ निराला : 'गीतिका' की भूमिका से—पृ० ७।

ये राग धम्मार की १४ मात्राओं की पंक्तिया हैं, किन्तु जब इस गीत का अतरा आता है, तब निरालाजी की पक्तिया इस प्रकार है—

- स्नेह ओतप्रोत
सिन्धु दूर शशि प्रभा दृग
अश्रु ज्योत्स्ना स्रोत ।[1]

ये तीनो पंक्तिया १४-१४ मात्राओ की नही हैं। पहली और तीसरी १०-१० मात्राओं की है। केवल दूसरी १४ मात्राओ की है। इन्हे सगीत में ढालते समय गायक को तीनों पंक्तियो को १४ मात्राओ म परिणत करके गाना होगा और वह इस प्रकार होगा[2]—

२	१	२	२	२	२	२	१ —१४
]	|	|	|	|	!	|	!
स्न	ह	ओ	त	प्रो	ओ	आ	त

निरालाजी की इस व्याख्या से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उनके गीतो को सगीत के साचे मे ढाला गया है। परन्तु यह सगीतज्ञ के अपने कौशल पर अवलबित है कि वह छद की मात्राओ को सगीत की भूमिका पर ले जाकर अभीष्ट रूप मे उसका गान करे।

केवल छदो की घटबढ़ को सुधारने-सवारने का कार्य ही पर्याप्त नही है। निरालाजी के कई गीतो मे पक्तियो के अंशो को आगे पीछे करके सगीतात्मक रूप देना पडता है। उनकी एक कविता है—

'जग का एक देखा तार
कठ अगणित, देह सप्तक
मधुर स्वर झंकार '[3]

इस गीत को यदि सगीत के माध्यम से गाना है, तो उसे बदलकर इस रूप मे गाना होगा—

'एक देखा। तार जग का।
कठ अगणित। देह सप्तक
मधुर स्वर-झङ्। कार जग का'[4]

---

१ 'गीतिका' की भूमिका में निराला की व्याख्या–पृ० ७।

२ वही।

३ वही, पृ० ७।

४ 'गीतिका' की भूमिका मे निरालाजी की व्याख्या–पृ० ८।

ऊपर के इन दो उदाहरणो से यह स्पष्ट होता है कि काव्य मे उसके अपने भाव, भाषा और छद सुरक्षित रहेगे, फिर भी कवि का सगीत सम्बन्धी ज्ञान कविता को विशिष्ट रागरागिनियो मे परिवर्तित कर सकेगा। इस प्रकार काव्य-सौन्दर्य की स्वतन्त्र रक्षा करते हुये सगीत का अतिरिक्त माधुर्य उसमे समाहित हो सकेगा और तब गेय पदो मे साहित्य और सगीत का दुहरा आनन्द उपलब्ध होगा। निश्चय ही यह क्षमता उन्ही कवियों मे प्राप्त होगी, जो काव्य की मार्मिक भाव-योजना का अधिकार रखते हैं, पर साथ ही जिनमे सगीत की गहरी चेतना और ज्ञान भी सन्निहित है। निराला ऐसे ही एक गायक कवि हैं। तभी उनके गेय पदो मे काव्यत्व की सम्यक योजना के साथ सगीत की भी समुचित अवतारणा हुई है।

यह तो काव्य-प्रक्रिया मे सगीत-तत्व के सयोग की चर्चा हुई। हमे यह भी देखना है कि निराला के गीतो मे सगीत के कैसे स्वरूपो की ससृष्टि पाई जाती है। भारतीय सगीत के सबन्ध मे निरालाजी के अपने विचार हैं। उन्ही विचारो के अनुरूप उन्होने अपने गेय पदो मे सगीत के स्वरो का आनयन किया है। निरालाजी की धारणा यह है कि भारतीय सगीत का सर्वश्रेष्ठ स्वरूप वैदिक ऋचाओ मे पाया जाता है। उनकी दृष्टि मे गायत्री मत्र आदर्श सगीत का प्रतीक है, जिसमे भाव की मुक्ति के साथ शब्द और गीत की मुक्ति भी सन्निहित है।[1] प्राचीन ऋषि की मुक्त आत्मा की झकार इस वेद-मत्र मे मिलती है। इसमे न तो छन्द का बन्धन है और न मात्राओ की गणना। फिर भी यह एक उत्तम भावोच्छ्वास को आविर्भूत करता है। साथ ही सगीत के मुक्त किन्तु सशक्त स्वरूप का आकलन भी करता है। वेदो के पश्चात सगीत का विकास सस्कृत साहित्य मे हुआ है। निरालाजी का यह अनुमान है कि वैदिक वाणी मे सगीत का जो निर्वाद स्वरूप है, उसे ही छद-ताल-वाद्य मे बाँधकर सस्कृत भाषा के माध्यम से लोकानुरजक बना दिया गया है। पहली वस्तु वैयक्तिक थी। दूसरी समुदायगत हो गई है। किन्तु तत्वत दोनो मे अधिक अतर नही आया, परन्तु जब परवर्ती काल मे लोकानुरजन की सीमा इतनी बढी कि उसमे एक प्रकार का स्त्रैण भाव आने लगा। तब सगीत भी अपने मुक्त स्वरूप की रक्षा न कर सका। मूल रागरागिनियो और तालो आदि मे इस स्त्रैण तत्व का प्रभाव मुसलमानी काल मे देखा जाता है, जब सगीत मे नाना प्रकार की तानें प्रचलित हुई। सगीतज्ञो के अलग-अलग घराने बने। परन्तु निरालाजी का मत है कि किसी भी विद्या मे जब

---

१ निराला 'गीतिका' की भूमिका, पृ० १। "आर्य जाति का सामवेद सगीत के लिए प्रसिद्ध है, यों इस जाति ने वेदो मे जो कुछ कहा, भावमय सगीत मे कहा है। सगीत का ऐसा मुक्त रूप अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता। गायत्री की महत्ता आज भी आर्यों मे प्रतिष्ठित है। इसके नाम मे ही सगीत की सूचना है। भाव और भाषा की ऐसी पवित्र झकार और भी कही है, मुझे नही मालूम।"

इतने भेदोपभेद आ जाते हैं, इतनी रूपमत्ता आ जाती है, तब वह ह्रासोन्मुख हो जाती है और बाहर से रगीनी रखते हुये भी, भीतर से खोखली पड जाती है। निराला की इस दृष्टि मे सत्य की बडी मात्रा पाई जाती है। पाश्चात्य समीक्षकों ने भी रूपात्मकता के विकास के साथ-साथ भावतत्व की क्षीणता को साहित्य और कलाओ के इतिहास मे स्वीकार किया है। अतएव निरालाजी मुक्त पौरुष तत्व के प्रेमी होने के कारण सगीत की इस तान-बहुल स्थिति से सतुष्ट नही थे।

सगीत के विकास-क्रम मे निरालाजी ने देश- भाषाओं के सगीत को सस्कृत-सगीत से हीनतर माना है। उनका कथन है कि सस्कृत गीत-गोविन्द मे सगीत का जो स्तर है, वह चडीदास और गोविन्ददास जैसे देशभाषा के कवि-गायको से उच्चतर है। 'गीतगोविन्द' मे आये हुए श्रृगार को आजकल के लोग अश्लील बताते हैं, किन्तु सगीत की भूमिका पर निराला उसकी अश्लीलता स्वीकार नही करते। साहित्य-रसिको के लिए निराला का यह निर्देश सदैव ध्यान देने योग्य रहेगा।

हिन्दी के पुराने कवियो मे निरालाजी कबीर, सूर, तुलसी और मीरा के सगीत के प्रशसक हैं। कबीर मे काव्यपक्ष उतना समृद्ध नही है, परन्तु ब्रह्म को निराकार और निर्गुण मानकर चलने के कारण उनके पदो मे मुक्तभाव अधिक मात्रा मे आये हैं। सूर और तुलसी सगुणोपासक थे, अतएव इस सीमा तक उनके गीतो मे रूपात्मकता अधिक है। परन्तु काव्य की दृष्टि से अधिक समृद्ध होने के कारण इस रूपाधिक्य की क्षतिपूर्ति हो गई है। इसी कारण निराला,सूर और तुलसी के गीतो को कबीर के पदों से श्रेष्ठतर मानते हैं। मीरा को वे भारतीय सगीत की महान साधिका के रूप मे स्वीकार कर उनके गीतों मे उच्चतम सौन्दर्य की उपलब्धि देखते हैं।

आधुनिक युग मे आकर भारतीय सगीत पर पश्चिमी प्रभाव पडने लगा। निराला इस प्रभाव को बुरा नही मानते, परन्तु वे भारतीय सगीत की राष्ट्रीय परपरा के पोषक हैं और उन्हे इस बात का खेद है कि पश्चिम का समाज भारतीय सगीत का यथार्थ आकलन और आस्वादन करने मे अक्षम रहा है। उन्होंने लिखा है कि इस का मूल कारण पश्चिम की अपनी सास्कृतिक दृष्टि है। पश्चिमी समाज अधिक स्वच्छदता प्रिय है। वह भारतीय सगीत में स्त्रैणता देखता है, जिसे वह पसन्द नहीं करता। परन्तु निरालाजी का कथन है कि यह स्त्रैणता तो पिछले खेवे के सगीत मे आयी है। भारतीय सगीत म ऐसे अनेक राग और रागिनियाँ हैं जिनका पौरुष तत्व ससार के किसी पौरुष तत्व से टक्कर ले सकता है और उससे आगे भी बढ़ जाता है।[1] परन्तु

१ हमारे यहाँ भैरव, मालकोस, दीपक आदि रागों के जैसे स्वरूप चित्रित किये गये हैं, उन्हे देखकर कोई यह नही कह सकेगा कि इनमे स्त्रीत्व है, भैरव में तो पुरुषत्व का विकास इतना अधिक करके दिखाया गया है कि ससार मे उस तरह का मस्त और दुनियां को तुच्छ समझने वाला पुरुष ससार की किसी भी

भारतीय सगीत का उचित प्रतिनिधित्व पश्चिम मे नही हो पाया। आधुनिक युग मे डी० एल० राय और रवीन्द्रनाथ ने पश्चिमी सगीत के तत्वो को अपनाया है, परन्तु उन्होने भी भारतीय परम्परा की अवहेलना नही की है। वर्तमान युग मे पश्चिमी सगीत के मिश्रण से भारतीय काव्य और सगीत का एक नया स्वरूप विकसित हो रहा है। निराला के गीत इसी विकासमान परम्परा की एक सशक्त कडी के रूप मे देखे और परखे जा सकते हैं।

❸ गीतिकाव्य का स्वरूप

जिस प्रकार नाट्यकला मे काव्य और अभिनय के उपकरण सयुक्त होकर एक नये प्रकार की कला सृष्टि करते है, उसी प्रकार गीतिकाव्य मे कविता और सगीत के उपकरण एकत्र होकर उसके नूतन स्वरूप का निर्माण करते हैं। नाटक की समीक्षा केवल साहित्यिक भूमिका पर नही की जा सकती। उसके विवेचन मे रगमच के समस्त सभार, अभिनय की सारी विशेषताओ, नाट्य दर्शको के समस्त मनोभावो आदि का ध्यान रखना पडता है। उसी प्रकार गीतिकाव्य की विवेचना काव्य और सगीत की सयुक्त भूमि पर ही की जा सकती है। काव्य अपने विशुद्ध स्वरूप से आगे बढकर जब दृश्य-काव्य के रूप मे उपस्थित होता है, तब उसे अनेक नई मर्यादाएँ ग्रहण करनी पडती हैं। सभव है, इस प्रक्रिया म कोई नाटक श्रेष्ठ काव्य भी बना रहे, पर इसके अतिरिक्त इसे कुछ और भी करना पडता है।[1]

Allardyce Nicoll ने अपनी पुस्तक Theory of Drama मे लिखा है कि उत्तम नाटक मे उत्तम काव्य के गुण हो सकते है, पर उसम उत्तम अभिनय के गुण भी होने चाहिये।[2] उसी प्रकार हम भी कह सकते है कि उत्तम

जाति मे न रहा होगा। हमारे यहां ध्रुपद धम्मार आदि तालो मे स्त्रीत्व का तो कही निशान भी नहीं है। हमारे यहा मृदग के बोल भी पुरुषत्व के उद्दीपक हैं। जब से राग-रागिनियो की खिचडी पकी, गजल-युग आया, तब से सगीत म स्त्रीत्व का प्रभाव बढा है।

—निराला · रवीन्द्र-कविता-कानन, 'सगीतकाव्य' शीर्षक निबन्ध से, पृ० १४२, १४३।

1 Already we have seen that, in order to judge the worth of a particular piece of dramatic art, the theatre, if not physically present, must be visualized, and that all endeavours have to be made in the reading of the play to imagine its production in a play house, with scenery and histrionic interpretation of the parts

—Allardyce Nicoll Theory of Drama, P. 60

2 It would be wrong, however, to speak merely of their poetical power, for the 'poetry' of a 'Hamlet' or an 'othello' is not as

गीतिकाव्य मे श्रेष्ठ काव्य गुणो के साथ-साथ श्रेष्ठ गीति-गुणो का समावेश भी आवश्यक है। अब हम देखना चाहेंगे कि श्रेष्ठ गीतिकाव्य के वे कौन से उपकरण हैं, जो इस उभयमुखी कला के लिए आवश्यक कहे जा सकते हैं।

सबसे पहले गीतिकाव्य मे गीत का आकार आता है। सामान्यत कविता के आकार की कोई सीमा नही है। पर गीतिकविता एक निश्चित सीमा के बाहर नही जा सकती। सामान्यत: एक गायक जितने समय तक अपना स्वर-सधान कर सकता है, उससे अधिक विस्तार गीत को नही मिल सकता। इसीलिये ससार के समस्त गीति-कवियो के पद २०–२५ पक्तियों से अधिक बडे नहीं हैं, बल्कि अधिकाश गीति-रचना उससे भी छोटी रहती है। आकार की इस लघुता का एक अन्य भी कारण है। वह है गीत मे एक स्वतन्त्र और आत्मसपूर्ण भाव का सयोजन। गीत मे केन्द्रीकरण की इस आवश्यकता के कारण दीर्घ विस्तार या प्रसार नही हो सकता।

गीतिकाव्य की भावसपत्ति

जब हम जयदेव से आरम्भ होने वाले भारतीय गीतिकाव्य की भावसपत्ति का आकलन करते हैं और विद्यापति से लेकर कबीर, सूर, तुलसी, मीरा और आधुनिक युग मे भारतेन्दु तथा प्रसाद के गीतो तक फैली हुई हिन्दी की अशेष गीतसृष्टि का अवलोकन करते हैं, तो यह स्पष्ट होता है कि गीतो का मूलतत्व माधुर्य है जो सगीतकला की देन है। इसका द्वितीय तत्व भाव-परिष्कार या सौंदर्य-चेतना का है।[1] परिष्कार से हमारा आशय गीतो में आने वाले भावों के स्वच्छ सुसस्कृत स्वरूप से है। यह भी सगीतकला का ही एक उपकरण है। किसी भी ऐसे पद का गायन नही किया जा सकता, जिसमे अधूरे या अपरिपक्व भाव आये हों। इसके साथ गीतकाव्य मे तल्लीनता की भूमिका भी रहती है। गीतो मे टेक-प्रयोग तल्लीनता के आशय की ही सिद्धि करता है। इन्ही कारणो से गीत मे रसबोध या

---

the poetry of a Paradise Lost or a Divine Commedia. It is poetry applied to and ever kept subservient to, dramatic necessity."

—Allardyce Nicoll. Theory of Drama P. 67.

१ इसी तथ्य की पुष्टि प० नन्ददुलारे वाजपेयी की 'गीतिका' की समीक्षा मे आई हुई इन पक्तियो द्वारा होती है—'सौंदर्य ही चेतना है, चेतना ही जीवन है, अतएव काव्य-कला का उद्देश्य सौंदर्य का ही उन्मेष करना है'। मनुष्य अपने को चेतना-सपन्न प्राणी कहता है, पर वास्तव में वह कितने क्षण सचेत रहता है ? कितने क्षण वह चतुर्दिक फैली हुई सौंदर्य-राशि का अनुभव करता है ? वह तो अधिकाश आँखें मूदकर ही दिवस-यापन करने का अभ्यस्त होता है। कविता उसकी आँखें खोलने का प्रयास करती है।" (पृ० १७)

आस्वादन का भी गभीर योग रहा करता है। अन्य प्रकार की कवितायें तात्कालिक वैयक्तिक प्रतिक्रिया का परिणाम हो सकती है, परन्तु गीत का आधार ले लेने पर इन प्रतिक्रियाओ का वैयक्तिक पक्ष मिटा देना आवश्यक हो जाता है। इसका यह आशय नही कि गीतो मे नवीनता नही होती। नई-कल्पना-छवियो का तथा नूतन मानसिक उपादानो का योग नही होता। वह तो प्रचुर मात्रा मे होता है, जैसे कि सूरदास के गीतो मे, और विशेषकर उनके वात्सल्य-रस के गीतो मे देखा जाता है, परन्तु काव्य और सगीत के समाहार के कारण गीतिकाव्य मे अधिक सार्वजनीनता अपेक्षित होती है।

⑤ गीतिकाव्य की भाषा

गीतिकाव्य की भाषा मे सामासिकता का गुण आवश्यक है। सामासिकता से यहाँ हमारा आशय समासो की बहुलता से नही, बल्कि भाषा की मितव्ययिता से है। गीत मे एक भी अनावश्यक शब्द नियोजित होने पर बिना खटके नही रह सकता। क्लिष्ट या अस्पष्ट आशय के शब्द गीतो के लिये हानिकारक होते है। कबीर जैसे कवि को भी जो बहुत बडे भाषाविद् नही थे, अपने गीतो में अत्यत व्यजक प्रतीक-शब्दो का प्रयोग करना पडा है। किसी भी प्रकार का अपरिचित शब्द या अर्थ गीतिकाव्य की सबसे बडी बाधा है। भाषा मे कृत्रिम अनुप्रासो या अन्य अलकृतियो का योजन भी गीतिकाव्य मे सह्य नही हो सकता। शब्दालकार और यमक आदि अतत काव्यचमत्कार के तत्व हैं। सगीत के माध्यम से आनेवाली निगूढ भावाभिव्यक्ति के लिये ये रोडे का ही काम कर सकते हैं। परन्तु यदि अनुप्रासो और शब्दालकारो का योग सहज और स्वाभाविक रीति से किया जाता है, जिससे अर्थ की उपलब्धि मे लेशमान भी कठिनाई नही होती, तो ऐसी अनुप्रास-योजना से गीत का काव्यात्मक चमत्कार बढ जाता है।

भरा हर्ष वन के मन नवोत्कर्ष छाया
अथवा— पास ही रे हीरे की खान
खोजता उसे कहाँ नादान[1]

जैसी गीत-पक्तियो म हर्ष' और 'नवोत्कर्ष' तथा 'ही रे' और 'हीरे' की शब्दालकृतियाँ काव्य सौंदर्य मे वृद्धि ही करती हैं।

⑥ निराला के आरम्भिक गीत

'परिमल' और 'गीतिका' मे निरालाजी के आरम्भिक गीत सकलित है। 'परिमल' मे गीतो की सख्या बीस से अधिक नही है। 'गीतिका' मे १०१ गीत हैं। 'परिमल' के गीतो मे कुछ तो ऋतु सम्बन्धी है, कुछ शृगारिक गीत है, और कुछ

---

१ निराला . गीतिका, पृ० २७।

गीतों में उद्बोधन और प्रार्थना की झंकार है। 'सेवा' और 'पतनोन्मुख' शीर्षक गीत करुणरस की व्यंजना करते हैं। इस प्रकार आरम्भ से ही निरालाजी के गीतों में भाव-वैविध्य की सूचना मिलती है। परन्तु सभी गीतों में आत्मपरिक चित्रों की प्रमुखता है। निराला अपनी गीतकला को सँवारने में संलग्न हैं। उनकी प्रसन्न और आकाश-गामिनी मुद्रा सबमें व्याप्त है।

वहा हृदय-हर प्रणय समीरण
छोड छोर नभ ओर उड़ा मन,
रूप राशि जागी जगती तन
खुले नयन भाये[1]

'गीतिका' के गीतों में 'परिमल' के गीतों का ही भाव-विस्तार है। दोनों की आत्मा एक सी ही है। शृंगारिक भावना का अधिक विस्तार हुआ है। विरह और मिलन के विविध भाव समाहित हुए हैं। ऋतुगीतों में भी शृंगारिकता पूरी मात्रा में उपस्थित है।

'जागो जीवन धनिके', 'छोड दो जीवन यों न मलो', 'जला दे जीर्णशीर्ण प्राचीन', 'चाल ऐसी मत चलो' जैसे गीतों में सामाजिक जीवन के पक्ष अधिक स्पष्टता से उभर सके हैं। 'भारति जयविजय करे' जैसे राष्ट्रगीत भी लिखे गये हैं। परन्तु गीतिका में निराला का झुकाव आत्मशोध और आत्मसंस्कार की ओर भी कम नहीं है। उनके प्रार्थना-गीतों में जहाँ एक ओर उत्साह और नई कार्यनिष्ठा की चेतना है, वही दूसरी ओर आत्मनिवेदन की भावना भी भरपूर लक्षित होती है। 'गीतिका' में कतिपय दार्शनिक गीत भी आये हैं। 'जग का एक देखा तार', 'कौन तम के पार', 'पास ही रे हीरे की खान' गीतों में, कवि के जीवन दर्शन की झाकियाँ मिलती हैं। यों प्राय सभी गीतों में फिर वे किसी भाव की क्यों न हो, दर्शन का पुट विद्यमान है। मानव-छवियों में असीम सौंदर्य की प्रतिच्छवि देखी गई है। 'मार दी तुझे पिचकारी', 'नयनों के डोरे लाल गुलाल भरे, खेली होली' जैसी कविताओं में उद्दाम शृंगार के चित्र भी आये हैं। परन्तु वे विनोद की हल्की आभा से अनुरंजित हैं।

'गीतिका' के गीतों में विविध भावों की छटा होते हुए भी सौन्दर्य और शृंगार की ही प्रमुख छवियाँ अंकित हुई हैं। सब में कवि का प्रसन्न, कला-प्रिय और सौन्दर्यान्वेषी व्यक्तित्व दिखाई पड़ता है। इन गीतों की भाषा सुसज्जित, प्रवाहमयी और संस्कृत के सौष्ठव से समलंकृत है। जान पड़ता है कि कवि के पास छंदों की अपार राशि विद्यमान है। 'गीतिका' में ढूढने पर भी बिल्कुल समान दो छंद नहीं मिलेंगे। गीतों की सृष्टि में प्राय कविगण छंदों की बार-बार आवृत्ति करते है।

१ निराला : परिमल, पृ० ४३।

परतु निराला इसके अपवाद हैं। इसका कारण कदाचित यह है कि उनके गीतो मे शास्त्रीय रागो की कठोरता नही है। गायक को स्वतन्त्रता है कि वह किसी भी राग मे इन गीतो को बांध ले। सगीतकला की दृष्टि से इसे हम नया प्रसार भी कह सकते हैं; यद्यपि शास्त्रज्ञ इसमे परिनिष्ठित रागो की अवहेलना भी देख सकते हैं। गीतो के निर्माण मे निरालाजी ने पश्चिमी सगीत की भूमिकायें भी अपनाई है। सर्वत्र सम का ध्यान न रखकर भाव की पूर्णता और प्रसरणशीलता का अधिक निर्वाह किया है।

> अस्ताचल रवि, जल छल-छल छवि
> स्तब्ध विश्व कवि, जीवन उन्मन,
> मद पवन बहती सुधि रह-रह
> परिमल की कह कथा पुरातन [१]

चार पक्तियो मे समाप्त होने वाले भाव को टेक की भाति काम मे लाना विदेशी सगीत की ही शैली कही जायगी। इसका सगीत आर्केस्ट्रा की शैली का सा सगीत है। भारतीय गीतकार इसे अटपटा ही मानेंगे। 'परिमल' मे भी—

> एक दिन थम जायगा रोदन
> तुम्हारे, प्रेम-अचल मे,
> लिपट स्मृति बन जायगे कुछ कन—
> कनक सींचे नयन जल मे [२]

गीत भी आसानी से भारतीय पद्धति पर नही गाया जा सकता।

(ख) 'अनामिका' के गीतो मे भाव परिवर्तन

'गीतिका' के पश्चात् निरालाजी की दूसरी 'अनामिका' मे जो सन् ३८ मे प्रकाशित हुई, कुछ पुराने गीतो के साथ कुछ ३५-३६ के गीत सग्रहित है। इन पिछले गीतों मे निरालाजी का भाव-परिवर्तन स्पष्ट दिखाई देने लगा है। पहले ही गीत मे जो उनकी अपनी हस्तलिपि मे मुद्रित हुआ है, निराला के अन्त प्रमाण की सूचना मिलने लगती है।

> मुदें पलक, केवल देखें उर मे
> सुनें सब कथा परिमल-सुर मे,
> जो चाहे, कहे वे, कहे। [३]

---

१ निराला . गीतिका, गीत—६१, पृ० ६८।
२ निराला : परिमल 'निवेदन', पृ० ३२।
३ निराला : अनामिका—हस्तलिपि मे मुद्रित गीत।

इस गीत की भावना मे एक द्वियात्मकता है। एक ओर जग को निर्भय दृष्टि से देखने का और अतिशय सुख के सागर में बहने का उल्लेख है, तो दूसरी ओर सामाजिक संघर्षों को सहने और पलकें मूदने का भी संकेत है। निरालाजी के आरम्भिक गीतो मे इस प्रकार का द्वियात्मक भाव-संयोजन नही दिखाई देता। इसी प्रकार आवेदन (सन् ३७) 'फिर सँवार सितार लो' गीत मे समस्त बाह्य प्रकृति को स्वप्न की भाति सज्जित देखने की अभिलाषा व्यक्त की गई हैं, जो निराला की पूर्ववर्ती उल्लासमयी भाव भूमिका के अनुरूप नही है। यद्यपि 'विनय' और 'उत्साह' शीर्षक गीतो मे पूर्ववर्ती गीतो का सा शब्द-चयन है, फिर भी प्रारम्भिक गीतो का प्रवाह इनमे लुप्त होने लगा है और उसके बदले एक गम्भीरता आने लगी है। 'उक्ति' शीर्षक गीत मे निरालाजी प्रथम बार वैयक्तिक आत्मनिवेदन की भूमिका पर आते हैं—

कुछ न हुआ, न हो
मुझे विश्व का सुख-श्री यदि केवल
पास तुम रहो [१]

इसके बाद ही निराला का वह 'मरण-दृश्य गीत आता है जिसे हम उनके परवर्ती काव्य की आरम्भिक तिथि का आधार मानते हैं। इसकी रचना ५-१-३८ को हुई थी—

दिये थे जो स्नेह चुबन,
आज प्याले गरल के बन
कह रही हो हँस 'पियो प्रिय
पियो प्रिय निरुपाय '[२]

यद्यपि इस गरलपान को कवि ने अमृत मानकर पीने का प्रयत्न किया है, परन्तु इस गरल-पान ने निराला की गीत-दिशा बदल दी है, यह स्वीकार करना ही होगा। यही से निराला के गीतो का परवर्ती चरण प्रारम्भ होता है।

निराला के परवर्ती गीत

अपने परवर्ती गीतो के सम्बन्ध मे निरालाजी ने 'अणिमा' और 'अर्चना' की भूमिका मे दो छोटे वक्तव्य दिए हैं। 'अणिमा' मे वे लिखते हैं—'प्रायः सभी गीतो की भाषा सरल है। गाने की अनुकूलता और स्वर के सौन्दर्य और श्रुतिमधुरता के

---

१ निराला . अनामिका—उक्ति, (रचना १६-५-३८) पृ० १६० ।
२ निराला—अनामिका-मरणदृश्य, (रचना ५-१-३८) पृ० १३५ ।

विचार से पुस्तिका के प्रारम्भिक गीत मुझे ज्यादा पसन्द हैं। मेरे कुछ साहित्यिक मित्रो ने बाद के गीतो की तारीफ की है। उनकी भाषा गद्य के अनुसार है।[१]

इस वक्तव्य से दो तथ्यो पर प्रकाश पडता है। पहले का सम्बन्ध निरालाजी की रुचि से है। 'अणिमा' के आरम्भ मे जो गीत हैं, वे 'परिमल' और 'गीतिका'-शैली के हैं। स्वरसौन्दर्य और श्रुतिमधुरता के कारण वे निरालाजी को प्रिय हैं। यहाँ श्रुतिमधुरता से निरालाजी की सस्कृत पदावली का ही आशय लिया जा सकेगा। माधुर्य का गुण भाषा मे तभी आता है, जब उसमे उच्चारण का परिष्कार और सौष्ठव हो। बिना सस्कृत की सहायता लिये खडी बोली मे यह तत्व आना कठिन है। मधुरता का दूसरा उद्गम लोकभाषा की अपनी मिठास है परन्तु खडी बोली मे यह मिठास लोक-भाषा के माध्यम से कम ही आई है। कदाचित् इसीलिये अधिक सरल भाषा मे लिखे हुए अपने गीतो को निरालाजी 'गद्य के अनुसार' कहते हैं। इसका आशय यह है कि 'अणिमा' के गीतो मे वे अपनी दृष्टि से लोकभाषा का माधुर्य खडी बोली मे नही ला सके हैं, यद्यपि इसके लिए उन्होने निरन्तर प्रयत्न किया है, और आगे चलकर सफल भी हुए हैं।

'अर्चना' की स्वयोक्ति मे निरालाजी ने फिर इस प्रश्न को उठाया है और आसान खडी बोली मे गीत-रचना की कठिनाई का उल्लेख किया है। वे लिखते है, 'प्रस्तुत गीतो मे तद्वत् सफलता के न होने का कारण खडी बोली का पाठ, इसलिये गले से सफलतापूर्वक न उतर जाना है। साधारणजन देहातो मे यह भाषा नही बोलते। उनके गले और आधुनिक शरीर की नेमि अभी तक मजकर मसृण नही हुई है। खडी बोली की गाडी के और चलते रहने की आवश्यकता है। ये गीत जैसे उसी की पूर्ति करते है।'[२]

सस्कृत का साहचर्य छोड देने के पश्चात खडी बोली के गीतो के सामने यह प्रश्न अनिवार्य रूप से आता है कि इन गीतो मे गीत-माधुर्य किस प्रकार आये ? ब्रज-भाषा और अवधी के गीतो के लिये तो हिन्दी भाषियो के कान अभ्यस्त हैं और वे उन गीतो का रस भी आसानी से लेते हैं। परन्तु खडी बोली मे कई वर्ण ऐसे हैं जो हिन्दी की सामान्य जनता को अभ्यस्त नही हैं। खडी बोली के 'ण' का उच्चारण उन्हें वर्ण-कटु प्रतीत होता है, 'परन्तु भव-अर्णव की तरणी तरुणा' मे अनेकश आये हुये 'ण' के प्रयोग निराला के गीत मे विद्यमान है। ऐसे उच्चारणो को खडी बोली मे बहिष्कृत भी नही किया जा सकता और बहिष्कृत न करने पर हिन्दी के सामान्य श्रोताओ को वह ग्राह्य भी नही होता। इस द्विधात्मकता से किस प्रकार मुक्ति मिले, यह समस्या खडी बोली के गीतकार निराला के सामने थी। जैसा कि निरालाजी ने

१ निराला अणिमा की भूमिका।
२ निराला अर्चना की 'स्वयोक्ति'।

कहा है, खड़ी बोली की गाड़ी का अधिकाधिक चलते रहना और हिन्दी पाठकों के कानों का उनसे अभ्यस्त होते जाना इस द्वंद्व का एकमात्र उपचार है। निरालाजी ने प्रयत्न किया है कि वे सरल खड़ी बोली में लिखे गये अपने परवर्ती गीतों में स्वरों का अधिकाधिक संगीत भर दें, ताकि उच्चारण की कठिनाइयाँ और कानों का अनभ्यास क्रमश: तिरोहित हो जाय।

❸ परवर्ती गीतों का वर्गीकरण

द्वितीय 'अनामिका' के कुछ संक्रांतिकालीन गीतों को छोड़ देने पर (जिनकी चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं) 'अणिमा' 'अर्चना' 'आराधना' और 'गीतगुंज' संग्रहों में उनके गीतों की संख्या २६८ तक पहुँचती है। विश्वसनीय वक्तव्यों से ज्ञात होता है कि उनके परवर्ती काल के ६५ गीत अब तक अप्रकाशित हैं।[1] इन अप्रकाशित गीतों का विवरण हम नहीं दे सकेंगे। प्रकाशित गीतों में विनय, प्रार्थना या भक्ति के १०० गीत, आत्मनिवेदन या वैयक्तिक वेदना से संबन्धित ५१ गीत, ऋतुवर्णन के ४६ गीत, शृंगारिक भावना के २५ गीत, प्रयोग और प्रगति संबन्धी १६ गीत, दार्शनिक या आध्यात्मिक ८ गीत और १८ स्फुट गीत हैं। इन परवर्ती गीतों के विषयगत वर्गीकरण के साथ जब हम 'परिमल' और 'गीतिका' के पूर्ववर्ती गीतों की विषयगत तुलना करते हैं, तो यह स्पष्ट दिखाई देता है कि विषय प्राय: समान होते हुये भी उनके अनुपात में बहुत अन्तर है, जब कि 'परिमल' 'गीतिका' और दूसरी 'अनामिका' के, ३५ के पूर्व के गीतों में जिनकी संख्या १२२ है। (परिमल में १७, 'गीतिका' में १०१ दूसरी 'अनामिका' में ६४) शृंगारिक गीत सर्वाधिक हैं और तत्पश्चात ऋतुगीत दार्शनिक गीत, प्रार्थना, संकल्प और कर्मण्यता के गीत आते हैं। तब परवर्ती गीतों में दूसरी 'अनामिका' के १८ गीतों को छोड़कर शेष २६८ गीतों का अनुपात ऊपर दिया गया है। इस विषयगत वर्गीकरण से ही निरालाजी के पूर्ववर्ती और परवर्ती गीतों की भावभूमिका अन्तर स्पष्ट हो जाता है।

---

१ (क) श्री रामकृष्ण त्रिपाठी का लेख 'मेरे पिता निराला'- साप्ताहिक हिन्दुस्तान' ११ फरवरी ६२-' मेरे स्वर्गीय पिता कई अप्रकाशित पुस्तकें छोड़ गये हैं। जो उनके जीवनकाल में नहीं छप सकीं। जिनमें से एक तो ६५ गीतों का संग्रह है, हिन्दी-साहित्य को उनकी अन्तिम देन है और श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी के पास सुरक्षित है।"-पृ० ५०।
(ख) डा० शिवगोपाल मिश्र: 'निरालाजी का काव्य-साहित्य' लेख– निराला' पत्रिका, बसंतपंचमी, १९६२ -पृ० १६
"इधर उन्होंने कुछ गीत और भी लिखे थे, परन्तु वे इस संग्रह (गीतगुंज) में संकलित नहीं हो पाये।"

२ देखिये–इस प्रबन्ध का विस्तृत परिशिष्ट।

'अणिमा' 'अर्चना' 'आराधना' और 'गीतगुज' सग्रहो मे, जो निरालाजी की परवर्ती काल की रचनायें है, प्राय. १०० गीत विनय, प्रार्थना, भक्ति या स्तवन के हैं। इन भक्तिगीतो के सबन्ध मे निरालाजी ने 'अर्चना' की भूमिका मे लिखा है "इनका अतरग विषय यौवन से अतिक्रात कवि के परलोक से सम्बद्ध है, इसलिए यहा सम्मति का फल निष्काम मे ही होगा।"[1] निरालाजी के इन वाक्यो को ही लेकर हिन्दी के कुछ समीक्षको ने इन्हे परपरागत भक्ति-काव्य के स्वर पर रख कर देखा है, परन्तु निराला का आशय निष्काम भावना के आग्रह से है। परलोक शब्द से वे केवल इस लोक की बहिर्मुखी प्रवृत्तियो का निषेध कर रहे है। हमारी समझ मे इन गीतो मे शातरस की योजना का ही लक्ष्य है। निराला का कवि-व्यक्तित्व यहाँ आकर पूर्ण नि सग हो गया है और वे सासारिक वैषम्यो का स्पष्ट विरोध न कर सब कुछ उस पराशक्ति पर छोड देते हैं, जो इस विश्व की नियामिका है। लेकिन इसका यह अर्थ नही कि निराला इस लोक के परे किसी परलोक की साधना मे सलग्न है। एक अद्वैतवादी कवि के लिए लोक और परलोक का द्विधात्मक या दुहरा पक्ष रह भी नही सकता। हम यह अवश्य देखते हैं कि इन विनय-गीतो मे निरालाजी प्रथम पुरुष का प्रयोग करते हैं। जिन गीतो मे वे अपनी निजी वेदना को व्यक्त करते है और उक्त वेदना के निवारण का आश्वासन मागते हैं, वे भले ही वैयक्तिक गीत कहे जा सकते हैं, पर उनके अतरग मे भी एक समष्टिगत भावना विद्यमान है। किन्तु इसके अतिरिक्त निरालाजी के ऐसे विनयगीत भी हैं, जिनमे प्रथम पुरुष के माध्यम से सृष्टि मात्र की मगल-कामना की गई है।

हिम के आतप के तप को झुलसो
नाम-वारि के वारिध हुलसो
भीगे कठिन घटा निष्पावन,
चले चतुर्दिक हल अभिभावन,
बोये बीज सीझ कर उलसो।[2]

इन पक्तियो मे कवि की प्रार्थना है कि नाम की शक्ति से ससार के हिम और आतप का ताप नष्ट हो जाय। अपवित्र धरा आर्द्र हो उठे। नई कृषि लहलहा उठे, जो नवीन सास्कृतिक बीज युग भूमिका पर बोये गये हैं, वे विशद रूप मे अकुरित और पुष्पित हो।

जहाँ केवल आराध्य की रूप-छवि का वर्णन है वहाँ भी उस छवि का आनन्द कोई व्यक्ति विशेष नही लेता, सारा ससार लेता है।

---

१ निराला . अर्चना की 'स्वयोक्ति'।

२ निराला ; आराधना-गीत-२६ (रचना- १४-११-५२)

जावक जय चरणों पर छाई
पलक-पलास डाल कलि आई।
थोक अशोक-कोकनद फूले
मधु के मंद भौरे दिक् भूले,
मानव के मन जीवन तूल,
ऋतु की ऋतु अवनी भर आई।[1]

जिनके चरणों में रक्त जावक की अरुणाई छाई हुई है और जिसकी श्रीशोभा को देखकर मनुष्यों की पलकें पलास की डाल की भाँति खिल उठी है। सारी प्रकृति मे आमोद भर गया है। मनुष्यों के मन नई जीवनशक्ति से आपूरित हो गये है। यहाँ भी दिव्यशक्ति का रूप-सौंदर्य किसी व्यक्ति विशेष को नही, समस्त सृष्टि को आमोदित करता है। जब जब निरालाजी अपने भीतर किसी शून्यता का अनुभव करते हैं और रिक्तता को भरने के लिए, आत्मशक्ति का आवाहन करते हैं तब तब व प्रकृति को भी उसी शून्यता मे रगी पाते हैं और जब दिव्यशक्ति की करुणा उन पर होती है तो सारी प्रकृति भी उस करुणा की अधिकारिणी बनती है। निरालाजी अनुभव करते हैं कि ससार मे जहाँ कही सत्य है, सुकृति है, उर्वरता है, वहाँ सर्वत्र उसी अनन्त शक्ति का निवास है।

सत्य माया वहाँ जाना, दान तेरा ही वहा है।
जहा भी पूजा चढ़ी है, मान तेरा ही वहाँ है।

× × ×

जिस प्रवर्षण भूमि उवर, जिस तपन मरु धूम्र धूमर,
जिस पवन लहरा, दिगन्तर, ज्ञान तेरा वहाँ है।[2]

ऊपर के कतिपय उदाहरणों से यह अनुमित होता है कि निरालाजी की आध्यात्मिक चेतना अन्तरमुखी या वैयक्तिक नही है। निराला का आराध्य सगुण और निर्गुण दोनों है और दोनो से परे भी है। नेति-नेति कह कर सकेतित किया गया है। वह न केवल निर्गुण है और न सगुण। मनुष्य की बुद्धि और धारणा म आने वाले समस्त स्वरूप सीमित हैं और वे उस उत्तम तत्व का पूर्णता म आकलन नहीं कर सकते। उनकी तत्व सबधी कल्पना इस प्रकार है—

पूछा जग ने वह राम कौन
बोली विशुद्धि जो रही मौन
वह जिसके इन, म स्योढ़-मौन,
जो वेदो मे है सत्य, राम।

१ निराला आराधना-गीत ४०, (रचना-१६ ११ ५२)
२ निराला आराधना गीत ३५ (रचना १२ ११ ५२)

वह सूर्यवंश सम्भूत सभी,
जीवन की जय का सूत सभी,
कृष्णार्जुन हारण पूत सभी,
जो चरण विचारण विना दाम।[1]

कहीं-कहीं निरालाजी ने पुराने भक्त-कवियों की तरह विशुद्ध भक्ति-प्रेरित गीत भी लिखे हैं, जिनमें भजन, कीर्तन और जप आदि के भाव भी आये हैं।

काम रूप हरो काम,
जपू नाम, राम, राम।[2]

अथवा

हरि का मन से गुण गान करो,
तुम और गुमान करो, न करो।
स्वर गंगा का जलपान करो,
तुम अन्य विधान करो, न करो।
निशि वासर ईश्वर ध्यान करो,
तुम अन्य विमान करो, न करो।
ठग को जग-जीवन-दान करो,
तुम अन्य प्रदान करो, न करो।[3]

एक अन्य गीत में श्याम की छवि को सूरदास की भाँति जगत के समस्त रूपों में व्याप्त दिखाया है।

जिधर देखिये, श्याम विराजे,
श्याम कुंज, वन, यमुना श्यामा,
श्याम गगन, घन-वारिद गाजे।
श्याम धरा, तृण-गुल्म श्याम हैं
श्याम सुरभि-अंचल दल साजे।[4]

पर, इस प्रकार के पुरानी शैली के गीत उन्होंने अधिक नहीं लिखे हैं और इन्हें हम उनकी गीत-सृष्टि का एक आनुषंगिक अंश ही कह सकते हैं। कहीं-कहीं निरालाजी अपने परवर्ती गीतों की सरल शैली को छोड़कर क्लिष्ट शब्दावली का प्रयोग भी करते हैं। परन्तु ऐसे गीत संख्या में नगण्य है—

१ निराला : आराधना-गीत-२०, (रचना १८-६-५२)
२ वही, गीत, २०, (रचना १३-६-५२)
३ निराला : अर्चना-गीत, ४४ (रचना २४-१-५०)
४ निराला : गीतगुंज-गीत १२-(रचना १५-८-५४)।

जलद-पयोधर-भास,
रवि-शशि-तारक-हारा,
व्योम-मुखच्छवि सारा।
शतधारा पय-हीना।
ऋषिकुल-कल-कण्ठ स्तुति,
दिव्य-शस्य-सकलाहुति,
निगमागम-शास्त्र श्रुति
रासभ-वासव-वीणा[१]

कहीं वे अत्यत छोटे छद मे गीत रचना कर अपनी आलकारिक शक्ति का परिचय देते हैं—

गत शत पथ पर
निर्जर रथ पर
तिमिर तीर हर तरुणे।
नि सशय क्षय,
हँसा पराजय,
रवा काम, भय, करुणे।[२]

सामान्यत. निराला के विनय, प्रार्थना और भक्ति-गीतो का यही विवरण है।

● (२) आत्मपरक गीत

निरालाजी के विनय और भक्तिपरक गीतो से मिलती जुलती भावधारा के उनके आत्मपरक गीत हैं। अतर करने के लिये हम उन गीतो को आत्मपरक कहते हैं, जिनमे कवि ने अपने वैयक्तिक सुख-दुख या आनन्द-विषाद की भावना व्यक्त की है। यद्यपि यह भावना अतत आत्मनिवेदन या वैयक्तिक शरणागति से ही सबद्ध होने के कारण एक अर्थ मे विनय भावना भी कही जा सकती है, परन्तु जब कि निरालाजी के विनय और भक्तिपरक गीतो मे लोक-जीवन के सस्कार या भाव निहित है, तब इन आत्मपरक गीतों मे निरालाजी अधिकतर अपनी निजी वेदना और कष्टो तथा यत्र-तत्र अपनी आत्मिक शांति और आह्लाद का प्रकाशन करते हैं। जहाँ वे अपनी ढलती हुई उम्र, गिरते हुए स्वास्थ्य या और अपने एकाकीपन का वर्णन 'मैं अकेला' 'स्नेह निर्झर बह गया है' जैसे गीतो मे करते हैं, तो दूसरी ओर 'आज मन पावन हुआ है' तथा 'जननि मोहमयी तमिस्रा दूर मेरी हो गयी है' जैसी पक्तियो मे वे अपनी आत्मिक सुखशांति और निर्वेद का भी वर्णन करते हैं।

---

१ निराला अर्चना-गीत ६१ (रचना ६-२-५०)
२ निराला आराधना-गीत ९० (रचना २३-१-५०)

कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

आत्मव्यथा— मैं अकेला
देखता हूँ, आ रही
मेरे दिवस की सान्ध्य वेला।
पके आधे बाल मेरे,
हुए निष्प्रभ गाल मेरे,
चाल मेरी मन्द होती आ रही,
हट रहा मेला।[१]

शारीरिक जीर्णता— स्नेह-निर्झर बह गया है।
रेत ज्यो तन रह गया है।
आम की यह डाल जो सूखी दिखी
कह रही है—अब यहाँ पिक या शिखी
नही आते, पक्ति मैं वह हूँ लिखी
नही जिसका अर्थ—
जीवन दह गया है।[२]

मानसिक प्रसन्नता— आज मन पावन हुआ है,
जेठ मे सावन हुआ है।
अभी तक दृग बन्द थे ये,
खुले उर के छन्द थे ये,
सजल होकर वन्द थे ये,
राम अहिरावण हुआ है।[३]

दार्शनिक शान्ति— जननि, मोहमयी तमिस्रा दूर मेरी हो गयी है।
विश्व-जीवन की विविधता एकता मे खो गई है।[४]

कुछ गभीरता से इन आत्मपरक गीतो को देखने पर यह प्रकट होता है कि निरालाजी के ये गीत क्रमश उनके व्यक्तित्व के गहन और व्यथामय अनुभवो से अधिकाधिक मार्मिक होते गये हैं, यद्यपि ये गीत अतत प्रार्थनापरक होने के कारण एक आध्यात्मिकता, आस्था और आश्वासन का प्रश्रय लिये हुए हैं। इनकी तुलना

---

१ निराला : अणिमा—पृ० २० (रचना, ४०)
२ निराला : अणिमा—पृ० ५५ (रचना, ४२)
३ निराला : आराधना-गीत १० (रचना, २६–८–५२)
४ निराला : अणिमा—पृ० ६२ (रचना, ४२)

निराला और निरनिशय विषाद-मूलक कतिपय नये कवियों के गीतों से नहीं की जा सकती। एक मार्मिक आत्मपरक गीत इस प्रकार है—

> बांधो न नाव इस ठाँव, बन्धु !
> पूछेगा सारा गाँव बन्धु !
> वह हँसी बहुत कुछ कहती थी,
> फिर भी अपने में रहती थी,
> सबकी सुनती थी, सहती थी,
> देती थी सबके दाँव बन्धु ! [१]

यहाँ निरालाजी अपनी वैयक्तिक अनुस्मृति से उस प्रेयसी का वर्णन करते हैं जो सकीर्ण, सामाजिक बन्धनों में बँधकर भी अपने प्रेम का निर्वाह कर सकी है। एकदम वैयक्तिक सवेदना लिये हुए अनेक मर्मस्पर्शी गीतों में से केवल दो के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

> क्यों मुझको तुम भूल गये हो ?
> काट डाल क्या, मूल गये हो।
> नहीं ज्ञात, उत्पात हुआ क्यों ?
> ऐसा निष्ठुर घात हुआ क्यों,
> विमल-गात अस्नात हुआ क्यों,
> बढ़ने को प्रतिकूल गये हो ? [२]
>
> × × ×
>
> निविड विपिन, पथ अराल;
> भरे हिंस्र जन्तु-व्याल।
> अधकार के दृढ कर
> बँधा जा रहा जर्जर
> तन उन्मीलन निःस्वर,
> मन्द्र-चरण मरणताल। [३]

स्पष्ट है कि इन पंक्तियों में निराला के वैयक्तिक कष्ट, पीड़ा और उनसे मुक्ति पाने की आहत अभिलाषा ही व्यक्त हुई है। इन गीतों में करुण रस की सशक्त और मार्मिक अभिव्यंजना हो सकी है।

जिन गीतों में निरालाजी का स्वर अधिक वैयक्तिक भूमि पर मुखरित हुआ है, वहाँ या तो कवि ने अपने विषण्ण मन के लिये उपचार और सबल

---

१ निराला अर्चना-गीत ३७ (रचना २३-१-५०)
२ निराला अर्चना-गीत ५४ (रचना २६-१-५०)
३ निराला अर्चना-गीत ४० (रचना २३-१-५०)

चाहा है अथवा नये प्रकाश की याचना की है, या नैतिक बल और साहस की माँग की है।

गीत गाने दो, मुझे तो
वेदना को रोकने को।
चोट खाकर राह चलते
होश के भी होश छूटे,
हाथ जो पाथेय थे, ठग-
ठाकुरों ने रात लूटे।
× × ×
बुझ गई है लौ पृथा की,
जल उठो फिर सींचने को।[1]

निराला के ये गीत कहीं भी आत्मपराजय के परिचायक नहीं हैं। अधिक से अधिक वे हारे हुये मन के लिये एक छाया या आश्वासन का सन्धान करते हैं।

(३) ऋतु और प्राकृतिक गीत

निराला के परवर्ती गीतों की यह उल्लेखनीय विशेषता है कि इनमे विषयगत अंतर होते हुये भी मूलवर्ती भावना का बहुत कुछ साम्य है। यह मूलवर्ती भावना आत्मनिवेदनात्मक है। इसे हम निरालाजी के प्रशांत और अनुद्विग्न मानस का प्रतिफलन भी कह सकते हैं। यहाँ आकर निराला के प्रार्थनापरक गीत उनके ऋतु-गीतों से उनके शृंगारिक गीत, उनके विनय गीतों से भावनात्मक आदान-प्रदान करते रहते हैं। इन गीतो मे निराला अपनी प्रारम्भिक प्रगल्भता छोड बैठे हैं और एक वस्तुमुखी प्रसन्नतर-चेतना से सपन्न हो गये हैं। हम पहले उल्लेख कर चुके है कि निराला के आरम्भिक गीतो मे प्रिया-प्रियतम की छवियाँ उनके प्रकृति-गीतो मे भी उभर उठी हैं। यह एक प्रकार की आलकारिक सृष्टि है, जिसके मूल मे शृंगारिक सौंदर्य-भावना का सक्रमण हुआ है। इस प्रकार की आलकारिकता उनके परवर्ती प्रकृति-गीतो मे नही रह गई है। कही कहीं उनके इन प्रकृति-गीतो मे करुण और रौद्र भावना भी मिलती है, जो उनकी वैयक्तिक मन स्थिति की छाया भी कही जा सकती है। इस प्रकार के रौद्र चित्र उनकी आरम्भिक 'बादलराग' की कविताओं मे भी विद्यमान हैं, पर वहाँ वह रौद्र, एक क्रांति और परिवर्तन की प्रेरणा से समन्वित है। परवर्ती काल के रौद्र-भावों मे शान्ति का स्वर नही, आहत वेदना का स्वर ही प्रमुख है।

हर-हर हरसी-समीर, ...
जीवनभ्यौवन-अधीर, ...

१ निराला : अर्चना गीत–५६ (रचना ६–२–५०)

चले तीक्ष्ण-तीक्ष्ण तीर,
छूटे गृह-वन के सम्बल[1]

परन्तु इस प्रकार के प्रकृति के रौद्र गीत सख्या मे बहुत कम हैं। निराला के परवर्ती ऋतु गीतो में प्रसन्नता का स्वर ही प्रधान है। जान पडता है कि जिन क्षणो मे निराला को अपने वैयक्तिक शारीरिक कष्टों से राहत मिली है, उन्होंने प्रकृति की रमणीयता मे अपना दिल बहलाया है अथवा यह भी कह सकते हैं कि प्रकृति की रमणीय सुषमा से निराला अपने कष्ट-निवारण का प्रयत्न भी करते हैं। यदि कोई एक आधार-वस्तु ऐसी है, जो निराला को उनके समस्त काव्य-काल मे अव्याहत रूप से आह्लादक रही है, सामाजिक और मानसिक सघर्षों की विभीषिका से यदि कोई वस्तु उनको सात्वना देती रही है, तो वह प्रकृति की अशेष सौन्दर्य-राशि ही है। निराला ने अपने समस्त काव्य-रचना-युगों में नाना विषयो और शैलियो को अपनाया और उनके प्रति अपनी अनेकमुखी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त कीं, पर प्रकृति के प्रति उनकी आस्था अटूट बनी रही है। प्रकृति निरालाजी के लिए एक औषधि या उपचार का काम देती रही है –

बौरे आम कि भौंरे बोले।
प्रात कि गात पात के तोले।
सरसाई समीर मधुवन की,
आँखों छबि आई आनन की,
आलस दूर हुआ, मन भाया,
चिडियों ने सुख के मुख खोले।[2]

निराला जब कभी ये प्रकृति-गीत लिखते हैं, तब ग्रामांचल की सुषमा और ग्राम-वधू की याद नही भूलते। इससे यह सूचित होता है कि निराला के मानस मे दिगत प्रसरित उस प्रकृति का छायाचित्र नृत्य करता रहा है, जो नगरो की अट्टालिकाओ से ओझल नही है अथवा जिसका सृजन बन्द कमरे में बैठकर नहीं किया जा सकता।

हरियाली के झूले झूले
ग्राम वधू सुख से दुख भूले,
गहरे गहें मधुर जो भूलें,
करषो है समीर के स्पन्दन[3]

---

१ निराला गीतगुंज-गीत ५ (रचना ८-१-५४) पृष्ठ २७, द्वि० सस्करण।
२ निराला . गीतगुंज-गीत ३ (रचना २६-२-५४)।
३ निराला : गीतगुंज-गीत १४ (रचना १७-८-५४)।

अथवा
घात ही चली निशा और कुछ,
रवि की खेती बढ़ी, पौर कुछ
गाव-गाँव साठी को काटे
खुश होते हैं बातें कर-कर[1]

यद्यपि ये प्रकृति गीत 'अणिमा', 'अर्चना', और 'आराधना' मे भी छिटपुट बिखरे हैं पर उनके अतिम काव्यसग्रह 'गीतगुज' के अधिकांश गीत प्रकृति और ऋतु सम्बन्धी है। जब कि अन्य गीत-सृष्टियो मे निरालाजी ने अधिक साहित्यिक और शास्त्रीय सगीत के स्वरो का प्रयोग किया है, तब प्रकृति और ऋतु-गीतो मे उन्होने लोक-गीतो की सहज और उच्छल ध्वनियो का अधिक आधार लिया है।

गोरे अधर मुसकाई
हमारी बसन्त विदाई।
अग-अग बल खाई
हमारी बसन्त विदाई।
भाल लगा ऊषा का टीका,
चमका सहज सदेशा पी का,
छूटा भय पति पावन जी का,
फूटी अरुण अरुणाई,
कि छुट गई और सगाई।[2]

(४) शृंगारिक गीत

एक ओर जहा निराला के प्रकृति-गीतो की सख्या उनके परवर्ती काव्य मे बढती चली गई हैं, वहा नारी शृगार सम्बन्धी उनके गीत सख्या मे कम होते गये हैं। सन् ४१, ४२ तक उनके शृगारिक गीत फिर भी उनके अन्य गीतो के साथ समतुल्य कहे जा सकते है। परन्तु 'अर्चना' 'आराधना' और 'गीतगुज' मे उनकी सख्या उँगलियो पर गिनी जा सकती है। इसका स्वाभाविक कारण यह है कि निराला की आत्म-चेतना ज्यो-ज्यो उदात्त होती गई, त्यो-त्यो, नारी के सयोग वियोग के प्रति उनकी भावना मद होती गई है। शृगार सम्बन्धी जितने भी गीत उनकी इन सग्रह-पुस्तको मे हैं, उनमे मिलन-विरह की प्रधानता नही है, बल्कि नारी की सात्विक छवियां अधिक अकित हुई हैं। 'अणिमा' मे आई 'नुपूर के सुर मद रहे'

१ निराला : गीत गुजन, गीत—२६ (रचना ८-११-५५)।
२ निराला आराधना—गीत ६४ (रचना, ३-५१)।

विशुद्ध नारी-शृंगार की रचना है। परन्तु इसके पश्चात लौकिक शृंगार की ओर निरालाजी कम ही गये हैं। स्वयं निरालाजी सन् ४३ के अपने एक गीत में लिखते हैं—

खुले उर की प्रेमिका की
गंध का वाहक नहीं अब
मुक्तनयना संगिनी का
पथिक परिचायक नहीं अब,

× × ×

बरसने को गरजते थे
वे न जाने, किस हवा से
उड़ गये हैं गगन में घन,
रह गये हैं नयन प्यासे, [१]

कदाचित् यह गीत निराला की शृंगारिक भावना में एक नए पट-परिवर्तन की सूचना देता है और नारी-शृंगार से हटकर प्रकृति-शृंगार की ओर उनकी मन स्थिति का लगाव जहा एक ओर उनके स्वाभाविक वय विकास की सूचना देता है, वहा दूसरी ओर वह उनकी नारी के प्रति क्रमश आने वाली गभीर और उदात्त भावना का भी परिचायक बन गया है। सन्, ५० का लिखा उनका प्रसिद्ध 'तन की, मन की, धन की हो तुम' गीत समग्र रूप से उनके परिवर्तित मनोभाव का निर्देशक है।

तन की, मन की, धन की हो तुम।
काम कामिनी कभी नहीं तुम,
सहज स्वामिनी सदा रहीं तुम,
स्वर्ग-दामिनी नदी बही तुम,
अनयन नयन-नयन की हो तुम। [२]

यहां यद्यपि नारी की शृंगारिक छवि है, उसे 'स्वर्गदामिनी नदी' कहकर उसका रूपायन किया गया है, परन्तु दूसरी ही पंक्ति में उसे सासारिक नयनों के लिए अनयन भी कहा गया है। अर्थात् वासनात्मक दृष्टि से उसकी दूरी और अप्राप्ति बताई गई है। नारी की यह छवि एक ऐसी दिव्यता लिये हुए है, जिसकी अनेकश वर्णना निराला ने उन गीतो मे हुई है, जिनमें उन्होंने जननि या माँ कहकर

१ निराला . अणिमा, पृ० १०२ (रचना, ४३)।
२ निराला : अर्चना, गीत—२ (रचना १२-१-५०)।

अपनी उपासना व्यंजित की है। कहा जा सकता है कि इन शृंगारी गीतों की भावना निराला के उपासना-गीतों के समकक्ष पहुँच गई है।

एक अन्य गीत है—

रंग भरी किस अंग भरी हो ?
गात हरी किस हाथ वरी हो ?
जीवन के जागरण-शयन की,
श्याम-अरुण-सित-तरुण-नमन की,
गन्ध-कुसुम-शोभा उपवन की,
मानस-मानस में उतरी हो;
जीवन-जोवन से सँवरी हो।[1]

यद्यपि इस गीत मे नारी की शारीरिक शोभा का, उसके इन्द्रियाकर्षण का वर्णन किया गया है, परन्तु उसके प्रति कवि की दृष्टि समस्त शारीरिक सवेदनों से ऊपर उठकर विशुद्ध मानस-भूमि पर पहुँचती है।

इन शृंगारिक गीतो में यह भी दर्शनीय है कि चूकि इनमें अपार्थिव भावना का योग बढता गया है, इसलिये इनकी भाषा मे सस्कृत पदावली का अपेक्षाकृत योग हुआ है। यदि निरालाजी के अन्य विषयक गीतों से उनके शृंगारिक गीतो की शब्द-रचना की तुलना की जाय, तो यह अन्तर सर्वत्र दिखाई देता है। निराला की बदलती हुई गीत-भाषा के मर्म को समझने के लिए हमें उनके इन शृंगारिक गीतो की भाषा पर स्पष्टतापूर्वक विचार करना होगा। कुछ समीक्षक निराला की छायावादी भाषा और उनकी परवर्ती सहज भाषा का अन्तर बताते हुये यह कहते हैं कि निराला क्रमशः कल्पना की आकाशीय भूमिका से उतरकर पृथ्वी पर आये हैं। आदर्श जगत से वास्तविक जगत का साक्षात्कार किया है और इसीलिए उनकी परवर्ती भाषा मे उनके यथार्थोन्मुख भावो की छाया है। परन्तु हमारी दृष्टि मे निराला की भाषा छायावादी और प्रगतिवादी आधार पर विभाजित नहीं की जा सकती। वे आरम्भ से भावानुरूप भाषा-परिवर्तन करते रहे हैं और उनकी भाषा का एकमात्र नियामक तत्व उनकी भाव-प्रकाशन की आवश्यकता है। उनकी भाषा मे सरलता और सघनता उनके पूर्ववर्ती रचनाकाल मे भी है और परवर्ती रचनाकाल में भी। भाषा का संबंध किसी वाद से बताना कम से कम निराला-काव्य के आधार पर सिद्ध नही किया जा सकता।

निराला के परवर्ती शृंगारी गीतो मे अभिव्यंजना की प्रणाली सीधी और इतिवृत्तात्मक होती गयी है। इसकी लाक्षणिक वक्रतायें घटती गयी हैं और वे क्रमशः

---

१ निराला : अर्चना, गीत-२४ (रचना १६-१-५०)।

अभिव्यजना के शिल्प-चमत्कार को छोडकर अभिव्यग्य वस्तु की अलकारहीन रचना करने लगे हैं।

प्रिय के हाथ लगाये जागी,
ऐसी मैं सो गयी अभागी।
हर सिंगार के फूल झर गये,
कनक रश्मि से द्वार भर गये,
चिडियो के कल कठ मर गये,
भस्म रमाकर चला विरागी।[1]

चमत्कारहीन सरल अभिव्यजना मे भी भावो का अशेष गाम्भीर्य समाया हुआ है।

● (५) दार्शनिक गीत

दार्शनिक गीत से प्राय तत्व निरूपक और बुद्धिप्रधान उन गीतो का आशय लिया जाता है, जिनमे कवि अपने विचारो को रूप देता है। परन्तु विचार की भूमिका जब क्रिया या समर्पण मे परिणत हो जाती है, तब उसका स्वतत्र स्वरूप नही रह जाता। हम कह सकते हैं कि निराला की बौद्धिक दार्शनिकता क्रमश एक तरल और आर्द्र जीवन-दर्शन मे परिणत होती गयी है और इसलिए उनके स्वतत्र, दार्शनिक या विचारात्मक गीत क्रमश कम होते गये हैं। दार्शनिकता रहस्योमुख अनुभूति में परिणत होती गयी है या अर्चना का स्वरूप ग्रहण करती गई है। निराला के परवर्ती गीत अहकार के विलय के गीत हैं। अतएव उनम 'अह ब्रह्मास्मि' की दार्शनिक चेतना कम होती गई है। यद्यपि उसका मूलतत्व आत्मप्रसार और आत्मविसर्जन उनके अधिकाश गीतो म अतर्निहित या अनुस्यूत है। निराला की दार्शनिकता का वह रूपान्तर तीन सरणियों मे देखा जा सकता है।

(१) विश्व मे व्याप्त एक सार्वत्रिक सत्ता का रहस्यात्मक अनुभव,[2]
(२) मानव-मानव की एकता का मानवतावादी आकलन,
(३) वैयक्तिक सुखदुख का समष्टि सुखदुख मे विलीनीकरण।

इनम से प्रत्यक का एक-एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

सत्य पाया जहाँ जग ने, दान तेरा ही वहाँ है।
जहाँ भी पूजा चढी है, मान तेरा ही वहाँ है।

---

१ निराला अर्चना, गीत ६८, (रचना ७-२-५०)

२ देखिये, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का मत 'निराला के काव्य म वेदान्त की सहायता से विश्व को एक सत्ता मानने की भावना है'–राष्ट्रभाषा की कुछ समस्यायें।

जिस प्रवर्पण भूमि ऊर्वर, जिस तपन मरु धूम-धूसर
जिस पवन लहरा दिगन्तर, शान तेरा ही वहां है ।[1]

× × ×

मानव का मन शांत करो हे ।
काम, क्रोध, मद, लोभ दंभ से
जीवन को एकान्त करो हे ।
हिलें वासना-कृष्ण-तृष्ण उर,
खिलें विटप छाया-जल-सुमधुर,
गूंजें अलिगुंजन के नूपुर
निज-पुर-सीमा-प्रान्त करो हे ।[2]

× × ×

दुख भी सुख का वन्धु वना,
पहले की वदली रचना,
परम प्रेयसी आज श्रेयसी,
भीति अचानक गीति गेय की,
हेय हुई जो उपादेय थी,
कठिन, कमल कोमल वचना ।[3]

(६) प्रगतिशील और प्रयोगशील गीत

राजनीति की भूमिका पर निराला ने भारत की भाग्य-लक्ष्मी को जगाने का उपक्रम 'जागो जीवन धनिके' गीत मे वहुत पहले किया था। देशप्रेम और राष्ट्रीय गौरव से आपूर्ण उनका 'भारति जय विजय करे' गीत उनकी पूर्ववर्ती गीति-रचना का सुमेरु ही कहा जा सकता है। इसी राष्ट्रीय और मानवीय चेतना का रूपांतर निराला के परवर्ती समाजोन्मुख गीतों मे हुआ है, उन्हे ही हम उनके प्रगतिशील गीत कहते हैं। देशप्रेम की भावना निराला के व्यक्तित्व मे अक्षुण्ण बनी रही है। उनका एक परवर्ती गीत इस प्रकार है—

भारत ही जीवन-धन
ज्योतिर्मय परम-रमण
सर-सरिता वन-उपवन
तप पुंज गिरि-कन्दर,
निर्झर के स्वर पुष्कर

१ निराला : आराधना-गीत ३५, (रचना १५-११-५२)
२ निराला : अर्चना-गीत ४८, (रचना २५-१-५०)
३ निराला : आराधना-गीत ५२, (रचना ७-१२-६२)

दिक्प्रान्तर मर्म मुखर
मानव-मानव जीवन ।[1]

भारतीय मानव विश्व मानव-जीवन का प्रतिनिधि है। इस राष्ट्रीय भावना को पल्लवित करते हुये निराला ने अपने प्रगतिशील गीतो में आज के मनुष्यजीवन के वैषम्यो और विकृतियो का व्यगात्मक चित्र प्रस्तुत किया है। इसलिये हमने अन्यत्र कहा है, 'निराला की प्रगतिशीलता उनकी मानवीयता का अपर पर्याय है। एक स्थान पर वे लिखते हैं—

मां अपने आलोक निखारो,
नर को नरक-त्रास से वारो।
विपुल दिशावधि शून्य वर्गजन,
व्याधि-शयन जर्जर मानव मन,
ज्ञान-गगन से निर्जर जीवन
करुणा करो उतारो, तारो।[2]

आज मनुष्य नानावर्गों मे विभाजित है। इसी कारण उसका मन व्याधि-जर्जर हो रहा है। जब तक मनुष्य इस स्थिति मे रहेगे, तब तक उन्हें नरक-त्रास पाना होगा। इस त्रास से बचने के लिये निरालाजी मार्गनिर्देशन करते हैं—

पथ पर बेमौत न मर,
श्रम कर तू विश्रम-कर।
उठा-उठा करद हाथ,
दे दे तू वरद साथ,
जग के इस सजग प्रात
पात-पात किरनें भर ।[3]

यह श्रम-शिक्षा वर्गीय श्रम की शिक्षा नही है। सहयोग पूर्वक ससार मे एक नया प्रभात लाने का सामूहिक सदेश है। इन गीतों मे प्रगतिशीलता का स्वरूप किस प्रकार मानव के सर्वोदय से सयुक्त है, इसका परिचय हम यहाँ पा सकते हैं।

जब निरालाजी आज के विश्वसमाज मे इस सहयोगी आदर्श का परिचय चिन्ह नहीं पाते, तब वे विचलित हो कर खीझ उठते हैं और तब इस प्रकार के उद्‌गार व्यक्त करते हैं—

---

१ निराला : अणिमा-पृ० ६७, (रचना ४२)
२ निराला : अर्चना गीत-१०८, ।
३ वही, गीत-६२, (रचना १४-२-५०)

मानव जहाँ बैल घोड़ा है,
कैसा तन-मन का जोड़ा है?
किस साधन का स्वाँग रचा यह
किस बाधा की बनी त्वचा यह,
देख रहा है विज्ञ आधुनिक
वन्य भाव का यह कोड़ा है।[१]

निराला के इस मानववाद मे द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की छाया कही नही है। अपनी इस खीझ और वितृष्णा को स्वर देते हुए निरालाजी प्रयोगशील चमत्कारो पर उतर आते हैं और इस प्रकार उनकी प्रगतिशील भावना प्रयोग-शैली मे व्यक्त होकर अपना असर खोने लगती है। स्मरण रखना है कि मानसिक विक्षेप की स्थितियाँ उनके स्वस्थ क्षणों के इतने समीप हैं कि रह रह कर वे निराला के भाव-मानस पर आक्रमण करती हैं। जब तक निराला इस आक्रमण का प्रतिकार कर सकते हैं; करते हैं। परन्तु जब विक्षेप का आवेग प्रमुख हो जाता है, तब निराला की रचना मे प्रयोगात्मकता प्रवेश कर जाती है और तब निराला का भाव-पक्ष शब्दों की भूल-भुलैयों मे अवसित होने लगता है। हम अन्यत्र लिख चुके हैं कि 'आज मन पावन हुआ है, जेठ में सावन हुआ है, की सुन्दर पंक्तियों के साथ जब वे निम्नलिखित वाक्य लिखते हैं—

कटा था जो पटा रहकर,
फटा था जो सटा रहकर
डटा था जो हटा रहकर
अचल था, धावन हुआ है।[२]

तब उनकी इस विक्षेपपूर्ण प्रयोगशीलता पर हम चिंतित हुए बिना नही रह पाते। निरालाजी के प्रयोगशील गीतों की दो-एक बानगी नीचे दी जाती है—

बुझी दिल की न लगी मेरी
तो क्या मेरी बात बनी।
चली कोई न चलाई चाल
तो क्या तेरी घात बनी।[३]
×   ×   ×
छलके छलके पैमाने क्या।
आये बेमाने माने क्या।

---

१ *निराला : आराधना—गीत ७३।*
२ वही (रचना २६–८–५२)
३ निराला : गीतगुंज—गीत ६, (रचना १६–४–५२)

हलके-हलके हलके न हुए,
दलके-दलके दलके न हुए,
उफले-उफले फल ये न हुए,
बेदाने थे तो दाने क्या ?[१]

इन गीतों में शाब्दिक चमत्कार इतना अधिक उभर आया है कि भाव की धारा अंतःसलिला बनकर ही रह गई है। जिस निराला ने भाषा के, छंदों के, अभिव्यजनाओं के इतने सशक्त प्रयोग किये थे, वह इस प्रकार की भटकी हुई प्रयोगशीलता का परिचय देगा, यह किसने आशा की थी ?

(७) स्फुट गीत

निरालाजी की परवर्ती गीत-सृष्टि को हमने ऊपर जिन श्रेणियों या प्रकरणो मे बाँधने का प्रयत्न किया है, उनमे वह निःशेष नही हुई है। ऐसी अनेक भावनाएँ और रचना-प्रकार बच रहे हैं, जिन्हें हम स्फुट सज्ञा ही दे सकते हैं। एक स्थान पर निरालाजी बालक की भाँति 'इस ज्ञात सृष्टि के उस पार क्या है' यह जानने की इच्छा करते हैं। उस अनिर्वचनीय लोक के निवासी क्या खाते और क्या गाते हैं, उनका वर्ण, जाति, आकृति और दैनिक जीवनचर्या क्या है; इसकी उन्हे जिज्ञासा है। 'परिमल' मे निरालाजी लिख चुके थे—

हमे जाना है जग के पार।
जहाँ नयनो से नयन मिले,
ज्योति के रूप सहस्र खिले,
सदा ही बहती नव-रस-धार
वही जाना, इस जग के पार—[२]

इस गीत मे उन्होंने उस अनिर्वचनीय लोक की एक झाँकी दी है जो अशेष सौंदर्य-मंडित है। परन्तु प्रस्तुत गीत मे उनकी एक नयी जिज्ञासा व्यक्त हुई है, जिसमे वे सचमुच एक बाल-कौतूहल का भाव व्यक्त करते हैं। देखिये—

पार-पारावार जो है,
स्नेह से मुझको दिखा दो।
रीति क्या, कैसे नियम,
निर्देश कर करके सिखा दो।
कौन से जन, कौन जीवन,
कौन से गृह, कौन आगन,

१ निराला : आराधना—गीत ३० (रचना १४–११–५२)
२ निराला : परिमल, पृ० १०५।

किन तनों की छाँह के तन,
मान-मानस मे लिखा दो।[1]

इस गीत मे निराला-मानस की एक नई ही झलक मिलती है। इस प्रकार की नवीनताएँ जो किसी सुस्पष्ट बंधन मे बाँधी नही जा सकती, निराला के स्फुट गीतो मे स्थान-स्थान पर आई हैं। इनके अधिक उदाहरण देना हमारी अध्याय सीमा-के बाहर जाना होगा। अतएव हम केवल उनके स्फुट गीतो की बहुल भाव-चेतना का संकेत करके ही संतोष करते हैं।

● निराला की गीत-कला

निराला के परवर्ती गीतों के इस अध्ययन के पश्चात् हम उनकी गीति-कला के सम्बन्ध मे भी कुछ निवेदन करना चाहते हैं। आश्चर्य की बात यह है कि निराला की गीत-सृष्टि पर अनेक प्रकार की अनभिज्ञतापूर्ण टिप्पणियाँ लिखी गई हैं। उनकी दुरूहता और क्लिष्टता का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। निराला के गीतों मे वैयक्तिक अनुभूति की मार्मिकता नहीं है, यह भी आरोप किया गया है। इस सम्बन्ध मे यह स्मरण रखना चाहिये कि निराला के गीत वैयक्तिक भाव-चेतना या निजी सुख-दुख के तत्वो से निर्मित नही है, जैसा कि वर्तमान युग के अधिकाश गीत है। निरालाजी के गीतो का निर्माण सामूहिक और समष्टिगत भावाधार पर हुआ है। यहाँ निराला ने आधुनिक गीत शैली को छोड़कर प्राचीन रस-प्रवण गीतो की परम्परा को अपनाया है। यह बहुत बड़ा अन्तर है, जिसकी ओर समीक्षकों की दृष्टि यथेष्ट रूप मे नही गई है। यो तो निराला के समग्र काव्य मे तटस्थता का गुण मौजूद है, पर उनके गीत तो विशुद्ध शास्त्रीय शैली का अनुगमन करते है। उनके गीतो की तुलना प्रसाद और महादेवी की अपेक्षा जयदेव, विद्यापति और सूर से करना अधिक सगत होगा। जब तक निराला के इस गीत-स्तर को हम नही समझते, तब तक उनके गीतो की सम्यक समीक्षा नही की जा सकती।

निरालाजी भारतीय सगीत और एक सीमा तक पश्चिमी सगीत के भी, अभ्यासी रहे हैं। भारतीय सगीत की केन्द्रीय विशेषता उसकी सामूहिक रसात्मकता है। उसमे वैयक्तिक भावना का योग अतिशय विरल रहता है। पश्चिमी सगीत मे वैयक्तिक भावोन्मेष अवश्य पाया जाता है, पर वहाँ भी सगीत समाज की वस्तु माना गया है। जो सगीतकार सामाजिक चेतना के जितना ही समीप रहा है, उसने नवसगीत-निर्माण मे उतनी ही सफलता प्राप्त की है। आज के पाउल राप्सन जैसे सगीतज्ञ इस बात का प्रमाण उपस्थित करते हैं। पश्चिमी सगीत की इस सामूहिक भाव-चेतना के कारण उसमें पौरुषत्व की प्रधानता पायी जाती है। रुदन गीतो को अथवा वैयक्तिक अनुभूतियो को नये सगीत प्रवर्तन मे प्रयुक्त नही किया जा सकता। निराला के गीत भी इसी समूहिक गीत-परम्परा के

---

१ निराला : आराधना–गीत ४२, (रचना १७–११–५२)

अनुयायी हैं; इसीलिये कदाचित निराला नये गीतों के स्रष्टा हैं जब कि अन्य कवि केवल गीतकार हैं।

पूछा जा सकता है कि जब निराला अपने गीतो मे इतने समूहमुखी हैं तब उनके गीत समाज की प्रचलित भाषा के अनुरूप क्यो नही हैं। इसका एकमात्र उत्तर यह है कि जहाँ तक गीतो के स्वर-विधान का सम्बन्ध है, निराला के गीत सामूहिक स्वर-विधान के अतिशय अनुरूप हैं। उनका 'भारति जय विजय करे' अथवा 'वीणा वादिनि वर दे' आज प्राय: राष्ट्र प्रचलित गीत बन गये है, जब कि हिन्दी के किसी दूसरे कवि के गीत इस महत्व को नही पा सके। यह निराला के स्वरसधान की विशेषता है कि उनके गीत इतने लोकप्रिय हुये हैं। जहाँ तक शब्द-योजना का प्रश्न है, निराला के गीत शब्दो की मितव्ययिता के आधार पर बने हैं। मितव्ययिता स्वय साधारण जनो के लिये दुरूह और दुष्प्राप्य होती है। किन्तु निराला साधारण लोगो की इस कठिनाई के कारण अपने गीतो का सौंदर्य शिथिलित नही कर सकते थे। यह भी स्मरण रखना होगा कि निराला के गीतो मे लोक-स्वर तो हैं, पर उनके गीत साहित्यिक और कलात्मक हैं। वे आधुनिक कुछ गीतकारो की तरह 'पिया' 'सैंया' या 'साथी' की भूमिका पर नही आ सकते थे। हम पहले ही कह चुके हैं कि निराला के गीतों की भूमिका साहित्यिक और शास्त्रीय है।

आधुनिक युग मे निराला के गीतो की तुलना एकमात्र रवीन्द्रनाथ के गीतो से की जा सकती है। सख्या मे रवि बाबू के गीत निराला के गीतो से कही अधिक हैं, उनके गीतो का भावोन्मेष अधिक वैविध्यपूर्ण भी कहा जा सकता है। रवीन्द्रनाथ के गीतो मे वैयक्तिक भाव-सवेदन निराला से कही अधिक है। इसलिए उनके गीतो मे अधिक स्वाभाविकता और मार्मिकता नजर आती है। किन्तु रवीन्द्रनाथ के गीतो मे सयम के तत्व की कमी है। वे अधिक भावनामय हैं, अतएव उनके गीतों मे ऐसी स्थितियाँ भी आती है, जिन्हे आज की मनोवैज्ञानिक काव्य समीक्षा मे डिसीपेशन की स्थिति कहते हैं। यद्यपि रवीन्द्र की भाव-बहुलता मे यह कमजोरी अनेक बार छिप जाती है, परन्तु निराला के गीतो मे इस प्रकार के भावस्खलन का अवसर ही नही आया है। वे आरम्भ से ही जिस भाव-स्तर से रचना करते हैं, और जिस प्रकार शब्द-सयम का उपयोग करते हैं, उसमे 'डिसीपेशन' के लिये अवकाश ही नही रहता। सभव है, इस उच्चतरीय काव्य गायन मे लोगो को हार्दिकता की कमी जान पडे, परन्तु निराला का स्वर हृदय की परितृप्ति के लिए ही नियोजित नही हुआ। उसमे मानवचेतना के उदात्त अश को रूपायित करने की क्षमता है। खेद है कि अपनी परवर्ती विक्षेपावस्था के कारण निरालाजी सर्वत्र एक से भावस्तर पर नही रहे हैं, और कही-कही तो शब्दो की असयत क्रीडा भी दिखाई देती है। परन्तु, स्वच्छ मानसिक क्षणो मे लिखे गये उनके परवर्ती गीत करुण और शान्त मिश्रित ऐसे शृगार की सृष्टि करते है, जिसकी तुलना मे हिन्दी की कोई आधुनिक गीत-सृष्टि नहीं आती, अत जिसे 'निराला-सगीत' के नाम से ही अभिहित करना सार्थक और समीचीन होगा।

६

निराला की परवर्ती प्रगीत-सृष्टियां

अपने परवर्ती रचना-काल मे निराला ने जिन अनेक काव्य-रूपो का विन्यास किया, उन्हे हम पूर्व के अध्यायो मे विवेचित कर चुके हैं। एक ही काव्यरूप जिसका उल्लेख करना शेष है, निराला का परवर्ती प्रगीत रूप है। इसे हम इस अन्तिम अध्याय म इसलिए ले रहे हैं कि इस काल की प्रगीत-रचनायें सख्या मे कम हैं। ये निराला के प्रारम्भिक प्रगीतो की ही शैली का अनुगमन करती हैं। इनमे अधिक नवीनता नही आई है। फिर भी इन कृतियो के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि निराला की प्रतिभा प्रगीत काव्य-रूप मे इतनी ही बलशालिनी है, जितनी किसी अन्य रचना प्रयोग मे। बल्कि हम यह सकते हैं, निराला के प्रगीतो मे जितनी अनेकरूपता है, उतनी कदाचित् किसी अन्य रचना-प्रकार मे नही।

❂ पश्चिमी प्रगीत-प्रकार

प्रगीत काव्य के अनेकानेक भेद और प्रकार हैं। कुछ तो कथाप्रगीत होते हैं, जिन्हे हम अग्रेजी के बलेड (Ballad) शब्द से अभिहित करते है। इन्हे हिन्दी म गाथा गीत या आख्यान-गीत भी कहा गया है। प्रगीत का दूसरा स्वरूप विशुद्ध भावात्मक या उच्छ्वासमूलक या चित्रात्मक होता है, जिसे विशुद्ध प्रगीत या (Pure Lyric) कहते है। कवि की किसी क्षण की मनोभावना या 'मूड' का एव लघु-सीमा मे निरूपण प्रगीत की मूलभूत विशेषता कही जाती है। कुछ नए समीक्षक तो इस लघु प्रगीत को ही एकमात्र प्रगीत की सज्ञा देते है। ज्योही रचना मे विस्तार आया, उसकी प्रगीत सज्ञा समाप्त हो गई। परन्तु यह अतिवादी दृष्टि सर्वस्वीकृत नही है और शायद स्वीकृत हो भी नही सकती। क्योंकि कवि प्रतिभा को इनीगिनी पक्तियो की सीमा मे बांध देना उसकी कल्पनाशक्ति के प्रति अन्याय है। शेली का वेस्टविड (West wind) लम्बा प्रगीत है, परन्तु कदाचित वह ससार के श्रेष्ठ प्रगीतो म परिगणित है। उसी प्रकार निराला की 'सरोजस्मृति' लम्बी रचना है, परन्तु वह दीर्घता म भी आत्मसपूर्ण है। उसे किसी प्रकार खडित नही किया जा सकता। जब कविता अत्यधिक अतर्मुख हो जाती है तब कवियो के अवचेतन का उन्मेष काव्य की छोटी सीमा मे ही समाप्त हो जाता है। तो क्या अवचेतना का

उभय ही कविता की परिभाषा कहा जायगा ? पर ऐसा करना तो विश्व-काव्य के गौरवशाली इतिहास का अनादर करना होगा। कदाचित इसीलिए कविता या प्रगीत कविता विषयक यह मत साहित्यिक चिंतन म गृहीत नहीं हो पाया है।

लघु प्रगीतो के भी अनेक भेद हैं और दीघतर प्रगीतो के भी अनेक स्वरूप हैं। लघु प्रगीत मुक्त छद म भी लिखे जाते हैं। वे छदबद्ध भी होते हैं और अनेक बार गीता मक भी हो जाते हैं। मुक्त छ द के लघु प्रगीतो का योरप के प्रतीकवादियो म अधिक प्रचलन हुआ है। वे प्रत्यक ऐसी वस्तु से हिचकते हैं जिसमे कही भी बौद्धिक प्रयास की प्रतीति होती है। छद-योजना भी उनकी दृष्टि मे बौद्धिक प्रयत्न है। पर इस प्रकार की एकागी दृष्टियाँ कविता के स्वरूपो को समझने मे सहायक नही हो सकती। अत्यन्त सुदर प्रगीत छदबद्ध हुए हैं। गीत भी एक प्रकार के प्रगीत ही है। अंग्रजी म सानेट मूलत गीत है परन्तु वह प्रगीतकाव्य का एक विशिष्ट रूप माना जाता है।

इन लघु दीघ प्रगीतो की एक परम्परा विश्व-काव्य म लम्बे समय स मिलती है। पश्चिमी काव्य विवेचन म इनको odd (सबाघ गीत), Elegy (शोक गीत) और Epis lu (पत्रगीत) आदि विविध नाम दिए गए हैं। इस प्रकार प्रत्येक साहित्य की अपनी परम्परा के अनुसार उपलब्ध दीघप्रगीतो को अनेकानेक अभिधान दिए गए हैं। दीघ प्रगीतो का ही उपहास गीत (Satire) नाम का एक पृथक का य-रूप है। इन रूपो की गणना करना इसलिए व्यथ है कि इनकी सख्या अपरिमित हो सकती है। गणना इसलिए की जाती है कि एक ही प्रकार और शैली की जब अनेक रचनायें मिलने लगती हैं तो उनकी एक परम्परा बन जाती है। इसके उपकरण स्थिर हो जाते हैं और उनका नामकरण कर लिया जाता है। भावनाटय और गीति नाटय के स्तर पर प्रगीतकाव्य की दो अन्य विधायें भी दिखाई देती हैं जिनम परस्पर कुछ अतर भी है। भावनाटय अधिक मनोवैज्ञानिक होता है। उसकी गति मे मदता होती है जब कि गीतिनाटय विशुद्ध भावात्मक होता है और दशकों के मन को एकाग्र करने म अधिक सक्षम होता है। इसी गीतिनाटय का एक स्वरूप निरालाजी ने मुक्त छद के माध्यम से ग्रहण किया है। उनकी प्रारम्भिक कविता पचवटी प्रसग मुक्त छद म लिखा गया गीतिनाटय ही है। पाश्चात्य काव्य मे धार्मिक प्रगीतों की भी एक स्वतन्त्र शैली है। प्रार्थना, उपासना या आत्मचिंतन के लिए इन प्रगीतो का व्यवहार होता है। इन्ही म कुछ दार्शनिक और रहस्यात्मक प्रगीत भी हैं।

● भारतीय गीत या प्रगीत-परम्परा

वास्तव मे निराला ही एक कवि हैं जिन्होंने भारतीय गीतों की परम्परा को सर्वाधिक अपनाया है। यह एक आश्चर्यजनक हेरफेर है कि जो कवि सामाजिक और साहित्यिक रूढ़ियों का सबसे बड़ा विध्वसक है, वही राष्ट्रीय स्वस्थ परम्पराओं

का सबसे बड़ा पोषक भी है। निराला के व्यक्तित्व और उनके काव्य के इस समानान्तर पक्ष को न समझने के कारण लोगों को उन्हें तथा उनके काव्य को सम्यक् रीति से समझने में कठिनाई हुई है। लोग सोचते हैं कि निराला यदि व्यक्तित्व में और काव्य में क्रान्तिकारी हैं, तो वे भारतीयता के संरक्षक कैसे हो सकते हैं ? थोड़ी सी गहराई में जाकर देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि निराला उन सामाजिक और साहित्यिक रूढ़ियों का तिरस्कार करते रहे है, जो आधुनिक जीवन और साहित्य के विकास की घातक हैं। परन्तु भारतीय दर्शन की श्रेष्ठ उपलब्धियों को, कला और संगीत के मनोरम और उदात्त तत्वों को, अपनाने में भी वे उतने ही तत्पर रहे हैं। निराला का विद्रोह विवेकपूर्ण विद्रोह है। वह विद्रोह के लिए विद्रोह नहीं है। एक विशिष्ट विवेक की भूमिका पर वे काव्य-निर्माण में संग्रह और त्याग के पक्षों को स्वीकार करते और छोड़ते रहे हैं। अतएव उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय परम्परा और उसके काव्य-साहित्य के श्रेष्ठ अंशों को नया विकास दिया है। भारतीय काव्य में गीत या प्रगीत यद्यपि विशाल परिमाण में पाये जाते हैं, परन्तु काव्यशास्त्र में उनका अनुलेखन मुक्तक काव्य के नाम पर ही किया गया है। प्रश्न होता है कि गेय काव्य को भी मुक्तक, उपदेशात्मक काव्य को भी मुक्तक, व्यंग्यात्मक काव्य को भी मुक्तक, दरबारी कविता को भी मुक्तक कहने में शास्त्रकार का क्या प्रयोजन और स्वारस्य है। इतनी भिन्न विधाओं को एक ही शीर्षक देकर क्यों पुकारा गया है ? इसका उत्तर तो विद्वज्जन ही दे सकते हैं, पर हमारा विनम्र मत यह है कि काव्यरूप तो मुक्तक ही है। गेयता, पाठ्यता, व्यंग्यात्मकता आदि तो उसकी शैलियाँ हैं। अतएव काव्य रूपों का वर्गीकरण करते हुए भारतीय शास्त्रकार ने ठीक ही रास्ता अपनाया है। पाश्चात्य वर्गीकरण में लिरिक, वलेड, नरेटिव, डायरेक्टिव आदि मुक्तक काव्य के अनेक भेद करते हुये भी मुक्तक का क्षेत्र निःशेष नहीं हो सका। अनेक रचनाओं को नाम देना भी कठिन हो गया। उसकी अपेक्षा भारतीय विभाजन—दृश्य और श्रव्यकाव्य, मुक्तक, खंडकाव्य और महाकाव्य के भेद—अधिक सुसंगत प्रतीत होता है।

भारतीय प्रगीत-काव्य मुक्तक का एक भेद है। निरालाजी ने वैदिक ऋचाओं को अपने मुक्तछंद की रचना में प्रमाण रूप में उपस्थित किया है। इससे यह लक्षित होता है कि निरालाजी वैदिक ऋचाओं को काव्य मानकर चले है। यदि वे काव्य है, तो उनकी गणना मुक्तक के अन्दर ही होगी। वे अपने ढंग से गेय भी हैं और पाठ्य भी। वेदों से आरम्भ होने वाले मुक्तक काव्य की यह गेय शैली निरन्तर विकसित होती रही है। संस्कृत काव्य में शास्त्रीय पक्ष और आलंकारिकता का अधिक अनुवर्तन होने के कारण, वहाँ गेयकाव्य का—प्रगीतों का—अधिकमात्रा में निर्माण न हो सका। फिर भी नाटकों के गेय छंदों के रूप में, 'मेघदूत' जैसे काव्य के माध्यम से, जयदेव की संस्कृत पदावली में, संस्कृत गेय-काव्य का इतिवृत्त देखा जा सकता है। परन्तु संस्कृत

की अपेक्षा लोक भाषाओं, प्राकृतो और अपभ्रन्शो मे गेय कविता प्रचुर परिमाण मे उपलब्ध है। वही से वर्तमान लोकभाषाओं और हिन्दी में भी वह आनीत हुई है। इस क्रम-विकास से यह स्पष्ट होता है कि गेय कविता का सवन्ध लोकजीवन से जितना है, पाडित्य की भूमिका से उतना नहीं। यह तो प्रगीत काव्य के भारतीय विकास का रेखाकन है। इसके अतिरिक्त भारतीय सगीत की अपनी स्वतन्त्र परम्परा है जिसमें शास्त्रीय सगीत और लोक सगीत की धारायें प्रवहमान हैं। इन सांगीतिक धाराओं ने भी प्रगीत-काव्य को अनेकश प्रेरणा दी है। कभी साहित्यिक प्रगीतो म, गेय पदो मे, शास्त्रीय पक्ष की प्रधानता हुई है और कभी लोक- गीतो का व्यवहार हुआ है। इस द्वद्वात्मक भूमिका पर भारतीय भाषाओं के प्रगीतो का विकास होता रहा है।

एक और तथ्य है जिसकी ओर हमारा ध्यान जाना आवश्यक है। समस्त भारतीय कलायें, चाहे काव्य हो या सगीत, भारतीय दर्शन से अनुप्राणित हैं। यहाँ के साहित्य तथा सगीत के इतिहास को प्रस्तुत करने के लिए भारतीय दर्शनो का ज्ञान अपेक्षित है। मूलत काव्य और सगीत वैयक्तिक अनुभूतियो के प्रदर्शन के लिए प्रणीत नही हुए। वे सास्कृतिक विकास के अनिवार्य अग के रूप मे विकसित हुए हैं। अतएव भारतीय कलाओं की मूल प्रेरणा व्यक्तिमुखी नही, वस्तुमुखी है, आनन्द तत्व के प्रसार के लिए है। कम से कम आधुनिक युग के पूर्व उनका यही स्वरूप रहा है।

निरालाजी ने भी इसी वस्तुमुखी, सास्कृतिक और दार्शनिक प्रेरणा का अनुसरण करते हुए काव्य-क्षेत्र म प्रवेश किया था। सौभाग्यवश उन्ह भारतीय दर्शन और अध्यात्म विद्या से तरुणावस्था मे ही परिचित होने का अवसर मिला। उनकी इस आरभिक शिक्षा ने उनके काव्य को पश्चिमी काव्य से भिन्नता प्रदान की है। उनके काव्य का तटस्थ चित्रण और वस्तुमुखी विन्यास आधुनिक पश्चिमी धारणा के अनुसार प्रगीत काव्य के मूल लक्षणो स भिन्न है। इसी कारण कुछ पश्चिमी शैली के हिन्दी समीक्षक निराला को प्रगीत कवि मानने मे भी असमजस का अनुभव करत हैं। परन्तु जो विचारक प्रगीत काव्य की भारतीय भूमिका से परिचित हैं उन्ह निराला के प्रगीतो को भारतीय गेय-काव्य का आगामी विकास मानन म रचमात्र भी द्विविधा न होगी। भारतीय प्रगीतों के स्वरूप से परिचित राष्ट्रीय और सास्कृतिक परपरा का बोध रखने वाले निराला जैसे कवि के लिए यह सम्भव न था कि वे पश्चिमी प्रगीतो के व्यक्तिवादी आधार को आख मूद कर अपना लेते।

● निराला के प्रारंभिक प्रगीत

निराला का पहला काव्य चरण ही वास्तव म उनका प्रगीत-चरण है। इसकी स्थिति सन् १६१६ से २८ तक मानी जा सकती है। निराला की जीवनी पर लिखते हुए हम यह कह सकते हैं कि वही उनके निर्माण और निश्चित व्यक्तित्व का पहला चरण था। निराला की बहिरग परिस्थितियाँ भी तब तक प्रतिकूल वातावरण स

आक्रात नही हुई थी। निराला का पहला प्रगीत 'जुही की कली' निराला-काव्य के प्रथम चरण का प्रतीक माना जा सकता है। नारी के सौकुमार्य और पुरुष की प्रगल्भता की इतनी सुन्दर काव्य-योजना उस प्रथम कविता को ही हिन्दी-काव्य में स्मरणीय बना देती है। उस समय तक स्वच्छंद प्रेम की ऐसी अंतरंग चर्चा, ऐसा चमत्कारी चित्रण हिन्दी में आया ही नही था। प्रसाद का वेदना-काव्य 'आँसू' आठ वर्ष बाद प्रकाशित हुआ था। पंतजी के 'उच्छ्वास' और 'ग्रन्थि' में कच्ची वय के प्रेम के स्मृतिचिन्ह दिखाई देते है। सारे छायावादी युग मे यदि पंत 'उच्छ्वास' के कवि हैं तो निराला 'जुही के कली' के कवि है। हम अन्यत्र कह चुके हैं कि यह 'जुही की कली' प्राकृतिक परिधान पहनकर उपस्थित हुई है। श्रृंगार एक सुन्दर आवरण डाल कर उपस्थित हुआ है।

निरंतर बारह वर्षों तक निराला ने मुक्त छंद में, स्वच्छन्द छंद में (मुक्त छंद निराला के शब्दों मे वर्णवृत्त की भूमिका पर प्रस्तुत हुआ है और अंत्यानुप्रास रहित भी है जब कि 'स्वच्छन्द छंद' मात्रिक भूमिका पर लिखा है और अत्यानुप्रास से समन्वित है। यद्यपि इसकी लड़िया घटती-बढ़ती रही हैं) और छन्दात्मक शैली मे प्रगीत रचना की है। उनके छदात्मक प्रगीत-प्रयोगों मे पक्तियों की योजना सुनिश्चित मात्राओं के आधार पर की गई है।'

ये सभी प्रगीत एक अनुपम सौन्दर्य चेतना, स्वस्थ विद्रोह भावना और वस्तुमुखी कलात्मक चित्रण के सुन्दर उदाहरण हैं। इनमे कुछ लघु प्रगीत हैं और कुछ दीर्घंतर ; परन्तु सबमे कलागत पूर्णता है। निरालाजी के उद्दाम भावावेग का पता इसी बात से लग सकता है कि 'जागो फिर एक बार' शीर्षक दो रचनायें दो भिन्न रसो मे लिखी गई है। एक मे वीरोद्बोधन है, तो दूसरी दार्शनिक और श्रृंगारिक है। दोनों मे कोन-सी रचना श्रेष्ठतम है, यह बता सकना सभव नही। निराला की यह वस्तुमुखी प्रवृत्ति उनकी कला के मूल मे निवास करती है।

कुछ लोग प्रगीत-काव्य मे वैयक्तिक वेदना की, जिसे वे काव्य का आत्मपक्ष कहते हैं, झाकी देखना चाहते हैं। निराला मे आत्मपक्ष तो है, यदि आत्मपक्ष का अर्थ

---

१ निराला : प्रबन्ध प्रतिमा (पृ २९९) -" हिन्दी-काव्य की मुक्ति के मुझे दो उपाय मालूम दिये एक वर्णवृत्त मे, दूसरा मात्रावृत्त मे। 'जुही की कली' की वर्णवृत्तवाली जमीन है। इसमे अन्त्यानुप्रास नही। यह गाई नही जाती। इससे पढ़ने की कला व्यक्त होती है। 'परिमल' के तीसरे खड मे इस तरह की रचनायें है। इनके छद को मैं मुक्तछद कहता हू। दूसरी मात्रावृत्तवाली रचनायें 'परिमल' के दूसरे खड मे हैं। इनमे लडिया असमान है, पर अन्त्यानुप्रास है। आधार मात्रिक होने के कारण, ये गाई जा सकती है ; पर सगीत अग्रेजी ढग का है। इस गीत को मैं 'मुक्तगीत' कहता हू।"

आत्मिक-संवेदन हो। परन्तु, वैयक्तिक वेदना को निराला सदैव अकाव्योपयोगी मानते रहे हैं। उन्होंने 'सरोज-स्मृति' में लिखा है—

> दुख ही जीवन की कथा रही,
> क्या कहूँ आज, जो नहीं कही ?[1]

निराला के चेतन प्रयत्नों के रहते हुए भी उनके कुछ प्रगीतों में वैयक्तिक वेदना का स्वर उभर ही उठा है। 'स्मृति' कविता की आरम्भिक पंक्तियाँ देखिये—

> जटिल जीवन-नद में तिर-तिर
> डूब जाती हो तुम चुपचाप,
> सतत द्रुतगतिमयि अयि फिर-फिर
> उमड करती हो प्रेमालाप;
> सुप्त मेरे अतीत के गान
> सुना प्रिय हर लेती हो ध्यान।[2]

स्पष्ट है कि निराला की सांस्कृतिक अभिरुचि उन्हें निजी वेदना के प्रदर्शन से रोकती रही है। यह भी कहा जा सकता है कि निराला का प्रेम असफल प्रेम नहीं था, किन्तु क्या इसके लिए कवि को दोषी ठहराया जा सकता है? क्या असफल प्रेम ही प्रगीत-काव्य का मूल सहचर है?

हमारा विषय निराला के प्रारम्भिक प्रगीत नहीं है, अतएव हम इस क्षेत्र में अधिक देर तक नहीं रह सकते। वैयक्तिक वेदना के सम्बन्ध में एक ही वाक्य और कहा जा सकता है। कदाचित् यह वेदना स्वच्छन्दतावादी काव्य की सबसे बड़ी कमजोरी भी रही है। इसका महाकवि गेटे ने रह-रह कर स्मरण दिलाया है।[3] आज के वस्तुवादी युग में जब कि यथार्थ जीवन-संघर्षों का काव्य-चित्रण प्रमुख हो रहा है,

---

१ निराला : अनामिका—'सरोज स्मृति' से, पृ० १३४।

२ निराला : परिमल—'स्मृति कविता से, पृ० १०६।

3 Quoted by Scott James : Making of Literature, P. 236.
(a) Poetry of the highest type manifests itself as altogether objective; when once it withdraws itself from the external world to become subjective it begins to degenerate. so long as the Poet gives utterance merely to his subjective feelings, he has no right to the title.

(b) where the subject is taken immediately from the authors, personal sensations and experiences, the excellence of the particular poem·········is often a fallacious pledge of genuine poetic power.

व्यक्तिवाद की भूमिका पर लिखा गया प्रेम-काव्य उपेक्षित भी होने लगा है। आज कविता का अधिक सशक्त आधार ढूंढा जा रहा है।[1]

हमे काव्यगत व्यक्तिपरकता और आत्मपरकता मे अन्तर करना होगा तभी हम प्रगीत काव्य के केन्द्रित तत्व आत्मपरकता को यथार्थ रूप मे समझ सकेंगे। जब कि व्यक्तिपरकता (सब्जेक्टिविटी) काव्य का एक दुर्बल मानसिक पक्ष है और अतत कुंठा काव्य मे परिणत होती है, तब आत्मपरकता उसका सबल भावपरक पक्ष है और वह दार्शनिक या रहस्यात्मक आलोक काव्य मे परिणत होती है।

निराला की इस आरम्भिक प्रगीत-सृष्टि पर एक आरोप यह भी है कि निराला मूलत गायक हैं, कवि नही। अपने प्रगीतो मे और विशेषकर अपनी गीत-सृष्टियो मे जिन्हे हम ऊपर प्रगीत का ही एक अग कह चुके हैं, स्वर-सधान, अनुप्रास-योजना और शब्दो की अनुसरणात्मक नियोजना मे कवि इतना व्यस्त है— अभिव्यजना-कौशल के लिये इतना तत्पर है, कि उन प्रगीतो के वस्तु या भाव-पक्ष में सृजनात्मक प्रतिभा की झलक नही मिलती। आरोप निराला के विशुद्ध काव्य-वैभव को देखते हुए अयथास्थान ही नही, कदाचित एक दृष्टि-दोष का परिचायक भी है। निराला मे सगीत और काव्य-तत्वो का एक साथ समाहार हुआ है। उनके काव्यात्मक सगीत का एक उदाहरण देखा सकता है—

> दे मैं करूँ वरण
> जननि दुखहरण पग राग रजित मरण

'पग राग रजित मरण' की कल्पना एकदम नवीन है और श्रेष्ठ कवि को भी महत्व दे सकती है। ऐसी अनेकानेक पक्तियाँ निराला-प्रगीतो मे बिखरी हुई हैं।

❷ मध्यवर्ती प्रगीत

'गीतिका' के प्रकाशन के पश्चात् सन् ३६, ३७, ३८ के निराला के प्रगीत एक भिन्न श्रेणी में आते हैं जिसे हम उनकी मध्यवर्ती प्रगीत श्रेणी कह सकते हैं। इन्ही वर्षो मे निराला की कविता म व्यगात्मकता भी आने लगी थी जिसकी चर्चा हम अन्यत्र कर चुके हैं। व्यगात्मक कविताओं की एक अलग ही श्रेणी है जिनसे भावात्मक प्रगीतो की श्रेणी बिल्कुल भिन्न है। निराला के इस समय के भावात्मक

१ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी आधुनिक साहित्य –('स्वच्छदता और परम्परा' लेख से) पृ०३८८।

—"जो काव्यधारा अत्यत अनियमित पद्धति, सयम रहित प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देती है, वह रोमेटिक अति की सूचक है। काव्य मे भावना के अतिरेक से जो असयम आता है, नियमो की जो अवहेलना होती है, रोमेटिसिज्म की अति की परिचायक है।"

प्रगीतो मे ('सम्राट् एडवर्ड अष्टम के प्रति', 'जायसी', 'वनवेला', 'सरोज-स्मृति', 'वे किसान की नई बहू की आँखें', 'राम की शक्तिपूजा', 'तुलसीदास', 'सेवा-प्रारम्भ', आदि लघु दीर्घ प्रगीत) दीर्घ प्रगीतों की ही सख्या अधिक है जो दूसरी 'अनामिका' और 'तुलसीदास' पुस्तक मे प्रकाशित हुए हैं।

इन सक्रातिकालीन प्रगीतो को देखने पर निराला के काव्य मे होने वाले परिवर्तन का आभास मिल जाता है। ये सभी प्रगीत बडे आकार मे भी अधिक सतुलित, चितनप्रधान और आवेश शून्य दिखाई देते है। इनमे कवि के प्रौढ व्यक्तित्व की एक नई ही झलक दृष्टिगत होती है। इनमे वर्णनात्मक और वैचारिक पक्षो का भी योग हो गया है। 'सम्राट एडवर्ड अष्टम के प्रति' कविता मे निरालाजी ने एक अत्यत जटिल समस्या पर—कर्त्तव्य और प्रेम मे कौन श्रेष्ठ है, इस प्रश्न पर—निश्चयात्मक विचार व्यक्त किया है। जिस समय अष्टम एडवर्ड ने अपनी प्रेयसी के प्रेमवश अपना राज्य पद छोडा था, उस समय देशी विदेशी पत्रो मे यह अनवरत चर्चा का विषय बन गया था। इग्लैंड के अधिकाश राजनीतिज्ञ और विचारक एडवर्ड की इस घोषणा पर असतुष्ट थे। व्यक्तिगत प्रेम की सामाजिक कर्त्तव्य के सम्मुख वह महत्ता और महिमा उन्हे स्वीकार न थी, जो सम्राट अष्टम एडवर्ड ने उसे दी थी। यद्यपि इस घटना के साथ वैयक्तिक प्रेम के अतिरिक्त कुछ अन्य सूत्र भी जुडे हुए थे, जिनमे से एक सूत्र इग्लैंड की वह राजकीय रुढिवादिता थी, जिसके अनुसार इग्लैंड का कोई शासक किसी पूर्व परिणीता का वरण नही कर सकता, और यदि वरण करे, तो उसे राजच्युत होना पडता है। यह सूत्र वास्तव मे सामाजिक आदर्शों का सूत्र ही कहा जायगा। निराला ने इन समस्त प्रक्रियाओ पर विचार करने के पश्चात् सम्राट अष्टम एडवर्ड की अभ्यर्थना की है और उनके राज्य-त्याग को सामाजिक जीवन के लिये ऐतिहासिक महत्व का कार्य बताया है। स्पष्ट है कि इस रचना मे निराला के चिंतन का समृद्ध योग हुआ है।

'प्रेयसी' और 'वनवेला' दोनो ही शृगारिक प्रगीत है। परन्तु जब कि 'प्रेयसी' मे विशुद्ध शृगारिक भावना का आलेखन हुआ है और नारी की सामाजिक क्राति-दर्शिता का नि शक निरूपण किया गया है, तब 'वनवेला' मे निराला प्रकृति-सौंदर्य की पृष्ठभूमि म सामाजिक वैषम्यो पर फब्तियाँ सुनाते हैं। इस कविता मे निराला का व्यग-पक्ष भी सामने आ गया है। 'वे किसान की नई बहू की आँखें' मे ग्रामीण नारी के रूप-सौंदर्य का अनुपम आलेखन है। अब तक निराला अपने काव्य मे गामीण भूमिका पर नही गये थे। यह उनकी विचार दृष्टि का, उनके अनुभव-क्षेत्र का एक परिवर्द्धित आयाम है।

'सरोज स्मृति', 'राम की शक्तिपूजा और 'तुलसीदास' निराला की ऐसी रचनायें हैं, जिन पर हिन्दी के समीक्षको ने शत-शत प्रशसा-पुष्प चढाए हैं।

डा० बच्चन जैसे भिन्न प्रकृति के कवि ने भी 'राम की शक्तिपूजा' को निराला की सर्वश्रेष्ठ रचना कहा है।[१] 'सरोजस्मृति' की शोक-गीति के मार्मिक और अव्याहत भाव-सौंदर्य पर तो दो रायें हो ही नही सकती। परन्तु 'राम की शक्तिपूजा' और 'तुलसीदास' की संक्रातिकालीन रचनाएँ अपनी भाषागत क्लिष्टता और दुरूहता में क्या उसी स्थान की अधिकारिणी हैं, जिस स्थान की अधिकारिणी 'सरोज-स्मृति' है? इन दोनों रचनाओं के काव्य-सौंदर्य पर विचार करते हुए सबसे पहले यह जान लेना आवश्यक है कि यद्यपि इनके मूल मे कवि की निजी समन्वित कल्पना प्रमुख है और इस कारण इसमे प्रगीतात्मक गुण भी विद्यमान है, परन्तु ये ऐतिहासिक और पौराणिक कथाओ और अनुश्रुतियो पर भी आश्रित हैं, और उनका वर्णनात्मक रूप भी प्रस्तुत करती हैं। लोक जीवन से सम्बन्धित और उसमे व्याप्त कथायें होने के कारण इनमें वीरगीत या 'बैलेड' कविता के उपकरण भी मौजूद है। इस प्रकार ये दोनो एक मिश्रित काव्य-रूप के अन्तर्गत आती हैं और फिर इन्हे निराला की प्रतिभा ने एक तीसरा रूप भी देने का प्रयत्न किया है, जिसे अन्य उपयुक्त शब्द के अभाव में महाकाव्योचित रूप भी कहा जा सकता है। आश्चर्य यह है कि लोक गाथायें अधिक सहज और भावात्मक होती हैं; परन्तु निराला ने इनकी सहज भावात्मकता का पक्ष गौण कर दिया है और इन्हे आलंकारिक वैशिष्ट्य देने का प्रयत्न किया है। इस प्रकार निजी कल्पना, लोकप्रचलित अनुश्रुति और साहित्यिक पांडित्य प्रदर्शन के त्रिविध आयामो से सबद्ध ये कवितायें अपने विशिष्ट काव्य-रूप का निर्णय करने मे ही असमर्थ है। फिर भी ये समाहित काव्य तो है ही और हमारी दृष्टि मे किसी रूढ काव्य-रूप की अपेक्षा समाहित काव्य स्वतः एक बडी वस्तु है।

'राम की शक्ति पूजा' मे प्रगीतात्मक प्रेरणा देखने के लिये हम निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत करते हैं, जिनमे निराला के निजी व्यक्तित्व के संघर्षो की छाया राम के चरित्र मे प्रतिबिंबित है—

"धिक् जीवन को जो पाता ही आया विरोध
धिक् साधन जिसके लिये सदा ही किया शोध।[२]

इसी प्रगीत भूमिका से प्रकृति वर्णन की उन पंक्तियो मे निरालाजी संचरण कर जाते हैं जिनमे महाकाव्योचित उत्कर्ष और गरिमा है—

हो श्वसित पवन—उनचास, पिता—पक्ष से तुमुल
एकत्र वक्ष पर बहा वाष्प को उड़ा अतुल,

---

१ देखिये, डा० हरिवंशराय बच्चन का लेख, 'यह मतवाला—निराला' (साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ११ फरवरी ६२) पृ० ७ "······ये पंक्तियाँ 'राम की शक्तिपूजा' की बीज भी हैं, जो निराला की सर्वश्रेष्ठ रचना है।"

२ निराला : अनामिका : 'राम की शक्तिपूजा' (रचना २३—१०—३६), पृ०१६३।

घात पूर्णावर्त, तरंग-भंग उठते पहाड़,
जल-राशि राशि-जल पर चढ़ता खाता पछाड़,
तोड़ता बन्ध-प्रतिसन्ध धरा, हो स्फीत-वक्ष
दिग्विजय-अर्थ प्रतिपल समर्थ बढ़ता समक्ष[1]

इस प्रकार काव्य के लक्ष्य की दृष्टि से काव्य-रूप का प्रयोजन भावना-विशेष का समन्वित निरूपण ही कहा जायगा। 'राम की शक्ति पूजा' और 'तुलसीदास' मे इस प्रकार की भाव सतृप्तियाँ प्राप्त होती हैं जो स्वय ही श्रेष्ठतम काव्य की विशेषता नही कही जा सकतीं। कुल मिलाकर ये रचनायें साहित्यिक औदात्य की भूमि पर प्रतिष्ठित हैं। ये दोनों काव्य-रचनायें आकार मे विशाल होती हुई भी अतिरिक्त पाण्डित्य के भार से बोझिल हैं। इनमें आलकारिकता का अनावश्यक आग्रह है। विशुद्ध काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से इनमें छद-रचना सम्बन्धी और अलकार-योजना सम्बन्धी प्रयत्न या आयास दिखाई पडता है जो अयत्नज नही है। विद्वानो द्वारा इनका अधिक अभिनिवेशपूर्ण अध्ययन अपेक्षित है।

⑤ निराला के परवर्ती प्रगीतो का वर्गीकरण

सन् ३८-३९ के पश्चात् निराला के प्रगीत एक तीसरी भूमिका पर पहुँचने लगते हैं। इस समय की उनकी प्रगीत रचनायें प्रयोगात्मक अधिक हैं। जिन व्यग्य-प्रगीतों का आरम्भ उन्होने ३५-३६ के आसपास किया था, वे परवर्तीकाल मे अधिक सख्या मे लिखे गये हैं। कहा जा सकता है कि निराला ने व्यग-शैली का एक नया विन्यास ही कर लिया है। उनका दूसरा प्रयो। उर्दू छदो मे लिखी गई गजलो का है। व्यग-प्रगीत आकार मे छोटे भी हैं और 'कुकुरमुत्ता' और 'खजोहरा' जैसे लम्बे भी हैं। परन्तु गजलें प्राय समान आकार की हैं। निराला के परवर्ती प्रगीतो का एक तीसरा वर्ग प्रशस्तिमूलक कविताओं का है। इसके अन्तर्गत कुछ साहित्यिक और राजनीतिक नेताओ की भावात्मक प्रशसा की गई है। प्रशस्ति-गीतो का काव्यरूप सुनिर्दिष्ट नहीं है। इनका रूप-विन्यास प्राय शिथिल है। इन प्रशस्तिमूलक प्रगीतो के समीपवर्ती कुछ ऐतिहासिक और दार्शनिक प्रशस्तियाँ भी हैं, जैसे 'सहस्राब्दी', जिसमे विक्रमादित्य के पश्चात् भारतीय सस्कृति के विकास का और उसके प्रमुख उन्नायकों का आलेख किया गया है। इसी प्रकार 'महात्मा बुद्ध के प्रति' कविता दार्शनिक प्रशस्ति ही कही जायगी। इन प्रशस्तिया के समकक्ष 'परमहस श्री रामकृष्णदेव के प्रति' तथा 'देवी सरस्वती' शीर्षक अभ्यर्थनामूलक प्रगीत हैं। 'कैलाश मे शरत्' शीर्षक एक अन्य रचना है, जिसमे अतिकाल्पनिकता का आधार लेकर एक फेन्टेसी तैयार की गई है।

हम कह चुके हैं, पिछले वर्षों में निरालाजी ने गेयगीतों की रचना अधिक की है। उनके स्वच्छद प्रगीत इस अवधि मे अपेक्षाकृत कम हैं, यद्यपि व्यग-प्रगीत को

१ निराला : अनामिका-'राम की शक्तिपूजा', (रचना २३-१०-६३) पृ० १५३।

प्रगीतो की एक नयी विधा मान लेने पर और गजलो को भी प्रगीत की सज्ञा दे देने पर, उनकी सख्या पर्याप्त हो जाती है।

अब हम क्रमशः उपर्युक्त विभिन्न वर्गों मे विभाजित उनकी परवर्ती प्रगीत-रचनाओ का विवेचन करेंगे। पिछले अध्यायो मे हमने निराला की प्रयोग-शैली, उनकी प्रगतिशील भावना और उनके उर्दू पद्धति के काव्य के वस्तु और शैलीपक्ष पर विचार किया है। इस अध्याय मे हम प्रगीत काव्य-रूप की दृष्टि से उनका निरीक्षण करेंगे।

निराला के परवर्ती गीतो का अध्ययन

हम इस अध्याय के आरम्भ मे कह चुके हैं कि निराला काव्य के परवर्तीकाल मे प्रगीतो की सख्या अधिक नही है। इसी अध्याय मे हमने यह भी कहा है कि यदि निराला की व्यग कविताओ को प्रगीत की श्रेणी मे ही रखा जाय तो उनके परवर्ती प्रगीतो की मात्रा पर्याप्त हो जाती है। हमे आरम्भ मे ही देख लेना चाहिये कि निराला की व्यग-रचनाओ और गजलो को प्रगीत-कला के अतर्गत लेना कहाँ तक उचित होगा। स्वय प्रगीत निश्चयार्थक नही है। सामान्यरूप से आत्माभिव्यजक रचनाओ को प्रगीत कहते है। स्वाभावत: उनका आकार अधिक बडा नही होता। डवल्यू० एच० हडसन ने प्रगीत शब्द को आत्मपरक काव्य (Subjective Poetry) के अर्थ मे प्रयुक्त किया है। इस प्रकार कविता को वस्तुपरक, कथात्मक या वर्णनात्मक काव्य के विपक्ष मे रखा गया है। यद्यपि स्वयं हडसन ने यह कहा है कि ये दोनो काव्य-वर्ग एक दूसरे से नितात पृथक् नही हैं और इनकी सम्मिलन-भूमियाँ भी नगण्य नहीं हैं।[1]

प्रगीत कविता को आत्मपरक मानने के पश्चात् और कथात्मक या दृश्य-काव्य से उसका अतर करने के पश्चात् हडसन ने उसके भेदोपभेदो का भी वर्णन किया है। उसने अत्यत सीमित वैयक्तिक भूमिका से लेकर राष्ट्रीय और धार्मिक गीतो की सामूहिकता तक प्रगीत काव्य की व्याप्ति बताई है। सरलतम प्रेम से लेकर जटिल दार्शनिक भावो तक प्रगीत की गति होती है और इसी के अतर्गत जीवन के हल्के विनोदात्मक पक्ष भी आ जाते हैं, जिन्हें फ्रेंच भाषा मे Vers de Societe कहा गया है। चूकि व्यग-विडम्बना मे केवल आत्मतत्व का ही प्रकाशन नहीं होता; बल्कि किसी वस्तु या आलबन का आधार रहता है। इसीलिए यह प्रश्न

1 W H. Hudson : An Introduction to the Study of Literature.
"We may begin with personal or subjective poetry to which, rather loosely, the name lyrical is often applied. ....In this sense, much poetry belonging to the impersonal division-like the old ballads and even epics-might strictly speaking be described as lyrical......Moreover there is much lyrical poerty which is communals rather than personal in character." P. 126, 127.

उठता है कि विशुद्ध प्रगीत-काव्य मे जो मूलतः भावमूलक और सौंदर्य-दायक होते हैं, व्यग और उपहास की वैचारिक और अपेक्षाकृत रूक्ष मनोभावना के लिये कहां तक स्थान है ?

ऊपर हम हडसन द्वारा प्रस्तुत किये गये प्रगीत भेदो मे Vers de societe का उल्लेख कर चुके हैं। इसी की सीमा मे व्यग या विनोद प्रगीत आते हैं। विचार-पूर्वक देखने से ज्ञात होता है कि व्यक्तिगत मनोभावना भी व्यग और हास्य का रूप ग्रहण कर सकती है और सामन रूप मे किसी वस्तु या स्थिति को लेकर कविगण वैयक्तिक उद्गार व्यक्त कर सकते हैं। मूल रूप मे कवि की दृष्टि का प्रश्न रहा करता है।। यदि उसकी दृष्टि आत्मपरक है, अपनी निजी चेतना के किसी अश को वह उद्घाटित कर रहा है, तो वह वाह्य वस्तु का सहारा लेकर भी वर्णनात्मक काव्य की रचना नही करेगा, बल्कि 'अपनी बात' कहना चाहेगा और यह अपनी बात ही प्रगीत-काव्य का व्यापक मूलाधार है। साराश यह कि 'लिरिक' या प्रगीत कविता के जो अत्यत सकीर्ण और नितान्त आत्मपरक व्याख्याता हैं, उन्हे छोड़कर शेष सभी समीक्षक एक व्यापक आत्मपरकता के साथ सामन रूप मे ससार के नाना विचारो और स्थितियो को प्रगीत काव्य मे उपयुक्त मानते हैं। इस सबन्ध मे प्रगीत की वह परिभाषा दृष्टव्य है जो पी० टी० पालग्रेव ने अपनी प्रसिद्ध 'गोल्डन ट्रेजरी' काव्यसग्रह की भूमिका मे प्रस्तुत की है। उसका आशय यह है "लिरिक (या प्रगीत) की रचना किसी एक ही विचार, भावना अथवा परिस्थिति से सबधित होती है और उसकी रचनाशैली सक्षिप्त तथा भावनारञ्जित होती है।[1] यहां हम देखते हैं कि पालग्रेव ने आत्मपरकता को एक व्यापक आधार दिया है। पश्चिम के वर्तमान काव्य-विकास को देखते हुये प्रगीत की यह व्यापक परिभाषा अपेक्षित भी है, क्योकि आज के जीवन मे जिस प्रकार असतोष और शकाओ का प्राधान्य है उसी प्रकार आज के काव्य मे व्यग की प्रवृत्तियां बढ़ती जा रही हैं। आज विशुद्ध प्रेम-प्रगीत नाम की वस्तु ढूंढ निकालना कठिन हो गया है। वैसी स्थिति मे व्यग और उपहास-शैली की भूमिका पर कवि की वैयक्तिक प्रतिक्रिया के रूप मे जो वैचारिक और भावात्मक रचनायें प्रस्तुत की जा रही है, उन्हे प्रगीत-काव्य की सीमा मे मानना सर्वथा उचित होगा।

(१) व्यंग प्रगीत—व्यग कविता को प्रगीत काव्य की भूमि पर स्वीकार करने या न करने के सबध मे हम ऊपर कुछ आरम्भिक निर्देश कर चुके हैं। प्रगीत चूकि मूलत भावात्मक वस्तु है, अतएव सामान्य रूप से व्यगकाव्य उसमे कठिनाई से समाहित हो सकता है। परन्तु व्यग-काव्य भी कई प्रकार का होता है। एक तो अत्यत सहृदय व्यग का प्रहार, जिसमे बौद्धिक और वैचारिक तथ्यो की प्रमुखता होती है। लक्ष्य का प्राधान्य होता है। रस या भाव की अपेक्षा कटाक्ष की

१ देखिए, पालग्रेव की 'गोल्डन ट्रेजरी' की भूमिका।

प्रधानता होती है, परन्तु दूसरे प्रकार की व्यगात्मक कवितायें वे है, जिनका व्यग सुधारात्मक होता है। नवीन निर्माण के लिए पृष्ठभूमि का काम करता है। ऐसी रचानाओ मे सहृदयता निवास करती है। कवि ऐसे व्यग-चित्र देता है जो मानव सवेदना को करुणा या हास्य के माध्यम से जागृत करते है। प्राय ऐसी रचनायें करुण दृश्यो का आधार लेकर निर्मित होती है, जैसे निराला की 'दान' शीर्षक कविता। इसमे व्यग है, पर करुणा भी कम नही है। तीसरे प्रकार की वे व्यगात्मक कवितायें होती हैं, जिनमे करुणा कम और हास्य अधिक होता है। इनमे सहृदयता और विनोद का तत्व और भी स्पष्ट रहा करता है। भारतीय विवेचको ने हास्य को रस या आनन्द तत्व के अन्तर्गत स्वीकार किया है। निराला की 'कुकुरमुत्ता' कविता मे व्यग की अपेक्षा हास्य की प्रधानता है। अतएव वस्तु-दृष्टि से हम इन रचनाओ को प्रगीत के अन्तर्गत ले सकते है।

प्रगीत काव्य का दूसरा आधार कलापक्ष या शिल्प से सबन्धित है। भावो की अन्विति, उनकी उचित गत्यात्मकता, उनका समाहार, समग्रता आदि प्रगीत के कलापक्ष के लिये आवश्यक है। प्रगीत कला मे बाह्य अगो की अपेक्षा अतरग निर्माण की सुचारुता अपेक्षित होती है। उसका वस्तु सगठन मानसिक आत्मसपूर्णता के आधार पर परखा जा सकता है। निश्चय ही व्यगमूलक कविताओ मे प्रेम और सौन्दर्य की वैयक्तिक अनुभूतिया नही हो सकती। क्योकि व्यग का अर्थ ही है किसी न किसी प्रकार का आक्षेप। प्रेम आक्षेप को बर्दाश्त नही कर सकता। परन्तु कवि का आशय यदि विरोधीतत्वो को हटाकर स्वस्थ समाज की प्रतिष्ठा करना है,जहाँ प्रेम और सौन्दर्य का स्वस्थ और अव्याहत विकास हो सके, तो यहाँ भी एक भावात्मक दीप्ति बनी रहती है, जो प्रगीत-काव्य का केंद्रित आधार है।

निरालाजी की व्यगात्मक कविताओ मे हास्य और विनोद की प्रमुखता सर्वत्र पायी जाती है। 'नये पत्ते' काव्यसग्रह मे रानी और कानी' कविता हास्य और करुणा का अद्भुत मिश्रण है। कुल मिलाकर रानी के जीवन मे एक विवशता है, जिसका दायित्व उस पर नही है। वह जन्म से ही कानी है। प्रकृति ने ही उस पर व्यग किया है। समाज मे भी उसके लिये कोई सद्भावना नही है, यद्यपि वह गार्हस्थिय कार्य मे निपुण है। इस विपम स्थिति को चित्रित कर नि ालाजी ने समाज पर ही कटाक्ष किया है। किन्तु रानी की माँ पर भी एक हल्का व्यग है। प्रगीत की दृष्टि से यह रचना किसी समन्वित भाव की सृष्टि न करने के कारण पूर्णतः सफल नही है, फिर भी इसमे एक सपूर्ण चित्र प्रगीत-काव्य के अनुरुप है। इसी प्रकार 'मास्को-डायलाग्स' की रचना म प्रगीतात्मक अन्विति है और विशुद्ध विनोदात्मक होने के कारण इसमें हास्य प्रगीत के लक्षण यथेष्ठ मात्रा मे उभरे हैं। 'झींगुर डटकर बोला, 'महगू महँगा रहा' आदि हास्य-सृष्टियों मे प्रगीतात्मकता के लक्षण मौजूद हैं।

'कुकुरमुत्ता' और 'खजोहरा' तथा 'स्फटिक शिला' आख्यानात्मक आधार पर लिखे गये हैं। अतएव इन्हें विशुद्ध प्रगीत की भूमिका पर रखकर देखना समीचीन नहीं होगा। परन्तु यह आवश्यक नहीं कि आख्यानमूलक रचनाओं में प्रगीतात्मकता का अस्तित्व ही न रह जाये। छायावाद युग के आख्यान-काव्य में प्रगीत-तत्व बड़ी मात्रा में मिलता है। निरालाजी उसी युग के कवि रहे हैं। अतएव उनके आख्यानात्मक व्यंग-काव्य में प्रगीत की आभा पायी जाती है। विशेषकर 'कुकुरमुत्ता' में तो आख्यान का पक्ष अत्यंत न्यून है और नाटकीय संवाद का तत्व प्रमुख है। अपनी प्रगीतात्मक विशेषता के कारण 'कुकुरमुत्ता' निराला के व्यंग काव्य में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है और सर्वथा उचित भी है। इसमें 'खजोहरा' जैसी कुरूपता नहीं है और न 'स्फटिक-शिला' का सा अनगढ़ यथार्थ है। 'कुकुरमुत्ता' को दो भागों में लिखा गया है। प्रथम भाग में प्रगीत की विशेषतायें अधिक मुखर हैं।

निराला ने इन व्यंग-प्रगीतों में मुक्तछन्द का एक नया ही स्वरूप उद्घाटित किया है। जब कि उनका आरम्भिक मुक्तछन्द वर्णों की गति पर चलता है और अधिक प्रवाहपूर्ण है, तब उनका यह व्यंग-काव्य मुक्तछन्द की मात्रिक पद्धति को अपनाकर चला है। पंक्तियाँ रुक-रुक कर आगे बढ़ती हैं। विराम के लिये अधिक अवकाश है। व्यंग और विनोद में गति के तत्व की अपेक्षा अभिज्ञता और समझदारी की अधिक अपेक्षा होती है। कदाचित इसीलिए निराला ने अपने व्यंग प्रगीतों में मात्रिक मुक्तछन्द की भूमि अपनाई है।

(२) गजल प्रगीत—निराला के परवर्ती काव्य में उर्दू शैली की गजलों की एक बड़ी संख्या मिलती है। इन गजलों के वस्तुपक्ष, भाषा, शैली आदि पर हम एक स्वतंत्र अध्याय में विचार कर चुके हैं। यहाँ हम उन गजलों के प्रगीतात्मक सौन्दर्य पर एक दृष्टि डालना चाहते हैं। उर्दू में गजल की मूल इकाई की दो पंक्तियाँ होती हैं, जिसे शेर कहते हैं। परन्तु कई शेर मिलकर एक दूसरी इकाई भी बनाते हैं, जिसे गजल कहा जाता है। गजलें कई प्रकार की होती हैं। कुछ गजलों के शेर परस्पर समान भाव की भूमिका पर समन्वित होते हैं, तब उन्हें नज्म कहा जाता है। जब किसी गजल के सभी शेर समन्वित न हों, बल्कि स्वतंत्र हों, तब गजल प्रायः स्फुट भावों का प्रदर्शन मात्र होती है और ऐसी गजलों में चमत्कार और उक्ति-पक्ष की प्रधानता रहती है। दूसरे प्रकार की गजलों में भावपक्ष प्रधान होता है। उसमें भावान्विति अधिक होती है।

निरालाजी ने अधिकतर भाव-समन्वित गजलें लिखी हैं। स्फुट गजलों की संख्या अपेक्षाकृत कम है, इसलिए निराला की इन गजलों में प्रगीत काव्य का सौन्दर्य पाया जाता है।

हँसी के तार के होते हैं ये बहार के दिन
हृदय के हार के होते हैं ये बहार के दिन[१]

१ निराला बेला, पृ० २३।

के सभी शेरों में एक शृंगारिक भावना का योग दिखाई देता है। निरालाजी मूल रूप में चमत्कारवादी कवि नहीं हैं। इसीलिये उनकी गजलें उक्ति-कौशल को प्रमुखता न देकर भावविन्यास को प्रमुखता देती हैं।

कुछ गजलें उर्दू की शब्दावली में लिखी गई हैं, पर कुछ विशुद्ध हिन्दी का सौन्दर्य लिये हुए हैं, यद्यपि उनका छंद उर्दू का है। हम यह देखते हैं कि हिन्दी की प्रमुखता लेकर लिखी गई गजलें अधिक भावात्मक हैं और प्रगीत-काव्य के सौन्दर्य से समन्वित हैं।। परन्तु उर्दू की अधिकता लिये हुए शेर किसी समाहित भावचेतना का आभास नहीं देते। दोनों प्रकार की कविताओं का अन्तर नीचे के उदाहरणों से स्पष्ट हो जायेगा—

हिन्दी पदावली— रूप की धारा के उस पार
कभी धँसने भी दोगे मुझे
विश्व की श्यामल स्नेह सँवार
हँसी हँसने भी दोगे मुझे[1]
उर्दू पदावली— गिराया है जमीं होकर, छुटाया आसमां होकर[2]
निकाला दुश्मने जाँ और बुलाया मेहरबां होकर

स्पष्ट है कि पहली कविता पढने के पश्चात् हम प्रगीत की भावमयता में डूब जाते हैं, जब कि दूसरी कविता को पढ़कर हम केवल वाहवाही दे सकते हैं। कुछ बहरें लोक-लयों के आधार पर भी रची गई हैं। ऐसे पद्यों में लोक-गीतों का आंशिक आस्वाद मिलता है। जो गजलें विशुद्ध भावात्मक न होकर व्यंग-विनोद या किसी अन्य सामाजिक उद्देश्य को लेकर लिखी गयी हैं, वे स्वभावतः प्रगीत काव्य की विशेषताओं से बहुत कुछ रिक्त हैं।

(३) प्रशस्तिमूलक प्रगीत—निरालाजी के प्रयोगात्मक प्रगीतों से—जिनमें व्यंग और हास्य-प्रगीत तथा गजलें आती हैं—आगे बढने पर हमें विशुद्ध भावात्मक शैली के कुछ अन्य प्रगीत-रूप मिलते हैं जिनमें प्रशस्तिमूलक प्रगीतों की एक बडी संख्या है। ये प्रशस्तियां यदि एक ओर राजनीतिक और साहित्यिक व्यक्तियों के प्रति हैं, तो दूसरी ओर धार्मिक और आध्यात्मिक नेताओं के प्रति भी हैं। 'सहस्राब्दी' शीर्षक एक अन्य प्रशस्ति-प्रगीत है, जिसमें हजार वर्षों के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विकास को स्मरण किया गया है और उसके प्रमुख उन्नायकों को श्रद्धांजलि दी गयी है।

राजनीतिक प्रशस्तियों में श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित को दो प्रशस्तियां भेंट की गई हैं। एक हिन्दी में, दूसरी बंगला में। बंगला प्रशस्ति चतुर्दशपदी के

१ निराला : बेला, पृ० २३।
२ निराला अणिमा पृ० ५०–५१।

रूप म लिखी गयी है और उसका हिन्दी अर्थ भी दे दिया गया है। हिन्दी प्रशस्ति सस्कृत बहुल है और मूलत शृगारिक सास्कृतिक-भावना से समन्वित है। बगला वाली प्रशस्ति मे विनोद की प्रमुखता है। ये दोनो प्रशस्तियां, यद्यपि प्रगीत की रूपात्मक भूमि पर अच्छी उतरी हैं, परन्तु इनका भावात्मक स्वरूप गहराई का द्योतक नही है।

साहित्यिक प्रशस्तियों मे 'आचार्य शुक्ल के प्रति' 'आदरणीय प्रसाद जी के प्रति' 'श्रीमती महादेवी वर्मा के प्रति' तथा 'सत कवि रविदास' के प्रति मुख्य हैं। १ शुक्ल जी के प्रति श्रद्धांजलि चतुर्दशपदी के माध्यम से दी गयी है। इसम प्रतिप्रदा से लेकर चतुर्दशी तक निरन्तर विकासमान शुक्लजी की प्रतिभा को आलकारिक रीति से अभिव्यक्त किया गया है। इस रचना में पाडित्य की प्रमुखता के साथ आलका-रिक चमत्कार अच्छी मात्रा मे है।

'आदरणीय प्रसाद जी के प्रति' लम्बी प्रशस्ति-कविता है, जिसमे भावात्मक और तथ्यात्मक दोनो शैलियों का समन्वय है। प्रसाद के व्यक्तित्व के प्रति निराला की भावना सम्मानास्पद तो थी ही, प्रसाद के गौरव के प्रति अतिशय भावाकुल भी थी। कदाचित् इसीलिये इस प्रगीत में कल्पना-छवियो का सुन्दर समारोह आ सका है।

हुआ प्रवर्तन, खुली तुम्हारी ही आंखो से
उडने लगे विहग ज्यो, युवक मुक्त पांखो से
खोये हुये राह के भूले हुये कभी के
बढ़े मुक्ति की ओर भाव था अपने जी के २

प्रसाद की जीवनी को षट्-ऋतुओ मे विभाजित किया गया है। इसी कविता के तथ्यात्मक अश मे सुमित्रानन्दन पन्त से लेकर 'द्विज' 'मुकुन' 'अरुण' सावित्री' प्राय पचास प्रसादयुगीन साहित्यिकों का नामोल्लेख किया गया है, जो प्रसाद की कीर्ति ध्वजा को धारण करने वाले हैं। प्रगीत की दृष्टि से यह रचना यद्यपि श्रेष्ठकोटि मे नही आती, इसमे कवियो और लेखको के नाम बिना किसी विशेषण के सग्रहीत हैं जो गद्यात्मकता का भान कराते है, परन्तु इसका आरम्भिक अश अधिक सुन्दर प्रगीत कला के अनुरूप हुआ है।

युग प्रवर्तिका श्रीमती महादेवी वर्मा के प्रति' कविता भी चतुर्दश पदी है। इसमे कवयित्री को हिन्दी के विशाल मन्दिर की वीणावाणी कहा है और उनकी सभी कविता पुस्तको के नामो को मुद्रालकार की भूमिका पर प्रस्तुत किया है। इस कविता मे भी चमत्कार की प्रधानता अधिक है।

---

१ निराला अणिमा, क्रमश पृ० २६, २७, ५३, २५।
२ निराला अणिमा, पृ० २७।

'सत कवि रविदास के प्रति' कविता मे ज्ञान-गगा मे अविरत बहने वाले समुज्ज्वल चर्मकार को कवि ने अपनी श्रद्धाजलि अर्पित की है। उन्हे ज्ञान का आकर, परम मुनीश्वर, भक्त कवियो के अग्रज आदि विशेषणो से स्मरण किया है। इस रचना मे निरालाजी ने वर्णाश्रम धर्म की जाति-पाँति की सकीर्ण भूमिका को तिलाजलि देने का प्रमाण दिया है।

ऐतिहासिक सांस्कृतिक प्रशस्तियां—'युगावतार परमहस श्रीरामकृष्ण देव के प्रति' 'भगवान बुद्ध के प्रति', मुख्य रूप से धार्मिक-सास्कृतिक प्रशस्तिया हैं जो निरालाजी के परवर्ती काल मे लिखी गयी हैं। इनके अतिरिक्त 'सहस्राब्दी' शीर्षक एक अन्य प्रशस्ति ऐतिहासिक आधार पर लिखी गयी है।

'युगावतार रामकृष्ण देव के प्रति' कविता मे निरालाजी ने रामकृष्ण देव के तत्कालीन सामाजिक महत्व का सकेत करते हुए अत मे उन्हे ज्योतिमय रूप प्रदान किया है। निरालाजी की वैयक्तिक आस्था रामकृष्ण के प्रति थी। अतएव यह कविता वास्तविक प्रशस्ति के स्तर पर पहुँच सकी है। इसी प्रकार 'महात्मा बुद्ध के प्रति', कविता मे निराला ने भारतवर्ष के एक अन्यतम आध्यात्मिक पुरुष की अभ्यर्थना करते हुए वर्तमान वैज्ञानिक जड-विकास की भर्त्सना की है। निराला की अपरिवर्तित आध्यात्मिक दृष्टि की निदर्शक यह एक सुन्दर कविता है, जो उनके परवर्ती काव्य के समीक्षको द्वारा भुला दी गयी है। निराला को यथार्थवाद या पदार्थवाद की ओर मुडते हुये देखने वाले समीक्षको के लिए यह कविता दृष्टिदोष का निवारण कर सकती है।

'सहस्राब्दी' कविता निराला की प्रशस्ति-कविताओ मे कदाचित् सबसे अधिक सुव्यवस्थित, गम्भीर, पाडित्यपूर्ण और भावात्मक है। इसकी तुलना निराला के अच्छे से अच्छे प्रगीतो से की जा सकती है। इसमे उन्होने विक्रमादित्य के राज्यारोहण से लेकर भारतीय सभ्यता और सस्कृति के मध्याह्न के आलोक को चित्रित किया है। वर्णाश्रम धर्म के प्रथम विकास मे किस प्रकार देश की चतुर्मुखी जागृति हुई, इसका बडा ही तथ्यपूर्ण और प्रभावशाली चित्र उपस्थित किया गया है। शकराचार्य, रामानुज तथा अन्य दार्शनिकों के मतो का बडा ही सटीक निरूपण किया है। राजनीतिक प्रगति के चित्र भी आये हैं। अपने समग्र प्रभाव मे यह कविता सुन्दर ऐतिहासिक चित्रो से सुसज्जित होने के कारण अतिशय आकर्षक बन गयी है। कुछ पक्तियां इस प्रकार हैं—

नूतन कटाक्ष सबोधन, नूतन उच्चारण,
नूतन प्रियता की प्रियतमता, समता नूतन
सस्कृति गूता, वस्तु-वास्तुकौशल-कला नवल,
विज्ञान-शिल्प-साहित्य सकल नूतन सम्बल,

पाली के प्रबल पराक्रम को सस्वन प्रहार,
कालिदास-वररुचि के समलकृत रुचिर तार।[1]

(४) शेष प्रगीत—निराला के परवर्तीकाल के शेष प्रगीतो मे 'स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज', 'उद्बोधन' 'सन् ४१' 'तिलाजलि' 'देवी सरस्वती' और 'कैलास मे शरत्' 'विचारार्थ' रह गये हैं। इनमे से 'स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज'[2] कविता निराला के रामकृष्णाश्रम के घनिष्ट सम्पर्क की परिचायक है। आश्रम का आधार लेकर निरालाजी ने अनेक कविताओं मे अपनी सम्मान-भावना व्यक्त की है। एकाध स्थान पर उन्होंने आश्रम-जीवन के प्रति अपनी अनास्था भी प्रकट की है। परन्तु अधिकाश स्थलों मे वे रामकृष्ण आश्रम से प्रभावित ही दिखाई देते हैं। प्रस्तुत कविता मे आश्रम के ही एक सन्यासी का प्रसग लाया गया है। 'उद्बोधन'[3] कविता मे निराला ने नव समाज की गतिविधि और आशा-आकाक्षाओ का आधार लेकर नये राष्ट्रीय जीवन की एक सुन्दर कल्पना की है। यह नया चित्र उद्बोधनात्मक है। 'तिलाजलि'[4] कविता मे प्रसिद्ध साहित्य और कला ममंज्ञ श्री आर० एस० पडित के निधन पर उन्हे श्रद्धाजलि अर्पित की गई है। 'देवी सरस्वती'[5] कविता निरालाजी की उस अभ्यर्थनामूलक कविता की परिचायक है, जिसके उदाहरण उनकी पूर्ववर्ती कविताओ मे अनेकश मिलते हैं। इस रचना म प्रकृति के परिवेश म देवी सरस्वती की प्रतीकात्मक प्रतिष्ठा की गई है। 'कैलास म शरत्'[6] शीर्षक निरालाजी का प्रगीत उनके विक्षेप-काल की रचना है। इसमे निराला की अतर्मुख कल्पना (फेन्टेसी) का स्वरूप दिखाई देता है। हम क्रमश इन पाचो कविताओ के प्रगीत-सौन्दर्य पर विचार करेंगे।

'स्वामी प्रेमानदजी महाराज' एक आख्यानक प्रगीत है, जिसमे निराला जी ने मुक्त छद मे यथार्थ चित्रण-शैली को अपनाया है। निराला का मुक्तछद प्राय भावोल्लास का परिचायक रहा है। परन्तु उसके अन्य प्रकार भी है। 'कुकुरमुत्ता' पर लिखते हुए हम ऊपर मुक्तछद के एक नये प्रयोग का उल्लेख कर चुके हैं। 'प्रेमानन्द जी महाराज' मे मुक्तछद का एक तीसरा ही स्वरूप मिलता है। यहाँ इसका प्रयोग वर्णनात्मक काव्य की भूमिका पर किया गया है। बगाल के एक मध्य वित्तीय परिवार के वर्णन से कविता आरम्भ होती है। स्वामीजी के स्वागत मे परिवार की

---

१ निराला अणिमा, पृ० ३७।
२ वही, पृ० ६८।
३ वही, पृ० ४३।
४ निराला . नये पत्ते, पृ० ७४।
५ वही, पृ० ५८।
६ वही, पृ० ६१।

गृह-सज्जा और स्वागत-चर्या का वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् भोजन की विधि का चित्रण करते हुए बगाली शिष्टाचार का पूरा चित्र सामने रखा गया है। अत्यत मदगति से चलती हुई कथा आगे बढती है। अत मे कायस्थ और ब्राह्मण के जातीय भेद का प्रसग लाकर निरालाजी ने इन भेदो की व्यर्थता सिद्ध की है। यही रामकृष्ण आश्रम का लक्ष्य सपन्न और कुलीन समाज की अपेक्षा साधारण समाज के समीप रहने और जनसेवा करने का बताकर कविता समाप्त की गई है। यद्यपि इस कविता मे निराला-काव्य का कोई बडा उत्कर्ष लक्षित नही होता, पर यह बगाल के वर्ग विशेष का यथार्थोन्मुख चित्र प्रस्तुत करती है। साथ ही रामकृष्ण आश्रम और उसके सन्यासियो के प्रति श्रद्धाजलि प्रकट करती है। इसकी शैली मे नवीनता है। मुक्तछद का प्रयोग वर्णनात्मक कविता मे भी किया जा सकता है, इसे प्रदर्शित करने मे इस रचना का महत्व है।

'उद्बोधन' अपेक्षाकृत छोटी प्रगीत-रचना है। इसमे निरालाजी ने राष्ट्रीय जीवन के आशापूर्ण भविष्य का भव्य चित्र उपस्थित किया है। भारतीय समाज का भविष्य हिंसा और भौतिक विकास मे न होकर विश्वशाति और आत्मोन्नयन मे है, यह सदेश इसमे दिया गया है। हमारी वर्तमान स्थिति पिछडी हुई है। पर यदि हमारे राष्ट्र मे अपने इतिहास के चिर-प्रचलित आदर्शों को ग्रहण करने की रुचि हो, तथा पश्चिमी देशो की युद्ध-लिप्सा और आत्म-प्रसार का रास्ता वह छोड सके, तो उसका भविष्य अप्रत्याशित रूप से उज्ज्वल होगा। यहाँ निराला का समाज-दृष्टा स्वरूप हमारे समक्ष आता है और यद्यपि यह कविता भावात्मक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नही है, पर निराला की समाज-कल्पना का एक उल्लेखनीय आदर्श प्रस्तुत करती है।

'देवी सरस्वती' कविता निराला की प्रौढ रचनाओ मे से एक है। यह लम्बी कविता प्राय ३०० पक्तियो मे समाप्त हुई है। 'देवी सरस्वती' की दिव्य छबि, विभिन्न ऋतुओ के साथ उसकी रूपकात्मक तुलना इस कविता को आकर्षक बनाती हैं। इस प्रकार से निराला यहाँ षट्ऋतु वर्णन की एक नयी शैली प्रस्तुत करते हैं। प्रकृति के विविध रूप सौंदर्यो के साथ सरस्वती की केन्द्रीय मूर्ति की प्रतिष्ठा एक सुन्दर और रोचक कल्पना है। इस कविता के अन्त मे कवि ने ऐतिहासिक क्रम से सरस्वती के उपासक महान भारतीय कवियो की एक आनुक्रमिक रूपरेखा भी दी है।

> श्री-समृद्धि का कालिदास मे
> अमृतास्वादन
> साहित्यिकता मे
> धार्मिकता का सम्वादन।

हर्ष प्रौढता की पीढ़ी,
कवि कम्बु स्वयम्भू,
रामायण के मौलिक,
प्राकृत-शम्भु—स्वयम्भू—
भिन्न रूप की राम-कथा के
कविर्मनीषी,
श्री तुलसी तक सहस्राब्दि के
रविर्मनीषी —

यह रचना निराला की उस भावना की परिचायक है जो पौराणिक प्रतीकों को नये जीवन सदर्भ मे रखकर नूतन भावचेतना का उन्मेष करती है।

इस सदर्भ की अतिम रचना 'कैलाश मे शरत्' शीर्षक है, जिसम निरालाजी ने काल्पनिक कैलाश-यात्रा का वर्णन किया है। इसम यात्रा के बीच मे पडने वाले स्थानो और दृश्यो के वर्णन के साथ मानसरोवर के प्राकृतिक सौंदर्य का भावात्मक अकन किया गया है। इस रचना मे वास्तविकता की भूमि इतनी क्षीण है और कवि की मनोमय कल्पना इतनी सक्रिय है कि सारी कविता एक फेन्टेसी या अतिकल्पना के रूप मे परिणत हो गयी है। हम यह भी कह सकते हैं कि इसमे निराला एक काल्पनिक, आध्यात्मिक मानसरोवर का दृश्य ही दिखा सके है।

इन्दीवर करोडो
करोडा अन्य कमल, कोकनद, शतदल
ऐसी सुगन्ध की मदिरा न फिर मिली।
उन्मद विहार किया।
एक ओर सिन्धु, एक ओर ब्रह्मपुत्र का
उद्‌गम सुहावना।
एक नदी और है
यहाँ से निकलती हुई।
दिव्यता के भीतर हम
दिव्य बने ही रहे।[२]

इस कविता म निराला की विक्षेप दशा के चिन्ह अनेक रूपो मे मिलते हैं। एक तो सारी *'कैलाश यात्रा'* ही एक विशेष मन स्थिति का ज्ञापन करती है, जिसमे यथार्थ और कल्पना का भेद भुला दिया गया है। इसम प्रकृति का वर्णन भी वस्तुमूलकता

---

१ निराला नये पत्ते—'देवी सरस्वती' से, पृ० ७२।
२ निराला नये पत्ते, 'कैलाश मे शरत्' से, पृ० ६५।

से बहुत दूर है। सारी कविता विस्मय के आवेश मे लिखी गई है और विस्मय की ही सृष्टि करती है।

इस प्रकार निराला की परवर्ती प्रगीत रचनायें यद्यपि सख्या और उत्कर्ष मे पूर्ववर्ती प्रगीतो के समकक्ष नही पहुचती, परन्तु प्रयोगो की अनेकरूपता, चिन्तन की प्रौढता और शिल्प की विविधता के कारण वे निराला काव्य का स्मरणीय अग बनी रहेगी।

१०

निराला के पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य की साहित्यिक तुलना

● पूर्ववर्ती तथा परवर्ती काव्य का तथाकथित अन्तर

किसी भी बड़े कवि के काव्य मे, जिसने अनवरत दीर्घ समय तक काव्य-रचना की है, विषयो, शैलियो, काव्यरूपो और भाषा, छन्द आदि के प्रयोगो में बहुलता हो सकती है और होती ही है। निराला के काव्य मे यह बहुलता मौजूद है, परन्तु किसी बड़े कवि के काव्यविकास मे दो मूलत भिन्न और विरोधी जीवन-दृष्टियों का समावेश आश्चर्यजनक घटना होती है, क्योकि किसी महान कवि के विकास मे परस्पर विरोधी जीवन-दृष्टियों का आना उसके व्यक्तित्व की अशक्तता का ही प्रमाण माना जायगा। काव्यरचना के क्रम मे समस्त बहिरग उत्पादन बदल सकते हैं। अनेकानेक बहुरगे पुष्पो से काव्यदेवता की अर्चना की जा सकती है, परन्तु ऐसा नही होता कि देवमूर्ति ही बदल दी जाय। निराला के कतिपय समीक्षक यह कह रहे हैं कि निराला अपने आरम्भिक स्वच्छन्दतावाद और उससे सम्बन्धित जीवन-दृष्टि का परित्याग कर अपने परवर्ती काव्य मे यथार्थवादी बन गये हैं और अपने पूर्ववर्ती काव्य की मूलवर्ती आध्यात्मिक भावना का तिरस्कार कर न केवल नवीन युग-यथार्थ को अपनाया है, बल्कि अपनी पूर्ववर्ती आध्यात्मिकता को निस्सार घोषित किया है। इसके प्रमाण-स्वरूप निराला की वे कतिपय पक्तिया उद्धृत की जाती हैं, जिनमे उन्होंने कहा है "अधिक न सोचा, मालूम दिया, जो कुछ पढ़ा है, कुछ नही। जो कुछ दिया है, व्यर्थ है। जो कुछ सोचा है, स्वप्न है। कुल्ली धन्य है, वही मनुष्य है।"[1]

कोई भी कवि अपने किसी रचना-क्षण मे किसी भावात्मक प्रेरणा से जो कुछ कहता है, उसका प्रासगिक भाव ही ग्रहण करना समीचीन होता है। काव्य मे सिद्धात-वाक्य नही रहा करते। उनमे तो भावात्मक निर्देश और भावव्यजनायें ही प्रमुख रूप से रहा करती हैं। अतएव कवि के परस्पर-विरोधी अनुकथनों में सामजस्य देखने के लिये हमें उन कृतियो का उचित सदर्भ मे अनुशीलन करना पड़ता है। इनके साथ

---

१ निराला : कुल्लीभाट।

हमें यह भी देखना होता है कि उस कवि की परवर्ती काव्य-रचनायें निरन्तर उसके बदले हुए दृष्टिकोण का समर्थन करती हैं या नहीं ? कवि के युग की भूमिका ज्यो-ज्यों बदलती है और उसका व्यक्तित्व ज्यो-ज्यो उस युग-भूमिका के अनुरूप परिवर्तित होता है, उन सबका सापेक्षिक अध्ययन करना आवश्यक है। तभी हम किसी कवि के काव्य का समग्र पर्यवेक्षण कर सकते हैं और तभी उस कवि की जीवन-दृष्टि का सम्यक बोध हमें हो सकेगा।

यहाँ हम निराला के काव्य-विकास की रूपरेखा पर संक्षिप्त रीति से विचार करना चाहेंगे और इस विचार के पश्चात हम यह भी देखना चाहेंगे कि उनके तथा-कथित पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य में किस प्रकार का अन्तर है ? वह कोई मौलिक और नवीन प्रस्थान है अथवा क्रमागत काव्य-सरणी की ही कोई अग्रिम दिशा है ? और अन्त में हमारा यह भी प्रयत्न होगा कि उनके पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य के साहित्यिक वैशिष्ट्य पर भी अपने तुलनात्मक विचार प्रकट करें।

● काव्य-विकास का प्रथम चरण

सन् १९१६-१७ से सन् २३-२४ तक निराला-काव्य का प्रथम चरण उनका प्रयोगकाल कहा जा सकता है। इन वर्षों में निरालाजी की काव्य-रचना पर आवेश-पूर्ण शृंगारिक भावना (जुही की कली), उद्दाम भावावेग से पूरित क्रांति का आह्वान (बादल राग), संस्कृति का आदर्शोन्मुखी तरल चित्रण (पंचवटी-प्रसंग), अतीत की स्मृतियों का उद्वेगमय आकलन (यमुना के प्रति) अथवा राष्ट्रीय विघटन के कारुणिक उद्गार (शिवाजी का पत्र), स्थान स्थान पर पाये जाते हैं। स्पष्टीकरण के लिए नीचे हम इनमें से प्रत्येक का एक एक उदाहरण देना चाहेंगे।

(१) आवेशपूर्ण शृंगारिक भावना

निर्दय उस नायक ने
निपट निठुराई की,
कि झोंकों की झड़ियों से
सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली,
मसल दिये गोरे कपोल गोल,
चौंक पड़ी युवती,[१]

यहाँ यह दृष्टव्य है कि वर्णन पवन और जुही की कली का है। स्त्री और पुरुष यहाँ अप्रत्यक्ष रूप से ही उपस्थित किये गए हैं। वैसी स्थिति में शृंगारिक आवेश एक आवरण के साथ ही उपस्थित हुआ है, तथापि इस शृंगारिक चित्रण में एक आवेग तो है ही। निराला की परवर्ती कविताओं में ऐसे चित्र कम ही मिलते हैं।

---

१ निराला परिमल—जुही की कली, (१९१६) पृ० १९१।

(२) उद्दाम भावावेग से पूरित क्रांति का आह्वान—

तिरती है समीर सागर पर
अस्थिर सुख पर दुख की छाया—
जग के दग्ध हृदय पर
निर्दय विप्लव की प्लावित माया—
यह तेरी रण-तरी,[1]

ऊपर की पंक्तियाँ समीर-सागर पर तैरने वाली बादल रूपी रणतरी की जो झाँकी देती हैं, वह एक प्रचंड भावावेश के कारण अपनी शब्द-योजना में संयत नहीं है। वाक्य भी आवश्यकता से अधिक लम्बा हो गया है। इसी कविता में आगे चलकर—'विप्लव रव से छोटे ही हैं शोभा पाते,' यहाँ प्रसन्न होने के अर्थ में शोभापाते प्रयोग सुसंगत नहीं है। परन्तु कवि जिस समय इन कविताओं को लिख रहा था, एक महान विद्रोही भावना के प्रवाह में था। अतएव इन कविताओं में निराला की आगामी कविताओं का सा भावसंयम और सुव्यवस्थित रेखांकन नहीं आ पाया है।

(३) संस्कृति का आदर्शोन्मुखी तरल चित्रण—'पंचवटी प्रसंग' कविता में मिलता है। कतिपय पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत की जाती हैं—

जिनके कटाक्ष से करोड़ों शिव विष्णु-अज
कोटि-कोटि सूर्य-चन्द्र-तारा-ग्रह
कोटि इन्द्र सुरासुर—
जड़ चेतन मिले हुए जीव-जग
बनते पलते हैं—नष्ट होते हैं अन्त में—
सारे ब्रह्माण्ड के जो मूल में विराजती हैं
आदि शक्ति-रूपिणी,
शक्ति से जिनकी शक्तिशालियों में सत्ता है,
माता हैं मेरी वे।[2] आदि

यद्यपि ये पंक्तियाँ एक शक्तिशाली भावचित्र की योजना करती हैं, परन्तु इनमें एक सधे हुये कवि की शब्द-योजना के बदले एक अतिशय उद्दाम अतिरेक मिलता है।

(४) अतीत की स्मृतियों का उद्वेगमय आकलन—'यमुना के प्रति' (१९२२ ई०) कविता में कवि के भावोद्वेग की इतनी प्रचुरता है कि चित्रों की सज्जा संतुलित नहीं हो पाई है। इस रचना में से कहीं से भी १०-१२ पंक्तियाँ निकाल दी जाय, तो पाठक को उनका अभाव नहीं खटकेगा। कदाचित् यही कारण है कि इस कविता को कई संग्रहों में संक्षिप्त करके रखा गया है और यह सूचना भी

---

१ निराला परिमल—बादलराग ६, (१९२० ई०), पृ० १८६।
२ निराला . परिमल—पंचवटी प्रसंग २, (पृ० २४२)।

नही दी गई है कि कितनी पंक्तियां कहा से छोड़ दी गई हैं। किसी सुसबद्ध भाव-योजना वाली कविता से इस प्रकार का व्यवहार नही किया जा सकता।

(५) राष्ट्रीय विघटन के कारुणिक उद्‌गार--'महाराज शिवाजी का पत्र' शीर्षक कविता मे स्थान-स्थान पर पाये जाते है। देखिये—

> किन्तु हाय ! वीर राजपूतो की
> गौरव-प्रलम्ब ग्रीवा
> अवनत हो रही है आज तुमसे महाराज
> मोगल-दल-विगलित वश
> हो रहे है राजपूत,
> बाबर के वश की.
> देखो आज राजलक्ष्मी
> प्रखर से प्रखरतर–प्रखरतम दीखती
> दुपहर की धूप-सी,
> दुर्मद ज्यो सिन्धुनद;
> और तुम उसके साथ
> वर्षा की बाढ़ ज्यो
> भरते हो प्रबल वेग प्लावन का,
> बहता है देश निज–
> धन-जन-कुटुम्ब-भाई–
> अपने सहोदर-मित्र–
> निस्सहाय त्रस्त भी उपाय-शून्य।[1]

इन पंक्तियों मे भी शब्दो का अनुरणन अधिक है, जो अततः उच्चतम कविता का गुण नहीं कहा जा सकता।

ऊपर के इस सक्षिप्त विवेचन का यह आशय कदापि नही है कि निराला की ये कविताएँ किसी भी अर्थ मे प्रथम श्रेणी से नीचे की हैं। आशय यह है कि परवर्ती रचनाओ की अपेक्षा इनमे कलात्मक नियमन की आशिक कमी है और उसके बदले आवेगो का आधिक्य पाठको को अपनी ओर बहा ले जाता है।

इस काल की रचनाओ मे निराला एक प्रचड प्रखरता का निदर्शन प्रस्तुत करते है जो किसी एक दिशा मे नही, अनेकानेक भाव-दिशाओ मे अनुधावित होती है। ये रचनाएँ अधिकतर मुक्त छद मे है, जो स्वत निराला के क्रान्ति भावापन्न व्यक्तित्व का प्रतीक है। इन समस्त रचनाओ की सर्वप्रमुख विशेषता प्रवाह और प्रवेग, एक अनियन्त्रित गति है, जिसके कारण भाव-सयमन मे बाधा भी पडी है।

---

१ निराला : परिमल–महाराज शिवाजी का पत्र, (१६२२ ई०) पृ० २१५, १६।

इन कविताओं मे निराला के आगामी काव्य का सा सौष्ठव, सुघरता और कलात्मकता नही आ पाई है; वल्कि उनके स्थान पर कल्पना-छवियो का एक ऐसा अतिरेक है, जिसमे तारतम्य की वहुत कुछ कमी है। 'यमुना के प्रति' शीर्षक लम्बी कविता मे भावो की पुनरुक्तिया तो हैं ही, शब्दो की भी अराजकता आ गई है। इस सारी कविता मे कलात्मक सतुलन का वहुत कुछ अभाव है। 'तुम और मैं' शीर्षक कविता, जिसकी प्रशसा' 'जूही की कली के वाद सर्वाधिक है, नितान्त अनुशासित रचना नही हो पाई। इस प्रकार की क्रमहीनता और भाषा-प्रयोगो मे अर्थ-सीमा का अतिक्रमण अनेक बार पाया जाता है जो निराला के अनियन्त्रित और प्रवेगमय काव्य का स्वाभाविक परिणाम है। परन्तु इन सभी काव्य-रचनाओ मे भाव और भाषा का जो सीमोल्लंघन है, उसका कारण काव्य-भावनागत कभी नही, भावना का अतिरेक ही उसका कारण है।

● द्वितीय चरण : १९२४-३४

निराला-काव्य का दूसरा चरण १९२४-२५ से आरम्भ हुआ, जिसकी सीमा मे 'परिमल' और 'गीतिका' की अधिकाश रचनाएँ आ जाती हैं। एक शब्द मे हम इस चरण को निराला-काव्य के कला-सौष्ठव अथवा भावात्मक मर्यादा का चरण भी कह सकते हैं। यहाँ पहुँचकर निराला के उद्दाम भावावेश मे एक नियत्रण आता है। उनकी कलात्मक दृष्टि अधिक सजग होती है और वे पूर्णत. सतुलित काव्य-रचना प्रस्तुत करते हैं। प्रसाद और माधुर्य की भी अभिवृद्धि होती है। सौन्दर्य का अधिक शालीन स्वरूप सामने आता है और दार्शनिक भूमिका पर निराला लौकिक के साथ अलौकिक का और ससीम के साथ असीम का सुगठित सम्बन्ध स्थापित कर सके हैं। हम कह सकते हैं कि निराला-काव्य के इस द्वितीय चरण मे कलात्मक सम्पन्नता का यथेष्ट और परिपूर्ण विकास हुआ है। यहा हम प्रत्येक का एक-एक उदाहरण देना चाहेंगे।

(१) प्रसाद और माधुर्य की अभिवृद्धि—निराला की इस समय की अनेकानेक कविताओ मे से हम 'सध्या-सुन्दरी' का उद्धरण दे सकते हैं—

> दिवसावसान का समय
> मेघमय आसमान से उतर रही है
> वह सन्ध्या-सुन्दरी परी-सी
> धीरे धीरे धीरे।

यहाँ सध्या-आगमन के अनुरूप शब्दावली का चयन है और पक्तियो की गति भी मन्द है। एक सुन्दरी नायिका के रूप मे सध्या का अवतरण पूर्णत. चित्रात्मक है। कवि की कलात्मक दृष्टि सजग होकर भावानुरूप भाषा का सफल नियोजन करती है।

---

१ निराला : परिमल–सध्या-सुन्दरी, (१९२१), पृ० १३५।

अर्थ की क्लिष्टता या शब्दों का अतिरेक न होने से इसमें प्रसाद और माधुर्य के तत्व सन्निहित हो सके हैं।

(२) सौंदर्य का शालीन स्वरूप—निराला के गीतों में सौन्दर्य का शालीन स्वरूप सर्वत्र देखा जा सकता है। कोई एक गीत लेकर हम इसकी परीक्षा कर सकते हैं।

> दृगों की कलियां नवल खुली
> रूप-इन्दु से सुधा-बिन्दु सह,
> रह रह और तुलीं।
> प्रणय श्वास के मलय स्पर्श से,
> रह-रह हँसती चपल हर्ष से
> ज्योति-तप्त-मुख, तरुण वर्ष के
> कर से मिली जुली।
> नहा स्नेह का सरस सरोवर
> श्वेत-वसन लौटी सलाज घर,
> अलस सखा के ध्यान-लक्ष्य पर
> डूबी, अमल धुली।[१]

प्रस्तुत गीत मे नायिका के नेत्रो का वर्णन करते हुये कवि पहले उसके सौंदर्य-पक्ष को, फिर उसके अनुमान-पक्ष को और अतत. उसकी रसात्मक आधार की क्रमशः तीनो वदो मे नियोजना करता है। यहाँ पर आंखो का भी रूपकात्मक वर्णन है। आख मानो कोई नायिका हो। यहाँ सौन्दर्य प्रतीक है। उसमे क्षमता है। ऐसी रचनाएँ पूर्णतः सौन्दर्य-प्राण कही जा सकती हैं।

(३) लौकिक के साथ अलौकिक का और ससीम के साथ असीम का सुगठित सम्बन्ध—इसके लिए हम 'प्रिय यामिनी जागी', शीर्षक कविता ले सकते हैं।

> प्रिय, यामिनी जागी।
> अलस पंकज-दृग अरुण-मुख
> तरुण-अनुरागी।
> खुले केश अशेष शोभा भर रहे,
> पृष्ठ-ग्रीवा-बाहु-उर पर तर रहे,
> बादलो मे घिर अपर दिनकर रहे,
> ज्योति की तन्वी, तडित—
> द्युति ने क्षमा मागी।
> हेर उर-पट, फेर मुख के बाल,

१ निराला : गीतिका—नवल खुली, (१९२६) ई० पृ० १९।

लख चतुर्दिक, चली मन्द मराल,
गेह मे प्रिय-स्नेह की जयमाल,
वासना की मुक्ति, मुक्ता
त्याग मे तागी।[1]

एक गार्हस्थिक चित्र के साथ आगे बढ़ता हुआ कवि उसकी परिसमाप्ति एक परिणत दार्शनिक भावना से करता है। यहां कवि ने दाम्पत्य जीवन के दृश्य को दिखाकर यह कहा कि जीवन की उपलब्धि सन्यास मे नही है। गार्हस्थ्य जीवन मे भी प्राप्त है; जो उसे वैराग्य द्वारा प्राप्त होता है। यहां भी वासना की मुक्ति होती है। वैराग्य जीवन मे भी वासना की मुक्ति होती है। 'वासना की मुक्ति, मुक्ता त्याग मे तागी' मे ससीम और असीम सौंदर्य की सुन्दर समन्विति नियोजित हुई है।

(४) कलात्मक संपन्नता :—'स्मृति' शीर्षक कविता मे जो आकार मे काफी लम्बी है, निर्दोष कलात्मक सपन्नता का गुण पाया जाता है। 'स्मृति' कविता पर हिन्दी के समीक्षको की दृष्टि बहुत पहले गई थी। इसकी रूप-रचना अत्यत प्रौढ और अविच्छिन्न भाव-सवेदन का परिणाम है।

जटिल जीवन-नद मे तिर-तिर
डूब जाती हो तुम चुपचाप,
सतत द्रुत गतिमयि, अयि, फिर फिर,
उमड करती हो प्रेमालाप,
सुप्त मेरे अतीत के गान।
सुना, प्रिय, हर लेती हो ध्यान।
× × ×
रश्मि से दिनकर की सुन्दर,
अन्ध-वारिद-उर मे तुम आप
तूलिका से अपनी रचकर
खोल देती हो हर्षित चाप,
उगा नव आशा का सचार
चकित छिप जाती हो उस पार।[2]

इस प्रकार की अनेकानेक अस्खलित प्रगीत-सृष्टियो से निराला का इस युग का काव्य भरा पडा है।

● तृतीय चरण

सन् १९३५ से ४० तक निरालाजी की काव्य-रचना मे दो प्रवृत्तियाँ मुख्य

१ निराला : गीतिका—प्रिय यामिनी जागी, (१९२७ ई०), पृ० ४
२ निराला : परिमल—स्मृति, (१९२१ ई०), पृ० १०८

रूप से देखी जाती हैं। एक तो व्यंग-विडम्बना की प्रवृत्ति का आरम्भ और दूसरी वृहत्तर काव्य-सृष्टि का समारंभ।

(१) व्यंग-विडम्बना की प्रवृत्ति का आरम्भ :—यहाँ हम व्यंग्य के अनुकूल निरालाजी की बदली हुई पदावली का दर्शन करते हैं। 'मित्र के प्रति' (७–७–३५) शीर्षक कविता मे अर्रं वर्रं, और टर्रं टर्रं जैसे शब्दों का प्रयोग निरालाजी की पूर्ववर्ती कविताओ को देखते हुए आश्चर्यजनक रूप से भोंडा और बर्वर प्रतीत होता है। परन्तु हमे यह स्मरण रखना होगा कि यहाँ निराला अपने भावात्मक स्तर से उतर कर व्यग्य और विडम्बना की ओर बढ़ रहे थे। उनकी शब्दावली इसी बदली हुई मनोभावना का परिणाम है।

एक यही आठ पहर
वही पवन हहर-हहर
तपा तपन, ठहर-ठहर
सजल कण उड़े;
गये सूख भरे ताल,
हुए रूख हरे शाल,
हाय रे, मयूर-व्याल
पूछ से जुड़े।[१]

(२) बृहत्तर काव्यसृष्टि की अलंकृत पदावली—

रावण-महिमा श्यामा विभावरी अन्धकार,
यह रुद्र राम-पूजन-प्रताप तेज प्रसार,
उस ओर शक्ति शिव की, दशस्कन्ध-पूजित
इस ओर रुद्र-वदन जो रघुनन्दन-कूजित,[२]

'राम की शक्तिपूजा' शीर्षक कविता की इन पक्तियो मे एक नवीन गाभीर्य की सृष्टि हुई है परन्तु इसमे निरालाजी के पूर्ववर्ती काव्य की सी *प्रयास-रहित पद-योजना* नही है। इसी प्रकार 'तुलसीदास' शीर्षक वृहत्तर रचना मे छद-योजना काफी क्लिष्ट है और प्रयुक्त शब्दावली भी अनेक बार कृत्रिमता का आभास देती है। उदाहरण के लिये—

देखा शारदा नील वसना,
हैं सम्मुख स्वय सृष्टि-रशना,
जीवन-समीर-शुचि-नि:श्वसना, वरदात्री,[३]

---

१ निराला : अनामिका—मित्र के प्रति, (७–७–३५), पृ० ११।
२ वही : राम की शक्तिपूजा, (२३–१०–३६), पृ० १५४।
३ निराला : तुलसीदास, (१९३८ ई०), पृ०१७५।

इस पदावली को निराला के अधिकांश निसर्गजात शब्द चयन की तुलना में हम कृत्रिम ही कह सकते हैं। परन्तु इसी 'तुलसीदास' में अनेक पद प्रवाहपूर्ण सरल भाषा में भी लिखे गये हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि ये दूसरे प्रकार के पद ही निराला की शक्ति के परिचायक हैं।

धिक ! आए तुम अनाहूत,
धो दिया श्रेष्ठ कुल-धर्मपूत,
राम के नहीं, काम के सूत कहलाए।
हो बिके जहाँ तुम बिना दाम,
वह नहीं और कुछ—हाड़-चाम।
कैसी शिक्षा, कैसे विराम पर आए[1]

निराला की सहज काव्य-भाषा का यह एक सुन्दर उदाहरण है।

ये बृहत्तर काव्य-सृष्टियाँ आख्यानमूलक रही हैं और इनके निर्माण में भाषा और भावों का महाकाव्योचित औदात्य देखा जाता है। इस समय के उनके व्यंग्य-काव्य में वैयक्तिक प्रतिक्रिया दिखाई देती है। यद्यपि समीक्षकों ने इन उभयविध रचनाओं में कोई सम्बन्ध नहीं देखा है, परन्तु हम यह देखते हैं, इस समय की कृतियों में निरालाजी का सहज प्रवेग और उनकी नैसर्गिक काव्य क्षमता विघटित होने लगी थी और वे आलंकारिक साधनों से उसे अतिरिक्त सज्जा देने का प्रयत्न कर रहे थे। विशुद्ध काव्योत्कर्ष की भूमिका पर निराला-काव्य का तृतीय चरण उनके द्वितीय चरण की अपेक्षा कमजोर ही पड़ने लगा था।

इसी अवधि में निरालाजी का मानसिक स्वास्थ्य आंशिक विकार की सूचना देने लगा था। वे 'परिमल' और 'गीतिका' की पूर्ण स्वस्थ और निर्मल भावनाधारा के स्थान पर क्रमशः वैयक्तिक अवसाद की भूमिका पर पहुँचने लगे थे। यहीं से निरालाजी के काव्य का परवर्ती युग प्रारम्भ होता है। यद्यपि इसका निश्चित तिथि निरूपण करना कठिन है, पर द्वितीय 'अनामिका' में प्रकाशित ५-१-३८ की लिखी उनकी 'मरण दृश्य' कविता की निम्नांकित पंक्तियाँ स्पष्टतः उनकी बदली हुई मनोभावना का परिचय देती है—

विश्व सीमा हीन,
बाँधती जातीं मुझे कर कर
व्यथा से दीन।
कर रही हो—दुःख की विधि—
यह तुम्हें ला दी नई निधि,
विहग के वे पंख बदले,—

---
[1] निराला तुलसीदास (१९३८ ई०) पृ० १७५।

किया जल का मीन,
मुक्त अम्बर गया, अब हो
जलधि-जीवन को।'[1]

अपनी गद्य रचनाओ मे भी निरालाजी इन्ही दिनो 'बिल्लेसुर बकरिहा' और 'कुल्लीभाट' आदि का निर्माण कर रहे थे।

❻ परवर्ती काव्य कृतियाँ

कहा जाता है कि निरालाजी की परवर्ती रचनाएँ उनकी बदली हुई जीवन-दृष्टि और विचारधारा का परिणाम हैं। कुछ समीक्षको ने, जैसे हम ऊपर कह चुके हैं, इसे निराला का यथार्थवादी काव्य कहा है। हमे यहाँ देखना है कि समीक्षको के इस कथन मे कितना तथ्य है और साथ ही हम यह भी देखना चाहते है कि काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से ये परवर्ती रचनाएँ उनके पूर्ववर्ती काव्य से किस प्रकार सम्बन्ध रखती हैं। वे श्रेष्ठतर हैं, या वे श्रेष्ठतर हैं। इन दोनो के समाधान के लिये हमे निराला के समस्त परवर्ती काव्य पर एक विहगम दृष्टि डालनी होगी।

सन् १६४० के पश्चात् प्रकाशित होने वाली निरालाजी की निम्नलिखित पुस्तकें-'अणिमा' (४२-४३),'कुकुरमुत्ता' (४२-४३), बेला' (जनवरी ४६), 'नये पत्ते' (मार्च ४६), 'अर्चना' (५०), आराधना (५३) तथा गीतगुज, प्रथम सस्करण (५४), परिवद्धित सस्करण (५६) हैं। इन समस्त काव्य-कृतियो का धारावाहिक अनुशीलन करने पर इनकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ स्पष्ट हो जाती हैं।

'अणिमा' मे कुछ पुरानी कविताएँ भी हैं। 'महादेवी वर्मा' 'विजयलक्ष्मी पडित' पर कुछ प्रशस्तियाँ भी हैं। पूर्ववर्ती रचनाओ की आस्था और गीतो का बदला हुआ स्वर साफ सुन पडता आता है। जिस कवि ने—

अभी न होगा मेरा अन्त
अभी अभी ही तो आया है मेरे वन मे
सरस बसत।

लिखकर काल को चुनौती दी थी, उसी का परिवर्तित भावोच्छ्वास नीचे की पक्तियों मे देखा जाता है—

मैं अकेला,
देखता हूँ, आ रही
मेरे दिवस की सान्ध्य वेला।
पके आधे बाल मेरे,

---

१ निराला अनामिका—तृतीय सस्करण—मरणदृश्य (५-१-२८), पृ० १३५।

हुए निष्प्रभ गाल मेरे,
चाल मेरी मन्द होती आ रही,
हट रहा मेला ।[1]

सन् ३८-३९ के पश्चात् निरालाजी की समस्त काव्य-रचना मे एक अतरग करुणा तत्व सयुक्त हो गया है। इसी करुणा के विभिन्न स्वर उनकी परवर्ती कृतियो मे भाति भाति से सुन पडते हैं, कही यह करुणा व्यग्य और विडबना का रूप लेती है, कहीं ससार के झूठे प्रदर्शनो के प्रति हास और विनोद का रूप ग्रहण करती है। निराला की दृष्टि पीछे की ओर मुडने लगी है, यह बात आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तथा प्रसादजी आदि के सबन्ध मे लिखी गई उनकी प्रशस्तियो से लक्षित होती है। परन्तु भारतीय सस्कृति और आध्यात्मिकता के प्रति निराला की निष्ठा कही भी खडित नही होती, बल्कि सास्कृतिक और आध्यात्मिक ह्रास के दृश्यो को देखकर वे अधिकाधिक क्षुब्ध और खिन्न होते हैं। सच तो यह है कि निराला का समस्त परवर्ती काव्य या तो वैयक्तिक वेदना की प्रतिक्रिया है या वह सामाजिक विशृखलता से उत्पन्न परिस्थिति के प्रति क्षोभ की उपज है। 'अणिमा' म 'भगवान बुद्ध के प्रति' कविता मे वे लिखते हैं—

आज सभ्यता के वैज्ञानिक जड विकास पर
गर्वित विश्व नष्ट होने की ओर अग्रसर
स्पष्ट दिख रहा, सुख के लिए खिलौने जैसे
बने हुए वैज्ञानिक साधन, केवल पैसे
आज लक्ष्य में हैं मानव के, स्थल जल-अम्बर
रेल-तार-बिजली-जहाज नभयानो से भर
दर्प कर रहे मानव, वर्ग से वर्ग गण
भिडे राष्ट्र से राष्ट्र, स्वार्थ से स्वार्थ विलक्षण।[2]

इसी पुस्तक की 'सहस्राब्दी' (४२) कविता म उन्होंने भारतीय दर्शन और कला-कौशल को अपनी विशिष्ट श्रद्धाजलि अर्पित की है। निराला की तथाकथित यथार्थोन्मुख रचनायें भी मूलत एक व्यग से सबन्धित हैं, जिसका आशय यह है कि वे इस नई शैली के प्रयोग के द्वारा ससार की कुरूपता को रेखाकित करते जाते हैं।

'कुकुरमुत्ता' निराला के परवर्ती काल की सर्वाधिक उल्लेखनीय कविता है। इसके व्यग और हास्य को पूरी तरह समझना आसान नहीं है। प्रत्यक्ष रीति से तो यह देखा जाता है कि इसमे निरालाजी ने गुलाब की भर्त्सना और कुकुरमुत्ता' की प्रशस्ति का आलेख किया है, पर यह प्रत्यक्ष तथ्य बहुत कुछ भ्रामक है। वास्तव मे

---

१ निराला अणिमा, 'मैं अकेला' (१९४०), पृ० २०।
२ निराला, अणिमा, 'भगवान बुद्ध के प्रति' (१९४०) पृ० ३३।

निरालाजी इस रचना मे 'कुकुरमुत्ता' के मुंह से ही उसकी आत्मप्रशस्ति कराते है और एक महान अतिरंजना के द्वारा उसे सृष्टि की सर्वोत्कृष्ट विभूति सिद्ध करते हैं। पर यह अतिरञ्जना स्वयं अपने मे व्यंगात्मक है और कुकुरमुत्ता की आत्मप्रशंसा हास्यास्पद सीमा पर पहुँचा दी गई है। वास्तव में निरालाजी का आशय यह है कि 'कुकुरमुत्ता' की आत्मश्लाघा, चाहे वह कितनी ही प्रामाणिकता का दावा करे, उसे गुलाब की बराबरी पर नही पहुँचा सकती। 'कुकुरमुत्ता' निराला के लिए सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधि हो सकता है पर यह शिक्षा-संस्कृति-हीन-वर्ग, संस्कृति के प्रतिनिधि गुलाब की तुलना नही कर सकता। आचार्य पं वाजपेयीजी के हाल के एकवक्तव्य के अनुसार 'कुकुरमुत्ता का आशय यह है कि गुलाब भले ही पुरानी या सामंतवादी संस्कृति का प्रतिनिधि है और वह स्वयं (कुकुरमुत्ता) एकदम नवीन है। पर व्यंजना-शक्ति के पारखी उसकी उक्तियों के व्यंग्यार्थ को समझ सकते हैं। व्यंजना यह है कि न पुराना गुलाब न नया कुकुरमुत्ता ही आधुनिक सांस्कृतिक आदर्श की पूर्ति कर सकते हैं। हमारी वर्तमान संस्कृति कुकुरमुत्ता की भूमिका से उठकर नयी सृष्टि और नया विकास करेगी तब हम एक नयी संस्कृति ला सकेंगे। नया गुलाब ही पुराने गुलाब का स्थान ले सकता है। नया समाज और उसकी नई संस्कृति ही पुरानी संस्कृति की स्थानापन्न बन सकती है। इस प्रकार 'कुकुरमुत्ता' कविता निराधार व्यंग्य नही है। वह संस्कृति के सृजन मे नये मौलिक तत्वों का संकेत देती है।[१]

'कुकुरमुत्ता' मे निरालाजी की भाषा संस्कृत का संसर्ग छोड़ कर विशुद्ध रूप से बोलचाल के नजदीक आ गई है। यदि 'जुही की कली' की भाषा का एक सौन्दर्य है, तो 'कुकुरमुत्ता' की भाषा का एक दूसरा सौन्दर्य है। हमारी अपनी धारणा यह है कि दोनो अवसरो की भाषा वर्णित विषय की प्रकृति के अनुरूप है। यद्यपि यह कहना पड़ेगा कि 'जुही की कली' मे जो अधिकारपूर्ण प्रवाह है, जो संगीतात्मकता और लय है, वह 'कुकुरमुत्ता' मे नही है। किंतु एक व्यंग्य और हास्यमूलक कविता की भाषा का जो रूप हो सकता है, वही यहाँ आया है। फिर भी निरालाजी ने चलती हुई भाषा मे दो चार भारी भरकम संस्कृत के शब्द रख ही दिये है, जो प्रवाह मे बाधा डालते हैं।

इक-बगल, तब बना वीणा :
मन्द्र होकर कभी निकला,
कभी बनकर ध्वनि क्षीणा।[२]

यहाँ 'मन्द्र' और 'ध्वनि क्षीणा' प्रयोग कुकुरमुत्ताके उपयुक्त नही है। लेकिन एक बिल्कुल ही नई भाषा को अपना कर निरालाजी ने जिस नई कलम का सूत्रपात किया है, वह निश्चय ही एक असाधारण प्रतिभा का परिणाम है।

---

१ निराला जयती के अवसर पर सागर विश्वविद्यालय मे दिया गया भाषण, १ जनवरी १९६२।

२ निराला : कुकुरमुत्ता, द्वितीय संस्करण, (१९५२ ई०)। पृ० ७।

'वेला' में निरालाजी भाषा और छन्द की दृष्टि से एक कदम और आगे बढ़े हैं और उर्दू के बहरों को अपनाया है। इस पुस्तक की समस्त रचनाओं में कोई एक अटूट भावधारा नहीं है। जिस प्रकार 'परिमल' या 'गीतिका' की काव्य-रचनायें एक अखंड और अव्याहत भावसत्ता की प्रतिनिधि हैं, वैसी बात 'वेला' के सम्बन्ध में नहीं कही जा सकती। इसमें दार्शनिक गीत भी हैं। व्यंग के अंश भी हैं। प्रकृति का परिपार्श्व भी है। लोक गीतों का आधार भी है। परन्तु कुल मिलाकर यह समस्त रचना प्रयोग की भूमिका को लाँघ नहीं सकी है। हमारा आशय यह है कि पूरी पुस्तक पढ़ लेने पर हम इसके शैली-चमत्कार से ही प्रभावित होते हैं, विषय-वस्तु से नहीं। प्रयोगात्मकता से हमारा यही अर्थ है। 'वेला' की कविता का एक औसत उदाहरण नीचे दिया जाता है—

> अगर तू डर से पीछे हट गया तो काम रहने दे।
> अगर बढ़ना है अरि की ओर तो आराम रहने दे।
> बिगड़ कर बनते और बनकर बिगड़ते एक युग बीता,
> परी और शाम रहने दे, शराब और जाम रहने दे।
> अगर जर्रे को जर कर तू, बड़े मूजी को सर कर तू,
> जमाने से बिगड़ कर चलता हो वह नाम रहने दे।[1]

इस प्रकार निराला की प्रयोगात्मक रचनायें 'वेला' और 'नये पत्ते' में मिलती हैं। उर्दू शैली की गजलों का प्रयोग 'वेला' में किया गया है, पर इस रचना में उनकी सफलता आंशिक ही है। भाषा की दृष्टि से हिन्दी और संस्कृत की खिचड़ी वहाँ है जो इस रचना के साहित्यिक उत्कर्ष में सबसे बड़ी बाधा है। हिन्दी के जिन कवियों ने उर्दू छन्दों का प्रयोग किया है, प्रायः सर्वत्र उर्दू की पदावली और मुहावरे भी अपनायें हैं या फिर उन्होंने हिन्दी की अपनी पद-रचना रखी है। उर्दू के केवल छंद लिये हैं। निरालाजी ने इनमें से किसी एक पद्धति का प्रयोग न कर जो मिश्रित सृष्टि तैयार की है, वह न तो उर्दू के पाठकों, न हिन्दी के पाठकों के गले सुगमता से उतर पाती है। इसीलिये यह काव्य पुस्तक एक प्रयोग बन कर ही रह गई है। जहाँ तक भावों और विचारों का संबंध है, इस रचना में गम्भीर भाव या विचार सुव्यवस्थित रीति से आए नहीं हैं।

'नये पत्ते' इस दृष्टि से अधिक सफल कृति है। इसमें निरालाजी के यथार्थोन्मुख प्रयोग अधिक स्पष्टता से व्यक्त हुए हैं। 'वेला' यदि निरालाजी की प्रयोगात्मक कविताओं का संकलन है, तो 'नये पत्ते' को उनकी प्रगतिमूलक व्यंग्यात्मक रचनाओं का संग्रह कहा जा सकता है। दो तीन कविताओं को छोड़कर शेष सभी व्यंग की भूमि पर प्रणीत हैं। हास्य और विनोद का पुट भी यत्र-तत्र मिला हुआ है।

---

१ निराला : वेला (जनवरी ४६, पृ० ६५)।

नेक व्यंग्य राजनीतिक और सामाजिक विषयो से सम्बन्धित है। कुछ कविताओं मे कुरूप यथार्थ की झांकियाँ हैं। 'बेला' की अपेक्षा इस रचना मे वर्णन अधिक व्यवस्थित है। एक उदाहरण नीचे दिया जाता है–

> मेरे नये मित्र हैं श्रीयुत गिडवानी जी,
> बहुत-बड़े सोशलिस्ट
> 'मास्को डायेलाग्स' लेकर आये हैं मिलने।
> मुस्कराकर कहा, यह 'मास्को डायेलाग्स' है,
> सुभाष बाबू ने इसे जेल मे मगाया था,
> भेंट किया था मुझको जब थे पहाड पर।
> '३५ तक मुश्किल से पिछड़े इस मुल्क मे
> दो प्रतियां आई थी।'
>
> × × ×
>
> देखा उपन्यास मैंने,
> श्री गणेश मे मिला-
> "पृय असनेहमयी स्यामा मुझे प्रेम है"
> इसको फिर रख दिया, देखा 'मास्को डायेलाग्स'
> देखा गिडवानी को'[1]

इसी सग्रह मे 'कैलाश मे शरत्' नाम की कविता भी है; जिसमे कवि ने विवेकानन्द के साथ अपनी कैलाशयात्रा का वर्णन किया है। यह रचना निरालाजी की मानसिक विक्षेप की स्थिति का उदाहरण है। इसका समस्त वर्णन कल्पना की उस भूमि से सम्बन्धित है, जिसे अतिकल्पनावाद (फेन्टेसी) कहा जा सकता है।

'खजोहरा' कविता मे वे स्वच्छदतावाद या सौंदर्यवाद का विरोधी दृष्टिकोण उपस्थित करते हैं और एक स्नान करती हुई नारी की विपत्ति का वर्णन करते हैं। इसी प्रकार 'स्फटिक शिला' नामक कविता मे उन्होने चित्रकूट की पवित्रता के स्थान पर कुरूप और कष्टप्रद परिवेश का चित्रण किया है। ये ही दो प्रमुख रचनाएँ हैं, जिनके आधार पर कहा जा सकता है कि निरालाजी अपनी सौंदर्यवादी विचार-दृष्टि को छोड़कर कुरूप यथार्थ के अधिक समीप पहुँच गए है। परन्तु ये रचनाएँ भी प्रयोग के अतिरिक्त कुछ नही है और निराला के क्षणिक भाव-परिवर्तन की ही सूचना देती हैं।

'नये पत्ते' के पश्चात् निरालाजी की शेष सभी कृतिया ('अर्चना, 'आराधना' तथा गीतगुज) गीतात्मक है। उनके इन परवर्ती गीतो को हम निम्नलिखित श्रेणियो में विभाजित कर सकते हैं–

---

१ निराला: नये पत्ते, 'मास्को डायेलाग्स', (मार्च ४६) पृ० १८-१९।

(१) भक्ति-प्रार्थना और विनय के गीत—इन गीतो मे कवि ने आत्म-समर्पण की भावना व्यक्त की है। सासारिक जीवन से खिन्न और क्षुब्ध होकर ये गीत प्रस्तुत किए गए हैं। 'अर्चना' का एक गीत देखिए—

समझा जीवन की विजया हो।
रथी दोपरत को दलने को
विरय व्रती पर सती दया हो।
पता न फिर भी मिला तुम्हारा,
खोज खोज कर मानव हारा,
फिर भी तुम्हीं एक ध्रुवतारा
नैश पथिक की पिक अभया हो।
ऋतुओ के आवर्त-विवर्तों,
लिये चली जो समतल-गर्तों,
खुलती हुई मर्त्य के पर्तों
कला सफल तुम विमलतया हो।[१]

इस तया ऐसी ही रचनाओ मे निरालाजी की भाषा अत्यन्त सरल और स्वाभाविक रूप मे अवतरित हुई है। इन गीतो मे कवि अपने आरम्भिक गीतो की अपेक्षा अधिक आत्मोन्मुख है। कदाचित् इसीलिए इनमे प्रारम्भिक गीतों की सी आलकारिकता नही है।

(२) आत्मपरक गीत—इन गीतो मे निरालाजी ने आत्मवेदना का प्रकाशन किया है। इनमे वैयक्तिकता अधिक है, क्योकि ये निरालाजी के परवर्ती काल की व्याधियो से सम्बन्धित गीत हैं। इनमे शात की अपेक्षा करुण रस की प्रधानता है।

भग्न तन, रुग्ण मन,
जीवन विपरण वन।
क्षीण क्षण-क्षण देह,
जीर्ण सज्जित गेह,
घिर गये हैं मेह,
प्रलय के प्रवर्पण।
चलता नही हाथ,
कोई नही साथ,
उन्नत, विनत माथ,
दो शरण, दोपरण।[२]

---

१ निराला : अर्चना, गीत-४, (१२-१-५०) पृ० ४।
२ निराला . अर्चना, गीत-६२, (रचना ८-१२-५२)।

इस रचना मे निरालाजी अपनी शारीरिक और मानसिक व्याधियो से त्राण की कामना करते हैं, अपने कष्टो का वर्णन प्रलय-मेघो से करते हैं। चलता नही हाथ, एक वास्तविक कथन भी है और लाक्षणिक उक्ति भी। निरालाजी को हाथ का कष्ट था और वे अच्छी तरह हाथ हिला नही सकते थे। परन्तु कवि की उक्ति होने से 'चलता नही हाथ' मे लाक्षणिक शक्ति भी आ गई है, जिससे उसका आशय अधिक व्यापक और विशद हो गया है।

(२)ऋतु और प्राकृतिक गीत—निरालाजी प्रकृति के सौन्दर्य के गायक रहे हैं। उनके आरम्भिक गीतो से ही उनका प्रकृति-प्रेम झलकता रहा है। प्रकृति सम्बन्धी प्रारम्भिक गीत अधिक उल्लासपूर्ण और सौन्दर्य-प्रवण हैं। उनके परवर्ती प्रकृति-गीतो मे वैसा उल्लास नही है। उसके स्थान पर उक्ति-कौशल और भाषा का प्रसादगुण अधिक आ गया है। इनमे निराला की सौन्दर्य-दृष्टि अधिक वस्तुपरक हो गई है। 'अर्चना' का एक गीत देखिए—

आज प्रथम गाई पिक पचम।
गूजा है मरु विपिन मनोरम।
मरुत प्रवाह, कुसुम-तरु फूले,
बौर-बौर पर भौंरे भूले,
पात-गात के प्रमुदित झूले,
छाई सुरभि चतुर्दिक उत्तम।
आँखों से बरसे ज्योति:कण,
परसे उन्मन, उन्मन उपवन,
खुला धरा का पराकृष्ट तन,
फूटा ज्ञान गीतमय सत्तम।
प्रथम वर्ष की पाख खुली है,
शाख-शाख किसलयो तुली है,
एक और माधुरी घुली है,
गीत-गन्ध-रस-वर्णो अनुपम[१]

निराला के परवर्ती ऋतु-गीतो से पूर्ववर्ती ऋतु-गीतो की तुलना की जाय, तो हम देखेंगे कि इन गीतो मे शृगारिकता के स्थान पर प्रकृति के प्रशात और सात्वना-कारी भाव की प्रधानता है। वसत ऋतु के वर्णन मे जहाँ इस पद्य मे 'उत्तम सुरभि' 'गीतमय ज्ञान', 'एक और माधुरी घुली है' जैसे वाक्याश मिलते हैं, वहाँ उनके प्रारम्भिक ऋतु-वर्णनो मे इस प्रकार की रूपसज्जा है—

---

१ निराला : अर्चना, गीत–३२ (रचना २१–१–५०)।

किसलय-वसना नव-वय-लतिका
मिली मधुर प्रिय-उर तरु-पतिका,
मधुप-वृन्द वन्दी—
पिक-स्वर नभ सरसाया।
लता-मुकुल-हार-गन्ध-भार भर
बही पवन बन्द मन्द मन्दतर,
जागी नयनो मे वन—
यौवन की माया।
आवृत सरसी-उर-सरसिज उठे,
केशर के केश कली के छुटे,
स्वर्ण-शस्य-अंचल
पृथ्वी का लहराया।[१]

प्रकृति का अनुरंजनकारी सौन्दर्य दोनों रचनाओ मे है। किन्तु पूर्ववर्ती गीत का अनुरंजन वस्तुमूलक न होकर रूपमूलक है, इतिवृत्तात्मक न होकर चित्रात्मक है। यह कहना कठिन है कि इन दोनो प्रकृति-गीतो मे कौन सा श्रेष्ठतर है? कदाचित तरुण पाठको की रुचि प्रथम गीत की ओर (आरम्भिक गीत की ओर) और वयस्क पाठको की रुचि परवर्ती गीतो की ओर होगी।

(४) शृंगारिक गीत—इस काल मे कुछ शृंगारिक गीत भी लिखे गये हैं, पर उनमे वह ऐन्द्रिक सौन्दर्य की ताजगी नही, जो पूर्ववर्ती शृंगारिक गीतो मे है। परवर्ती शृंगारिक गीत का एक उदाहरण देखिए—

जब तू रचना मे हँस दी
तूल-तूल के फूल खिले
पल्लव डोले चिड़ियाँ चहकी।
क्या गली-गली गुथ गई रेणु
ग्वाल के बाल की बजी वेणु,
हौली-हौली बढ़ गई धेनु,
चोली हमजोली की मसकी।
कुम्हलाई डाली हरिआई,
खुल-खुलकर तरु कोयल गाई,
बल खाती विपुल हवा आई,
सौरभ-सौरभ धरती कसकी।[२]

---

१ निराला : गीतिका, गीत ३, (रचना १९२८) ई० पृ० ५।
२ निराला : अर्चना, गीत २५, (रचना १४-११-५२)।

इस प्रकार के श्रृंगारिक गीतो मे उद्दीपन की अपेक्षा अनुभाव पक्ष की प्रमुखता है ; जो एक अधिक गम्भीर मन.स्थिति का द्योतक है । इन श्रृंगारिक गीतो मे प्राकृतिक प्रतीक भी अच्छी मात्रा मे आये हैं और कहा जा सकता है कि इनमे भक्ति मिश्रित श्रृंगार की आभा निखरी है ।

पूर्ववर्ती काल का एक श्रृंगारिक गीत इस प्रकार है—

मौन रही हार,
प्रिय-पथ पर चलती,
सब कहते श्रृंगार ।
कण-कण कर कंकण, प्रिय
किण-किण रव किंकिणी,
रणन-रणन नूपुर, उर लाज,
लौट रंकिनी;
और मुखर पायल स्वर करें बार-बार,
प्रिय पथ पर चलती, सब कहते श्रृंगार ।
शब्द सुना हो, तो अब
लौट कहाँ जाऊँ
उन चरणो को छोड और,
शरण कहाँ पाऊँ ?
बजे सजे उर के इस सुर के सब तार—
प्रिय-पथ पर चलती, सब कहते श्रृंगार ।[1]

हम देखते हैं कि इस कविता मे एक नव परिणिता की द्वद्वात्मक मन·स्थिति का चित्रण किया गया है । वह तो प्रेम करती है और सहज भाव से प्रिय के पास आती है, पर लोग कहते हैं कि वह श्रृंगार करती है । उसके नूपुर बजते हैं, कंकण और किंकिणी स्वर भरती है, तो उसे लज्जा आती है कि कहीं कोई सुन न ले । एक ओर यह सामाजिक सकोच है, तो दूसरी ओर नैसर्गिक प्रेम का प्रबल आग्रह भी है कि उसे पति के पास जाना ही चाहिये । अत मे वह निर्णय करती है कि वह जायगी और इस निर्णय के साथ उसके हृदय के सब श्रृंगारिक स्वर मुखर हो उठते हैं ।

इस गीत मे नवयौवना के प्रेम और सभ्रम का द्वद्व प्रदर्शित है, जिसमे प्रेम की ही विजय होती है । इस प्रेम मे यौवन-सुलभ लालसा है, निष्ठा है और इन्ही के सयोग से नारी-जीवन का सौन्दर्य है । निरालाजी की इस कविता मे प्रेम और सौंदर्य के लौकिक स्वरूप का निर्व्याज और निरावृत अंकन हुआ है । इसकी व्यजना इसके वर्णन मे अर्न्तनिहित है; परन्तु दूसरी कविता मे मिलन की भूमिका इतनी आग्रह-

१ निराला: गीतिका, गीत–६ (पृ० ८) ।

पूर्ण नही है। मिलन के अवसर पर प्रकृति म जो नवजीवन आ गया है, वह भी चित्रित है बल्कि कहना चाहिये कि मानवीय मिलन को प्रकृति के उल्लास के माध्यम से ही व्यक्त किया गया है। इस कविता मे पहली कविता का-सा सीधा प्रवाह नहीं है। परन्तु इसकी मूलवर्ती भावना अधिक साकेतिक और दार्शनिक कही जा सकती है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि पहली कविता अधिक सीधा प्रभाव उत्पन्न करती है, जब कि दूसरी कविता मे न केवल व्यजना की प्रचुरता है बल्कि 'चोली हमजोली की मसकी' और 'सौरभ सौरभ धरती कसकी' जैसी पक्तियो मे शब्द-क्रीडा की प्रधानता है। 'कुम्हलाई डाली हरिआई' म विरोधाभास की चमत्कारिक अलकृति है। हम कह सकते हैं कि भाव की दृष्टि से अधिक विशद होते हुए भी प्रभाव और रचना की दृष्टि से परवर्ती कविता पहली कविता की बराबरी नही कर पाती।

(५) दार्शनिक गीत —इन वर्षों मे निरालाजी ने दार्शनिक, सास्कृतिक और आध्यात्मिक गीत भी लिखे हैं, परन्तु इनमे भक्ति भावना का प्राधान्य हो गया है। इस प्रकार के उनके आरम्भिक गीतो मे पौरुष और सकल्प-तत्वो की प्रधानता है, किन्तु परवर्ती गीतो मे विनय और उपासना मुख्य हो गई है। आरम्भिक दार्शनिक गीतो मे वे अधिक मृदुल है। भावापन्न कही-कही कठोर भावापन्न और नास्तिक भी हैं। जहाँ वे 'पचवटी–प्रसंग' मे लक्ष्मण की आदर्शोन्मुखी सेवा साधना का उल्लेख करते हैं, वहाँ वे मृदुल और मनोरम हैं। जहाँ वे लिखते हैं–

कौन तम के पार ? (रे, कह)
कौन तम के पार–[1]

वहा वे सृष्टि के रहस्य को एक अनिर्वचनीय भूमिका पर पहुँचा देते हैं। वहा आस्तिकता और नास्तिकता मिलकर एक हो जाती है। अपने परवर्ती दार्शनिक गीतो मे निरालाजी इतने अतिवादी नही हैं। वे मानव की जिज्ञासा को मानवीय भूमिका पर ले जाते हैं। गीतगुज' का एक गीत देखिये–

पार पारावार जो है
स्नेह से मुझको दिखा दो
रीति क्या, कैसे नियम,
निर्देश कर करके सिखा दो।
कौन सा जन, कौन जीवन,
कौन से गृह, कौन आँगन,
किन तनों की छाह के तन,
मान मानस म लिखा दो।

१ निराला. गीतिका–गीत १२, पृ० १४।

पठित या निष्पठित वे नर,
देव या गन्धर्व किन्नर,
लाल, पीले, कृष्ण, धूसर,
भजन क्या भोजन सिखा दो।[१]

(६) प्रगतिशील तथा प्रयोगशील गीत–इस युग मे निरालाजी ने सामाजिक जीवन के वैषम्य से सबन्धित कुछ प्रगतिशील गीत भी लिखे है। ये किसी वाद की सीमा मे नही आते। इनमे मानवीय सहानुभूति की प्रधानता है और एक प्रकार की वितृष्णा भी है। 'बादलराग' के से क्रांति के मुखर स्वर नही है। कुछ प्रयोगशैली के गीत भी हैं जिनमे यथातथ्य चित्रण की प्रवृत्ति दिखाई देती है। उनका 'आराधना' मे प्रकाशित एक गीत इस प्रकार है–

मानव जहाँ बैल-घोडा है,
कैसा तन मन का जोडा है ?
किस साधन का स्वाँग रचा यह,
किस बाधा की बनी त्वचा यह,
देख रहा है विज्ञ आधुनिक
वन्य भाव का यह कोडा है।
इस पर से विश्वास उठ गया,
विद्या से जय मेल छूट गया,
पक-पक कर ऐसा फूटा है,
जैसे सावन का फोडा है।[२]

इस प्रकार के अनुभवपूर्ण गीत निरालाजी की प्रारम्भिक रचनाओ मे नही मिलते। इन गीतो की एक विशेषता यह भी है कि वे किसी वाद का आग्रह न लेकर सामान्य मानवीय भूमिका पर अपनी सवेदना बिखेरते है। इसमे पूर्ण काव्यात्मकता भी है जो प्रगतिवादी कवियो मे कम मिलती है। एक अन्य गीत देखिये–

ऊट-बैल का साथ हुआ है।
कुत्ता पकडे हुए जुआ है
यह ससार सभी बदला है,
फिर भी नीर वही गँदला है,
जिससे सिच कर ठढा हो तन,
उस चित्त-जल का नही सुआ है।

---

१ निराला : गीतगुंज (प्रथम सस्करण सवत २०११) पृ० ६३।
२ निराला : आराधना, गीत ७३ (रचना १६-१२-५२)।

पूर्ण नही है। मिलन के अवसर पर प्रकृति में जो नवजीवन आ गया है, वह भी चित्रित है बल्कि कहना चाहिये कि मानवीय मिलन को प्रकृति के उल्लास के माध्यम से ही व्यक्त किया गया है। इस कविता मे पहली कविता का-सा सीधा प्रवाह नहीं है। परन्तु इसकी मूलवर्ती भावना अधिक साकेतिक और दार्शनिक कही जा सकती है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि पहली कविता अधिक सीधा प्रभाव उत्पन्न करती है, जब कि दूसरी कविता मे न केवल व्यजना की प्रचुरता है बल्कि 'चोली हमजोली की मसकी' और 'सोरभ सौरभ धरती कसकी' जैसी पक्तियो मे शब्द-क्रीडा की प्रधानता है। 'कुम्हलाई डाली हरिआई' मे विरोधाभास की चमत्कारिक अलकृति है। हम कह सकते हैं कि भाव की दृष्टि से अधिक विशद होते हुए भी प्रभाव और रचना की दृष्टि से परवर्ती कविता पहली कविता की बराबरी नही कर पाती।

(५) दार्शनिक गीत.—इन वर्षों में निरालाजी ने दार्शनिक, सास्कृतिक और आध्यात्मिक गीत भी लिखे है, परन्तु इनमे भक्ति-भावना का प्राधान्य हो गया है। इस प्रकार के उनके आरम्भिक गीतों मे पौरुष और सकल्प-तत्वो की प्रधानता है, किन्तु परवर्ती गीतो मे विनय और उपासना मुख्य हो गई है। आरम्भिक दार्शनिक गीतो मे वे अधिक मृदुल है। भावापन्न कही-कही कठोर भावापन्न और नास्तिक भी हैं। जहाँ वे 'पचवटी-प्रसंग' में लक्ष्मण की आदर्शोन्मुखी सेवा साधना का उल्लेख करते हैं, वहां वे मृदुल और मनोरम हैं। जहां वे लिखते हैं—

कौन तम के पार ? (रे, कह)
कौन तम के पार—[1]

वहा वे सृष्टि के रहस्य को एक अनिर्वचनीय भूमिका पर पहुँचा देते हैं। वहां आस्तिकता और नास्तिकता मिलकर एक हो जाती है। अपने परवर्ती दार्शनिक गीतों मे निरालाजी इतने अतिवादी नही है। वे मानव की जिज्ञासा को मानवीय भूमिका पर ले जाते हैं। 'गीतगुंज' का एक गीत देखिये—

पार पारावार जो है
स्नेह से मुझको दिखा दो
रीति क्या, कैसे नियम,
निर्देश कर करके सिखा दो।
कौन से जन, कौन जीवन,
कौन से गृह, कौन आँगन,
किन तनो की छाह के तन,
मान मानस मे लिखा दो।

---

१ निराला. गीतिका—गीत १२, पृ० १४।

पठित या निष्पठित वे नर,
देव या गन्धर्व किन्नर,
लाल, पीले, कृष्ण, धूसर,
भजन क्या भोजन सिखा दो ।[1]

(६) प्रगतिशील तथा प्रयोगशील गीत—इस युग मे निरालाजी ने सामाजिक जीवन के वैषम्य से सबन्धित कुछ प्रगतिशील गीत भी लिखे हैं। ये किसी वाद की सीमा मे नही आते। इनमे मानवीय सहानुभूति की प्रधानता है और एक प्रकार की वितृष्णा भी है। 'बादलराग' के से क्रांति के प्रखर स्वर नही है। कुछ प्रयोगशैली के गीत भी है जिनमे यथातथ्य चित्रण की प्रवृत्ति दिखाई देती है। उनका 'आराधना' मे प्रकाशित एक गीत इस प्रकार है—

मानव जहाँ बैल-घोडा है,
कैसा तन-मन का जोडा है ?
किस साधन का स्वाँग रचा यह,
किस बाधा की बनी त्वचा यह,
देख रहा है विज्ञ आधुनिक
वन्य भाव का यह कोडा है।
इस पर से विश्वास उठ गया,
विद्या से जब मेल छुट गया,
पक-पक कर ऐसा फूटा है,
जैसे सावन का फोडा है।[2]

इस प्रकार के अनुभवपूर्ण गीत निरालाजी की प्रारम्भिक रचनाओ मे नही मिलते। इन गीतो की एक विशेषता यह भी है कि वे किसी वाद का आग्रह न लेकर सामान्य मानवीय भूमिका पर अपनी सवेदना बिखेरते है। इसमे पूर्ण काव्यात्मकता भी है जो प्रगतिवादी कवियो मे कम मिलती है। एक अन्य गीत देखिये—

ऊट-बैल का साथ हुआ है।
कुत्ता पकडे हुए जुआ है
यह ससार सभी बदला है,
फिर भी नीर वही गँदला है,
जिससे सिंच कर ठढा हो तन,
उस चित्त-जल का नही सुआ है।

---

१ निराला : गीतगुज (प्रथम सस्करण सवत २०११) पृ० ६३।
२ निराला : आराधना, गीत ७३ (रचना १६-१२-५२)।

रूखा होकर ठिठुर गया है,
जीवन लकड़ी का लड़का है,
खोले कोपल, फले फूल कर
तरु-तल वैसा नहीं कुआ है।[1]

इसमे प्रयोगात्मक शैली का पुट है, परन्तु इसकी मूल भावना सामाजिक है और इसमे निराला की दृष्टि उस चित्तजल का सकेत करती है, जो मानव की आध्यात्मिक पूर्णता का परिचायक है।

(७) स्फुट गीत—परवर्ती काल के निराला के गीतो की मुख्य धाराओं का परिचय देने के पश्चात् हम उन गीतो का उल्लेख करेंगे, जो विभिन्न विषयो से सम्बन्धित हैं, जिन्हें हम 'स्फुट गीत' कह सकते हैं। निराला की गीत-सृष्टि जो उनके जीवन के अतिम अनेक वर्षो की प्रमुख भावाभिव्यक्ति है, यह सूचित करती है कि वे पूर्णत. अपनी आध्यात्मिक भावना धारा के समीप आ गये हैं। यद्यपि इनमे आत्मनिवेदन, विनय और वैयक्तिक समर्पण का पक्ष उनके पूर्ववर्ती गीता से कही अधिक है, परन्तु यह उनकी प्रगाढ होती हुई आध्यात्मिक भावना का ही परिणाम है। निराला की 'गीतिका' के गीतो मे शृगार रस की प्रमुखता रही है, यद्यपि वे शृगारिक गीत भी एक दार्शनिक अनुबध म बँधे हैं। परन्तु ये परवर्ती गीत तो अधिकतर शात और करुण रस से समन्वित है, और निरालाजी की तत्कालीन मन स्थिति के द्योतक हैं। कुछ गीतो में सामाजिक वैषम्य के प्रति आक्रोश भी दिखाई देता है। परन्तु इस प्रकार का आक्रोश तो उनकी आरम्भिक कविताओ म भी व्यजित हुआ है। वैसी स्थिति मे इन परवर्ती गीतो की भावधारा निरालाजी के एकदम नवीन और क्रातिकारी विचार परिवतन का प्रमाण नही देती।

यह केवल निराला की क्रमागत विचारधारा का एक अग्रिम, और अधिक सवेदनशील स्वरूप है। निराला के ऋतु गीत सन्'२० स प्रारम्भ होकर सन् ६० तक बराबर चलते रहे हैं। अतएव इन ऋतुगीता मे निराला-काव्य की निरन्तरता का परिचय मिलता है। यह अवश्य है कि आरम्भिक ऋतुगीता मे निराला अधिक प्रसन्न और भावाकुल हैं। परवर्ती ऋतुगीतो म उतनी हार्दिकता कदाचित नहीं है। उसके बदल उक्तियो का कौशल और भाव की सरलता और भावगाम्भीर्य बढ गया है। पर इन समस्त गीतो म निरालाजी के प्रकृति-दर्शन का एक अटूट और अविच्छिन्न अनुक्रम प्राप्त होता है। यदि निरालाजी की जीवनदृष्टि म कोई मौलिक परिवर्तन हुआ होता, तो उनके ऋतुगीता मे आदि से अन्त तक इतनी समरसता न मिलती।

---

१ निराला . आराधना, गीत ७२, (रचना १५-१२-६२)।

स्फुट गीतों के अन्तर्गत यहाँ हम दो ऐसे उदाहरण दे रहे हैं, जिनसे निरालाजी की अनियंत्रित मनोदशा का भी पता लगता है। यों तो उनके इस समय के कुछ गीतों में ऐसी पंक्तियाँ आई हैं, जो उनके मानसिक विक्षेप का परिणाम है। कुछ स्थलों पर उनकी विक्षिप्त मन.स्थिति का प्रभाव दिखाई देता है। 'आराधना' में प्रकाशित उनकी एक रचना देखिये—

आज मन पावन हुआ है
जेठ में सावन हुआ है।
अभी तक दृग बन्द थे ये,
खुले उर के छन्द थे ये,
सजल होकर बन्द थे ये;
राम अहिरावण हुआ है।
कटा था जो पटा रहकर,
फटा था जो सटा रह कर,
हटा था जो हटा रहकर,
अचल था, धावन हुआ है'

आरम्भ की ६ पंक्तियाँ तो सुन्दर भाव-व्यंजना करती हैं। यद्यपि इनमें भी 'खुले उर के छन्द सजल होकर बन्द' जैसे प्रयोग नेत्रों के लिए विशेष समीचीन नहीं हैं, पर अन्तिम चार पंक्तियाँ "कटा था जो पटा रहकर .. धावन हुआ है" किसी भी प्रकार निराला के शैली-सौन्दर्य की परिचायक नहीं हैं; बल्कि ये विक्षिप्तावस्था की ही सूचक हैं।

कुछ ही दिन पूर्व उनका एक और गीत पटना की 'ज्योत्स्ना' पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। गीत इस प्रकार है—

फूलों के दीपों की माला
यह उकसे बालों की बाला।
बेसुध की हाला की हाला,
काली की लिपि, गोरी काला।
डाली के माली की पाली
जीवन-जीवन के वन वाली
जीने की, मरने की ताली,
कानों के कानों की ताला।
चितवन के चीते को बस कर
गोरे गारों से कस कस कर,

१ निराला : आराधना, गीत १० (रचना २६-९-५२)।

हस कर अन्तर तर भर भर कर,
कर दी कुल आले से आला।[1]

यहा 'काली की लिपि गोरी काला', 'कानो के कानो की ताला' आदि प्रयोग इतने दूरान्वयी हैं कि उनका अर्थ कोई कुछ भी लगा सकता है। इसी प्रकार 'कर दी कुल आले से आला' मे 'आले से आला' का फारसी प्रयोग उत्तम से उत्तम के अर्थ मे आया है।

यहा हम इन दो गीतो का उद्धरण इस आशय से भी दे रहे हैं, जिससे यह ज्ञात हो सके कि वे अपने अतिम वर्षों की गीत-रचना मे मानसिक व्याधि से निरतर सघर्ष करते रहे हैं। अनेकश विजयी होकर कही कही पराजित भी हुए है। जो लोग निरालाजी के इस मानसिक विक्षेप से परिचित नही हैं, या उसे स्वीकार नही करना चाहते, और उनके अन्तिम दिनो की रचनाओ को पूर्णत दिव्य भूमिका पर ले जाकर देखना चाहते हैं, वे निराला के मानसिक सघर्ष और उनकी सकटकालीन विजिगीषा के प्रति अन्याय करते हैं।

निरालाजी के अन्तिम वर्षों के अनेक गीत अप्रकाशित भी हैं। जिनके प्रकाशन की प्रतीक्षा की जा रही है। उनकी सख्या ५० से ऊपर बताई जाती है। प्रयाग से प्रकाशित 'निराला' नामक पत्रिका मे निरालाजी की अन्तिम कविता छपी है। इसकी कुछ पक्तिया नीचे दी जाती है—

स्निग्ध हो चुका है निदाघ वर्षा भी वर्षित
कल शारद कल्य की हैम लोमो आच्छादित
शिशर भिद्य, भौरा वसत आमो आमोदित
बीत चुका है दिक् चुम्बित चतुरग काव्य गति-
यतिवाला ध्वनि अलकार, रस, राग बध के
वाद्य छद के रणित गणित छुट चुके हाथ से-
क्रीडाए व्रीडा मे परिणता मल्ल मल्ल की
मारें मूर्छित हुई, निशाने चूक गये है[2]

इन पक्तियों मे कवि ने जीवन की सभी ऋतुए व्यतीत हो जाने की सूचना दी है। इसी प्रकार काव्य की सभी उद्‌भावनाओ के परिशमित हो जाने का उल्लेख किया है। इसी कविता के अन्त मे एक जीवन के सघर्ष-दिवस की समाप्ति का उल्लेख करके नया सवेरा आने की प्रत्याशा की गई है। इस अन्तिम कविता मे भी निराला अपनी चिरपरिचित दार्शनिकता को भूले नही हैं, बल्कि उसे बडे ही निश्छल भाव से प्रस्तुत कर सके हैं। सघर्ष और क्लेशमय जीवनी का दिन बीत गया। नया दिन आने को है। यह कविता—

१ ज्योत्सना पत्रिका, जुलाई १९६१।
२ निराला पत्रिका से, वसन्त पचमी १९६२।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरो पराणि
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।[१]

गीता की अमर उक्ति से कितना साम्य रखती है।

इस प्रकार निराला के समस्त काव्य-विकास के साथ उसके मुख्य सोपानो का यह ईषत् परिचय देने के पश्चात् हम इस प्रश्न पर भी विचार करेंगे कि उनके पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य मे किस प्रकार का तुलनात्मक सम्बन्ध है ? उनकी बदली हुई शैली और भावधारा मे उनकी मूल जीवन-दृष्टि किस प्रकार अक्षुण्ण रही है, यह हम ऊपर देख चुके हैं। यहा हम विशुद्ध साहित्यिक स्तर पर दोनो युगो की कृतियो का विवेचन कर रहे हैं। एक बात यह स्पष्ट है कि निरालाजी ने परवर्ती काव्य मे मुक्त छद का प्रयोग प्राय स्थगित ही कर दिया था। अतएव मुक्तछद का अधिकाश सौष्ठव उनकी प्राथमिक कविताओ मे ही पाया जाता है। जो छदोबद्ध, लम्बी कवितायें निरालाजी ने अपने परवर्ती काल मे लिखी है, वे अधिकतर दार्शनिक हैं। 'महात्मा बुद्ध के प्रति' अथवा 'सहस्राब्दी' आदि, उन्हे हम सस्मरणात्मक भी कह सकते है। विचार-प्रधान होने के कारण उनमे दीप्ति तो है, पर कल्पना की बिबात्मक नियोजना कम है। भाषा की दृष्टि से भी वे सर्वत्र एक सरलता का आधार ढूंढती रही है। उन्हे हम अनलकृत रचना भी कह सकते हैं, जो कवि की वैचारिक प्रौढता की परिचायक है। यहा हम 'राम की शक्ति पूजा' और 'तुलसीदास' जैसी रचनाओ को छोड देते हैं जिन्हें मध्यवर्ती सनातिकाल की सृष्टि कहा जा सकता है। उनके परवर्ती काल की शेप कृतिया अधिकतर योगात्मक हैं और हास्य-व्यग प्रधान, जैसे—'कुकुरमुत्ता', 'नये पत्ते' आदि। इन परवर्ती कविताओ मे गृहीत छद अधिक गद्यात्मक है। 'बेला और 'नये पत्ते' की अधिकांश रचनाए प्रयोगात्मक काव्य मे आती हैं। इनमे से अनेक हल्की भावदशा की परिचायक हैं और निराला-काव्य की विविधता मे योग भर देती है।

शेष निराला की गीत-सृष्टिया है जिनके सम्बन्ध मे हम कह चुके है कि अपने छोटे आकार के कारण निराला की आक्रात मनोदशा मे उनकी अभिव्यक्ति का साधन रही हैं। जहा कही इनमे विक्षेपाश आ गया है, वहा तो इनका साहित्यिक सौन्दर्य क्षतिग्रस्त हुआ है, परन्तु अधिकाश गीतो म उनकी अदम्य जीवन-शक्ति विजयिनी हुई है और वे गीत अतिशय सरल भाषा मे अत्यन्त मार्मिक भावो को उत्सर्जित करते हैं। यदि उनके प्राथमिक गीत अधिक स्वच्छ और प्राजल हैं, तो उनके परवर्ती गीत करुणा की आभा से मडित और दीप्त हैं। वे अधिक गभीर और मार्मिक है। दोनो मे सगीत की सुस्पष्ट योजना मिलती है, यद्यपि परवर्ती गीतोकी अर्थभूमि अधिक व्यजनात्मक है।

समग्र रूप मे देखने पर यह निष्कर्ष दिया जा सकता है कि निराला का क्रातिकारी व्यक्तित्व और काव्याश उनकी पूर्ववर्ती रचनाओ म निहित है। उनकी अनुभव-प्रवण और प्रौढ जीवन-चितना उनके परवर्ती काव्य मे ही स्थान पाती है।

---

१ श्रीमद्भगवद्गीता द्वितीय अध्याय, श्लोक २२।

११

उपसंहार

निराला का पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य—सापेक्षिक मूल्यांकन

निरालाजी के पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य की जो रूपरेखा अब तक दी गई है, उससे ज्ञात होता है कि सन् ३८–३६ के आस-पास उनकी ओजस्विनी, प्रसन्न, स्वच्छ और प्रवाहमयी कविताधारा में परिवर्तन हुआ है और वे क्रमशः बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियों के दबाव के कारण अधिक गंभीर, संवेदनशील भावतत्व को अपनाने लगे हैं। उनका आरम्भिक आशावाद और क्रांतिवाद धीरे धीरे एक प्रश्न-चिन्ह से संयुक्त हो गया है और वे अधिक विचारपूर्ण और गंभीर भावभूमि की कविताएँ लिखने लगे हैं। कभी वे व्यंगों की पद्धति का सहारा लेकर अपनी बात कहते और कभी असाधारण आलंकारिकता की भूमि पर जाकर 'राम की शक्तिपूजा' और 'तुलसीदास' जैसी रचनाएँ प्रस्तुत करते हैं।

एक ओर व्यंग और दूसरी ओर उदात्त का यह युग्म ऊपर से बेमेल दिखाई देता है और इसीलिए शंका होती है कि इन दोनों में कैसा तारतम्य है? इन दोनों प्रकार की रचनाओं में एक समानता यह है कि उनमें निराला-काव्य का स्वाभाविक और चिरपरिचित प्रवाह प्राप्त नहीं होता। इनमें एक प्रकार की मंदगति है। एक की भाषा यदि एक दिशा में (व्यंग काव्य में) अत्यधिक सरलता का स्पर्श करती है, तो दूसरी दिशा में (आख्यानक काव्य में) वह काफी क्लिष्ट और दुरूह भी हो जाती है। सन् १९४२ के पश्चात् निराला के मानसिक स्वास्थ्य में और भी गिरावट आई और वे 'कुकुरमुत्ता' जैसी हास्य प्रधान और 'खजोहरा' जैसी नग्न यथार्थ की सूचक काव्य-कृतियाँ प्रस्तुत करने लगे। व्यंग से हास्य की ओर अग्रसर होने में मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह परिलक्षित होता है कि निरालाजी जीवन के उच्च आदर्शों के प्रति और भी विरक्त हो गये हैं और वे हँसी की हलकी भावना से जीवन-स्थितियों का साक्षात्कार करने लगे हैं। व्यंग में सुधार की संभावना फिर भी बनी रहती है, पर हास्य में यह आस्था भी जाती रहती है। इसी प्रकार 'खजोहरा' या 'स्फटिक शिला' जैसी कृतियों में निराला पूरी तरह से कटु यथार्थ की स्वीकृति पर पहुँच गये हैं। 'जुही की कली' से आरम्भ करने वाला कवि 'खजोहरा की कुरूप भावभूमि पर पहुँच जायगा, इसकी कल्पना करना भी कठिन था, परन्तु

निराला के सामाजिक अनुभवो ने उन्हे क्रमश कटु बनाया और उनके मानसिक विक्षेप ने उनके भावात्मक सतुलन मे भी बाधा डाली। इन परवर्ती रचनाओ मे, इसीलिये, नकारात्मक दृष्टि की प्रधानता है। कोई सक्रिय या सोद्देश्य यथार्थ उनमे अभिव्यजित नही।

बीच बीच मे निरालाजी ने अपनी पूर्व सास्कृतिक चेतना के अनुरूप सहस्राब्दी' जैसी कविताएँ भी लिखी हैं, पर ऐसी भावात्मक कविताओ की सख्या कम है। 'बेला' और 'नये पत्ते' की प्रासगिक काव्य-रचना से आगे बढकर निरालाजी सन् ५० के पश्चात् निरतर १० वर्षों तक केवल गीत ही लिखते रहे। यह सक्षिप्त प्रगीत-सृष्टि स्वय इस बात की सूचक है कि इन वर्षों मे निरालाजी किसी स्वच्छद या प्रसरणशील भावधारा का प्रयोग और निर्वाह नही कर सके। उन्होने छोटे गीतो मे ही अपने आत्मोद्गारो और आत्मोच्छ्वासों को अभिव्यक्त किया है। इन गीतो मे जहाँ एक ओर करुणा और सवेदना के गभीर स्वर हैं, वही दूसरी ओर इनमे एक आहत सगीत भी है। कही-कही ये गीत विशृखल भावनाओ और पदावलियो से भी आक्रात हैं, पर सामान्यत ये सभी गीत निश्छल भावोद्गारो के रूप मे अत्यत सरल भाषा का आधार लेकर प्रस्तुत हुए है।

⑤ परवर्ती काव्य मे वादो की स्थिति

निराला के परवर्ती काव्य मे वाद विशेष की स्थिति देखने का आग्रह अनेक समीक्षको ने किया है। सन् ३६ के पश्चात् हिन्दी साहित्य मे वादी दृष्टियो का आगमन हुआ और उन्हे कट्टरता के साथ अपनाया गया। सामान्य रूप से जिस वाद ने साहित्यिक विवेचन को सबसे अधिक अतिरजित करने का प्रयत्न किया, वह यथार्थवाद या प्रगतिवाद के नाम से प्रचलित है। भारतीय राजनीति म एक ओर समाजवाद और साम्यवाद की पुकार उठी, तो दूसरी ओर साहित्य म यथार्थवाद और प्रगतिवाद की धूम मचने लगी। साहित्यिको को उनकी नैसर्गिक प्रतिभा और सस्कारो के मार्ग से हटाकर एक विशेष विचार-पद्धति का अनुसरण करने की प्रेरणा दी गई। इन समीक्षको ने अपने प्रथम आवेग मे प्रसाद और निराला जैसे कवियो क काव्य को भी पलायनवादी और कल्पनावादी बताने का दु साहस किया। उपन्यास-क्षेत्र म उन्होने प्रेमचद को यथार्थवादी, प्रगतिवादी और द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी तक सिद्ध करने की चेष्टा की। इस प्रकार हिन्दी साहित्य की स्वाभाविक गतिविधि मे एक बडा विक्षेप उत्पन्न होने लगा। इससे साहित्यिको के स्वतन्त्र कला निर्माण म बाधा तो पडी ही, उनके मूल्याकन मे भी अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ आईं। इस प्रकार की विचारणा जब कठोर सीमाओ पर पहुँची, तब प्रतिक्रिया-स्वरूप एक दूसरी व्यक्तिवादी विचारधारा और कलादर्शन हिंदी के क्षेत्र म अवतरित हुआ। यह व्यक्तिवादी दृष्टि अपनी प्रायोगिक विशेषताओ के कारण प्रयोगवादी कहलाने लगी। यदि यह क्रिया प्रतिक्रिया अपनी अतिशयता म जाकर साहित्य और काव्य को

दो ध्रुवों की ओर अपसारित न करती, तो सम्भवत. हिन्दी साहित्य के विकास में अधिक संतुलन की स्थिति बनी रहती। पर जब दो सम्प्रदाय परस्पर विरोधी वैचारिक आधारों को लेकर साहित्य मे अवतरित होते हैं, तब समस्या जटिल हो जाती है। फिर भी जातीय जीवन की चेतना समस्त वादो से अधिक शक्तिशालिनी होती है और वह जातीय साहित्य मे सतुलन की स्थिति बनाये रखती है। यही कारण है कि प्रगतिवाद एव सम्प्रदाय के रूप मे अब नाम-शेष ही रह गया है और उसकी प्रतिक्रिया मे उत्पन्न प्रयोगवाद या अतर्मुखी व्यक्तिनिष्ट भावना का काव्य भी धीरे धीरे अपनी अतिवादिता समाप्त कर रहा है। निराला के काव्य को किसी वाद-विशेष की सीमा मे रखना सभव नहीं है। उनके काव्य मे प्रगतिवाद की भावात्मकता और प्रयोगवाद की चमत्कारी शिल्प-रचना भी प्राप्त है। परन्तु यह निराला-काव्य का पार्श्वचित्र है। इससे उसकी समग्रता का आकलन नहीं होता।

निराला के पूर्ववर्ती काव्य मे स्वच्छदतावाद की जो बलशाली प्रेरणा है, वह उनके समस्त साहित्य को किसी भी अन्य वाद के छोटे घेरे मे घिरने नहीं देती। स्वच्छदतावाद कोई सीमित वैचारिकवाद नही है। वह आधुनिक युग की वृहत भावधारा और विराट् कला-शैली है। आधुनिक युग मे हम जिस सीमित अर्थ मे नये वादो को जानने-पहचानने लगे हैं, उस अर्थ मे स्वच्छदतावाद कोई वाद नहीं है। अतएव जब हम कहते हैं कि निराला स्वच्छदावादी कवि हैं, तो हम दूसरे शब्दों मे यह निर्देश करते हैं कि निराला आधुनिक कवि हैं।

कुछ समीक्षकों ने स्वच्छदतावाद की भी सीमाएँ निर्धारित की हैं। वे एक ओर उसे शास्त्रीय, नैतिक और मर्यादा-प्रधान प्राचीन काव्य से पृथक् करते हैं, तो दूसरी ओर नवीन यथार्थवाद से भी उसकी पृथक भूमिका बतलाते हैं। परन्तु स्वच्छ-दतावाद अपने व्यापक प्रसार मे न तो नीतिवाद का और न कला-सौष्ठव का विरोधी है, और न वह यथार्थ की भूमिका स्पर्श करने मे हिचकता है। जिसे हम क्लासिकल पोएट्री कहते हैं उसके अनेकानेक तत्व स्वच्छदतावाद ने भी अपनाए हैं और जिसे हम रियलिज्म कहते हैं, उसके विविध आयाम स्वच्छदतावाद को अबाध गति मे समाहित हुए हैं। स्वच्छदतावाद मूलत एक जनतांत्रिक और मानवतावादी आन्दोलन का सहचर और सहकारी रहा है। उसने सामाजिक और काव्यगत रूढियो का तिरस्कार किया, इसलिये वह स्वच्छदतावाद कहलाया। परन्तु स्वच्छदतावादियो ने किसी सकीर्ण विचार-दर्शन को नही अपनाया। निराला के काव्य म भी सीमित अर्थ मे किसी वाद की स्थिति नही है। उनकी गणना जब कभी होगी, स्वच्छदतावाद की सरणी में ही होगी। इस स्वच्छदतावाद की एक मूलभूत विशेषता व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की है। निराला के काव्य में इसी स्वातन्त्र्य का स्वर सर्वत्र ध्वनित रहा है। प्राचीन काव्य मे यह व्यक्ति-स्वातन्त्र्य दर्शन विरल है। निराला का काव्य यदि प्राचीन काव्य से भिन्न है, तो इस अर्थ म कि उसमे व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की नई आवाज पायी जाती है।

इस स्वच्छंदतावादी कवि ने अपने परवर्ती काव्य मे, जहां एक ओर उदात्त की भूमिका अपनाकर 'राम की शक्ति पूजा' और 'तुलसीदास' का प्रणयन किया, तो दूसरी ओर हल्के हास्य-व्यंग और विनोद की चमत्कारपूर्ण सृष्टिया भी की, जहां 'सरोजस्मृति' मे पारिवारिक करुणा का आलेखन किया, वहां उसने आध्यात्मिक भूमिका पर शात रस के प्रार्थना-गीत भी लिखे।

छन्दों की भूमिका पर निराला के नित-नूतन प्रयोग उसे स्वच्छंदतावादी के अतिरिक्त और कुछ नही सिद्ध करते। उसकी भाषा मे जहां एक ओर मिल्टन की शब्दावली की भास्वरता है, वही कीट्स के मधुर शब्द-संगीत की भी मीठी ध्वनि है।

कही-कही निराला की भाषा-सम्बन्धी स्वच्छंदता असामजस्य की सीमा तक पहुंचती है। इस असामजस्य का वरण भी कोई नियमानुवर्ती कवि नही कर सकता। यहाँ भी निराला की स्वच्छद प्रवृत्ति क्रियाशील है। अपने उत्कर्ष और अपकर्ष मे निराला का काव्य उनके व्यक्तित्व की अनगढ़ता और स्वच्छन्दता का ही परिचायक है। वाद की दृष्टि से नहीं (क्योंकि वाद निराला के लिए छोटा पडता है) किन्तु युगीन-चेतना की दृष्टि से; और अपने वैयक्तिक सघटन की भूमि पर से निराला सर्वत्र स्वच्छन्दतावादी हैं।

स्वच्छन्दतावाद का स्वरूप कल्पना के सहयोग से लौकिक को अलौकिक भूमि पर और अलौकिक को मानव-सवेदना द्वारा लौकिक ग्राह्य भूमि पर ला सकता है। इसका प्रमाण कोलरिज और वर्ड्सवर्थ की कविताओ मे मिलता है। जो तत्व इस कल्पना-प्रधान काव्य को ग्रहणशील बनाता है उसे कोलरिज ने 'सस्पेंशन आफ डिसबिलीफ' अर्थात् अविश्वास का निराकरण कहा है। जहां एक ओर कोलरिज का स्वच्छन्दतावादी काव्य कल्पना-प्रधान होकर भी अपने गम्भीर सवेदनों के कारण सार्वजनिक है, सार्वजनिक ही नहीं, महान भी है, उसी प्रकार वर्ड्सवर्थ का काव्य साधारणजनों के जीवन को साधारण परिवेश मे और अतिसाधारण भाषा मे उपस्थित कर लोकप्रिय बना है। यह साधारणता उसके काव्य मे यथार्थ या वास्तविकता का आनयन करती है। परन्तु वर्ड्सवर्थ का चिन्तन-प्रधान व्यक्तित्व उन यथार्थोन्मुख जीवन-चित्रो को गम्भीर भावो का वाहक बना देता है। इस प्रकार एक ओर कोलरिज की कल्पनाशीलता वास्तविक मानव-भाव का आधार लेकर और दूसरी ओर वर्ड्सवर्थ की यथार्थोन्मुखता उसके चिन्तन का ससर्ग पाकर, महान काव्य का निर्माण कर सकी है और ये दोनों ही कवि सर्वसम्मति से स्वच्छन्दतावादी माने गये है।[१]

---

1 "During the first year that Mr. Wordsworth and I were neighbours, our conversations turned frequently on the two cardinal points of poetry-the power of exciting the sympathy of the reader by a faithful adherence to the truth of nature and the power

अतएव, स्वच्छन्दतावाद का निर्णायक तत्व केवल कल्पना या केवल यथार्थ नहीं है; बल्कि कल्पना या यथार्थ में अनुस्यूत जीवन सम्बन्धी गम्भीर भावचेतना है। निराला के काव्य में भी कहीं कल्पना की प्रमुखता है और कहीं यथार्थ की योजना। परन्तु दोनों ही स्थितियों में उनका काव्य एक गम्भीर जीवनाशय से सलग्न है। यह गम्भीरता ही निराला के काव्य को कल्पना और यथार्थ की अनेक भूमियों में ले जाकर स्वच्छन्दतावाद की भूमि से पृथक नहीं करती। निराला प्रकृत्या स्वच्छन्दतावाद के निसर्गजात कवि हैं।

● विविध काव्यरूप

यों तो निरालाजी अपने काव्यरूपों की विविधता के लिए आरम्भ से ही ख्यात रहे हैं, पर उनके परवर्ती काव्य में भी इस वैविध्य की कमी नहीं है। काव्य-रूप का सम्बन्ध जहाँ एक ओर वर्ण्य विषय और उसकी कलात्मक उपयुक्तता से है, वहीं दूसरी ओर इसका सम्बन्ध काव्यकृति में नियोजित भावों और रसों से भी है। सामान्यतः वीर रस की काव्य-सृष्टि उस काव्य-रूप के अन्तर्गत होती है, जिसे वीर-गीत या बेलेड पोएट्री कहा गया है। इसी प्रकार कोमल और मार्मिक भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिये प्रगीत या लिरिकल पोएट्री का काव्यरूप अपनाया जाता है। परन्तु ये काव्य-रूप एक दूसरे से नितान्त परिच्छिन्न नहीं हैं। इसका सबसे बड़ा प्रमाण वर्ड्सवर्थ और कोलरिज की उस प्रख्यात पुस्तक में मिलता है, जिसे 'लिरिकल बेलेड्स' का नाम दिया गया है। इस पुस्तक के 'लिरिकल' और 'बेलेड्स' शब्द यद्यपि विशेष्य और विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुए हैं, पर इनका एक साथ आना ही लिरिक और बेलेड की समाविष्ट समीपता का परिचायक है। यदि प्रगीत और वीर-गीत काव्य-रूप नितान्त पृथक् होते तो इन दोनों का समीकरण दो प्रसिद्ध कवियों की इस काव्य-पुस्तक में कैसे हो पाता? वीराख्यान या वीरगीत मूलतः जनकाव्य है। उसकी परम्परा लोक-गीतों के माध्यम से साहित्य में आई है। चूँकि लोकगीत जन-साधारण की वस्तु होते हैं, उनकी रचना में सामूहिकता होती है, इसलिये उनमें शिष्ट साहित्य का संपूर्ण सौन्दर्य नहीं आ सकता। परन्तु इन्हीं लोक-गीतों को जब वर्ड्सवर्थ और कोलरिज जैसे कवि साधन रूप में ग्रहण कर इनका परिमार्जन करते हैं और इनमें गहनतर भावों की सफल योजना करते हैं, तब ये लोकाख्यान-मूलक वीरगीत भी अपनी ग्राम्यता को छोड़कर उच्च साहित्यिक सृष्टि के माध्यम बन जाते हैं। इन वीर गीतों में प्रगीतात्मक या 'लिरिकल' काव्य की विशेषतायें सन्निहित हो

---

of giving the interest of modesty by the modifying colours of the imagination." Littledale: Quotation from Coleridge in his Introduction to 'Lyrical Ballads' by Words worth & Coleridge, P. xv, xvi.

जाती हैं और ये अपने मूल स्वरूप को छोड़ बैठते हैं। इस उदाहरण से यही सिद्ध होता है कि काव्य-रूप चाहे जो हो, उसको नए-नए साचों मे ढालकर कवि अपनी प्रतिभा द्वारा नवीन और सूक्ष्मतर भावो का वाहक बना सकता है। यद्यपि वर्ड्सवर्थ और कोलरिज ने काव्यरूप की भूमिका पर बेलेड को अपनाया था, पर उसका परिष्कार करके इन दोनों कवियो ने उसे विशिष्ट प्रगीत-काव्य का स्वरूप दे दिया।

बहुत कुछ ऐसी ही स्थिति निराला-काव्य की भी है। निरालाजी ने वीरगीत अथवा पौराणिक गाथा की भूमिका पर 'राम की शक्तिपूजा' और 'तुलसीदास' जैसे काव्यों की रचना की। परन्तु रचनाक्रम मे उन्होंने मूल काव्य-रूपों को एक नया ही स्वरूप प्रदान कराया। निराला की ये काव्य-सृष्टियां इतनी अधिक अलंकृत और संस्कृत-गर्भा हैं कि उन्हें पढ़कर उनके मूल काव्य-रूप की ग्रामीणता का पता ही नही चलता; बल्कि हम यह भी कह सकते है कि इन बडी कविताओं मे निराला शिष्ट साहित्य की कृत्रिम सीमाओ तक पहुच गये है। परन्तु यहाँ हम जिस प्रश्न पर विचार कर रहे हैं वह काव्यरूप का प्रश्न है। इन रचनाओं मे निराला ने मूल काव्यरूप को इतना बदल दिया है कि वह बेपहचान बन गया है।

इसी प्रकार परवर्ती कृतियो का एक दूसरा काव्य-रूप शोकगीति है, जिसकी परम्परा भारतीय काव्य मे बहुत कम प्राप्त होती है। संस्कृत मे अज-विलाप (कालिदास) अथवा हस-विलाप (नैषध) जैसे विलाप-काव्य मिलते हैं। निराला ने इस काव्यरूप को एकदम नया साचा देने का प्रयत्न किया है। हिन्दी मे शोकगीति का यह उदाहरण निराला की अपनी देन है।

एक तीसरा काव्य-रूप व्यग-गीतों का है, जिसे सेटायर या सेटायरिकल पोएट्री भी कहते हैं। इस काव्य रूप को आधुनिक हिन्दी मे निराला ने आविष्कृत किया, यह कहें तो अनुचित न होगा। यद्यपि बालमुकुन्द गुप्त और महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'कल्लू अल्हैत का आल्हा' जैसी रचनायें की थी, किन्तु निराला की इन व्यंग-कविताओं मे हास्य, विनोद आदि के तत्व भी सलग्न किए गए हैं। निराला का व्यंग काव्य-रूप व्यग-काव्य की उदार या सहानुभूतिपूर्ण परम्परा मे आता है, यद्यपि उसमे उपहास का पक्ष भी अनेक बार दिखाई देता है।[१]

इसके अतिरिक्त निराला के गीतो की परम्परा उनके परवर्ती काव्य मे विकसित होती गई है। गीत भी एक स्वतन्त्र काव्य-रूप है, जिसमे शब्द और स्वर की सम्मिलित शक्तियां काम करती हैं। निराला ने इस गीत काव्य-रूप को आधुनिक युग मे अपूर्व महत्व प्रदान किया है जिसकी चर्चा हम अन्यत्र कर चुके हैं। निराला

---

१ "इस प्रकार हम देखते हैं कि सहानुभूतिपूर्ण हास्य, तीव्र आलोचना तथा व्यंग्य के आधार पर उपहास-काव्य के तीन सामान्य भेद किए जा सकते हैं।"
—व्यग काव्य के तीन भेद-डा० रामअवध द्विवेदी-साहित्य रूप, ९

के सांस्कृतिक और शृंगारिक प्रगीत जो आरंभ में मुक्तछंद में लिखे गये थे उनके परवर्ती काव्य में छद-बद्ध हो गये हैं। उनकी शृंगारिकता घट गई है और सांस्कृतिकता बढ़ गई है। मुक्तछंदों की गतिमानता कम हो गई है। उसके स्थान पर बौद्धिक और वैचारिक तथ्य प्रमुखता ग्रहण कर लेते हैं। 'सहस्राब्दी' नामक कविता इस का एक अच्छा उदाहरण है। इन सबके अतिरिक्त निराला ने उर्दू के काव्य-रूपों को भी अपनाया है, जिनमें गजल प्रधान है। यद्यपि इस गजल-सृष्टि में निरालाजी प्रयोग की सीमा से ऊपर उठकर गजल काव्य-रूप की भूमि पर कम ही पहुँचे हैं।

इन विविध काव्य-रूपों को देखते हुये निराला को किसी एक काव्य-रूप का आविर्भावक या अनुवर्ता मानना 'वदतो व्याघात' ही होगा। फिर भी यह प्रश्न कुछ समीक्षकों ने उठाया है कि निराला का केन्द्रीय काव्य-रूप क्या है? जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, काव्य रूपों का सम्बन्ध साहित्यिक रसों से भी है। इसलिये यह प्रश्न भी होता है कि निराला का केन्द्रीय काव्य-रस क्या है? इस सम्बन्ध में आचार्य पं० नन्ददुलारे वाजपेयी का वक्तव्य उल्लेखनीय है। उन्होंने कहा है–'निराला के काव्य में रस उनकी सांस्कृतिक चेतना की उपज है। यदि वह सांस्कृतिक चेतना सुदृढ़ न होती, तो वे विभिन्न रस-भूमियों में जाकर किसी एक की भी मार्मिक अवतारणा न कर पाते। यह कहना कठिन होगा कि उनमें किस रस की प्रधानता है। जैसे प्रकृति की ही कोई वस्तु विकसित होती हुई विभिन्न रूप धारण करती है, उसी प्रकार उनका कवि-व्यक्तित्व आगे बढ़ा है। उनमें वीर रस की भी योजना है। उनमें सुन्दरतम शृंगारिक तत्व भी जुड़े हैं। उनके अन्तिम समय के गीत मूलतः शांत और करुण रसों से सपृक्त हैं। उनके काव्य को किसी रस-विशेष की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता।''[1]

इसी आधार पर हम यह भी कह सकते हैं कि निराला के काव्य-रूप भी किसी एक परिधि में नहीं बाँधे जा सकते। उन्होंने कोमल और रूक्ष, मृदुल और उदात्त भावों के अनुरूप विविध काव्य-रूपों की सृष्टि की है। जो लोग निराला को मुख्यतः बलेड या वीरगीत का काव्य-सर्जक मानते हैं, उन्हें यह भी देखना होगा कि निराला की अधिकांश रचनाएं आख्यानमूलक या कथात्मक भी हैं, जब कि वीरगीत के लिये कथा या आख्यान आवश्यक है। आख्यानमूलक वीर गीतों को निराला ने जो काव्यात्मक रूप दिया है, उससे वे केवल वीरगीत न रहकर महाकाव्योचित उदात्त भूमिका पर आ गये हैं। सरलता और स्वाभाविकता के स्थान पर उनमें आलंकारिता और गांभीर्य आ गया है, जो वीरगीतों की विशेषता नहीं है। पश्चिमी साहित्य में वीरगीत एक विशेष छंद और शैली का अनुकरण करते हैं, जो गेय होती है। परन्तु

१ ''निराला-जयन्ती'' के अवसर पर कान्स्टिट्यूशन क्लब, दिल्ली में दिये गये भाषण से।

निराला की इन साहित्यिक-आख्यान कविताओ मे गेयता का गुण नहीं है और छदो की कोई सुस्थिर योजना नही दिखाई देती। अनेक बार मुक्त छंद की भी ऐसी रचनायें प्रस्तुत की गई हैं। अतएव हमे पश्चिमी परिपाटी का अनुसरण न कर भारतीय काव्य-परम्परा की ओर दृष्टिपात करना होगा। वीरगीतो की परम्परा चारणो से सबद्ध है; जब कि निराला-काव्य मे चारण-काव्य की विशेषता उपलब्ध नही है। ऊपर हमने प० वाजपेयीजी का जो उद्धरण दिया है, जिसमे रस के आधार पर निराला-काव्य को देखा गया है, निराला की भूमिका सास्कृतिक कही गई है। वह दार्शनिक भी है, जो चारण-काव्य के दर्शन-निरपेक्ष स्वरूप से बहुत भिन्न है। इस प्रकार भारतीय विवेचन के आधार पर निराला को प्रमुखतः महाकाव्योचित सभार का कवि कहा जायगा। परन्तु यहा भी निराला की मनोरम कल्पनायें, उनकी वैयक्तिक विद्रोह की भावनायें, जो अनेक बार कवि शैली का स्मरण कराती हैं, वीरगीत के निर्वैयक्तिक स्वरूप से एकदम पृथक हैं। पाश्चात्य विवेचना मे प्रगीत काव्य की रचना के लिए वैयक्तिक वेदना की अनिवार्यता मानी जाती है। निराला की वैयक्तिक वेदना विद्रोह-मूलक है। वह असफल प्रेम या सौन्दर्यलिप्सा की वेदना नही है। परतु इसी कारण वह वैयक्तिक नही है, ऐसा नही कहा जा सकता। भारतीय काव्य-परिपाटी का ध्यान रखते हुए निराला ने अपनी वैयक्तिक अनुभूतियो को एक नि:सगता और तटस्थता देने की निरतर चेष्टा की है। अतएव उनकी प्रगीतात्मकता मे सदेह करने का अवकाश नही है। बल्कि उनकी समग्र काव्य-सृष्टि को देखते हुए उन्हे प्रगीतात्मक कवि कहना ही सर्वथा उचित होगा।

● आधुनिक पश्चिमी काव्य मे निराला की स्थिति

वर्तमान समय मे देश-विदेश की कविताओ को तथाकथित विश्वकाव्य की भूमिका पर रखकर देखने का उपक्रम किया जाता है। विश्व-काव्य से अधिकतर पश्चिमी काव्य का अर्थ लिया जाता है। यूरोप और अमेरिका मिलकर ही आधुनिक विश्व-काव्य का प्रतिनिधित्व करते हैं। भारतवर्ष का सम्पर्क इग्लैंड से वर्षों तक रहा है और अग्रेजी काव्य अनेक बार योरोपीय वादो की दृष्टि से परखा जाता रहा है। इसी सदर्भ मे आधुनिक भारतीय काव्य और उसके साथ हिन्दी काव्य भी, अग्रेजी कविता तथा योरोपीय वादो के मार्फत समझा जाता रहा है। एक और भी प्रवृत्ति है जो राष्ट्रीय काव्य को अतर्राष्ट्रीय भूमिका पर रखने का प्रयास करती है। वह प्रवृति है समस्त ससार मे एक सी परिस्थितियो की कल्पना और एक से मानव-भविष्य की अनुचिता। कदाचित यह समझा जाता है कि आज विश्व मे कोई एक समान जीवन-व्यवस्था काम कर रही है और इसलिए नाना देशो के काव्य मे एक सी भाव-भूमि और कलाशैलियो का अपनाया जाना स्वाभाविक है। हमारे विचार से ये दोनो ही परिकल्पनायें अधूरी और अपूर्ण हैं। यद्यपि ससार के विविध राष्ट्रो का समीकरण होने लगा है, पर उसकी गति अतिशय मद है और उसके आदर्श प्रायः अनिर्णीत हैं।

योरोपीय कविता और काव्य चिंतन में एक और भी प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। थोड़े थोड़े वर्षों में बदलनेवाली राष्ट्रीय घटनाओं का प्रभाव काव्य शैलियों पर और काव्य रचनाओं पर देखा जाता है। अल्पकाल में बदलनेवाली राष्ट्रीय परिस्थितियाँ काव्य की नियामक मान ली जाती हैं और उसी परिपार्श्व में काव्य को परखने का प्रयत्न किया जाता है। इस विशेष प्रवृत्ति के आगमन के कारण समाहित काव्य की धारणा नहीं बन पाती और कवियों के व्यक्तित्व के प्रति न्याय नहीं हो पाता। यद्यपि कविता राष्ट्रीय परिस्थितियों से प्रभावित होती है पर बड़े कवि अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व भी रखते हैं। वे वायुदर्शक यन्त्र की भाँति हवा की गति की सूचना-मात्र नहीं देते, उन्हें एक व्यापक मिशन या उद्देश्य की पूर्ति भी करनी होती है। आज के विश्वकाव्य की समीक्षा में ऊपर प्रदर्शित तीनों भूमिकायें अपर्याप्त हैं। भारतीय जीवन में आज के कवि का स्वरूप यूरोपीय कवि के स्वरूप से काफी भिन्न है। अतएव हम निराला को यूरोपीय या पश्चिमी काव्य की संगति में रखकर पूरी तरह नहीं देख सकेंगे। उनकी कला शैली की विशेषतायें भी भारतीय परम्परा से अनुबद्ध हैं। फिर भी यदि निराला की तुलना पाश्चात्य पृष्ठ भूमि पर करनी हो, तो हम यही कहेंगे कि निराला का काव्य स्वच्छंदतावादी और मानववादी मूल्यों की अभिव्यंजना करता है। वह एक ओर पश्चिमी काव्य की व्यक्तिवादी प्रतीकवादी या अस्तित्ववादी प्रवृत्तियों से पृथक है तो दूसरी ओर वह द्वंद्वात्मक भौतिकवादी या किसी प्रकार के भौतिकवादी या अनुशासित काव्य सरणी से भिन्नता रखता है। निराला-काव्य का केन्द्रीय स्वर प्रगतिमुखी, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक है। इन शब्दों की विस्तृत व्याख्या न कर हम इतना ही कहेंगे कि उनका काव्य मानव उत्कर्ष की सम्भावना और आस्था पर आश्रित है और मानव सम्बन्धों में आकांक्षित स्वस्थ अकुंठित प्रेम सहानुभूति और सामाजिक वैषम्यों के परिहार की भूमिका पर ही हम निराला काव्य को विश्व-काव्य के समकक्ष रखकर देख सकते हैं।

● समग्र आकलन

साहित्यिक सौष्ठव की दृष्टि से निराला-काव्य का समग्र आकलन करते हुये हम कह सकते हैं कि उनकी पूर्ववर्ती और परवर्ती रचनाओं में पर्याप्त अंतर आ गया है। परन्तु वह सारा अंतर उनकी जीवन दृष्टि या विचारधारा को बदलने में अक्षम रहा है। स्वभावतः कवि की वयस प्रौढ़ता के साथ उसकी भावनाधारा अधिक सामाजिक हो गई है। वे भारतीय समाज के विरोधों और असंगतियों से अधिक खिन्न और व्याकुल हैं। वे अपनी निजी व्याधियों से आक्रांत भी हैं और इसलिये उनमें शरणागति की भावना बढ़ गई है। वे बृहत्तर काव्य लिखने के महत्वाकांक्षी हैं। अतएव उन्होंने कतिपय आख्यानों का आधार भी लिया है पर इन आख्यानक काव्यों में वे अपनी मूल दार्शनिकता को प्रौढ़ और उदात्त रूप में ही उपस्थित कर सके हैं। उनमें पांडित्य के तत्व भी पुष्टतर हुये हैं अतएव वे उर्दू छंदों और मुहावरों का भी प्रयोग कर सके हैं।

लोक-लयो और लोकगीतो की भी अनुवृत्ति की है। हास्य और व्यग के प्रसग उन्होने अपनी पिछली कविताओ मे उठाये हैं, उनमे यथार्थोन्मुख शैली के प्रचुर लक्षण हैं। भाषा सरल और मुहावरेदार हो गई है। परन्तु शैलीगत परिवर्तन को हम यथार्थवाद नही कह सकते, क्योकि यथार्थवाद एक शैली ही नही, एक जीवन-दृष्टि भी है। निराला की जीवन-दृष्टि बुद्धिवाद, विज्ञानवाद और भौतिकवाद को सदैव चुनौती देती रही है और इन रचनाओ मे भी वह चुनौती मौजूद है। निराला के पिछले गीत इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं कि वह परिस्थितियो के आक्रमण से पूर्णत परिक्लांत होकर एक आराध्य की शरण मे आ गये है। यह उनकी आध्यात्मिक भावना का ही प्रमाण और परिणाम है। जहा कही निराला ने यथार्थवादी भावना-धारा अपनाई भी है, *कुरूप यथार्थ का चित्रण किया है*, जैसे 'खजोहरा' और 'स्फटिक शिला' मे, वहाँ वह एक आनुषगिक प्रयोग से आगे नही गये। अपने ऋतु-गीतो मे उन्होने प्रकृति के प्रति वही आध्यात्मिक लालसा और अनुरक्ति प्रकट की है जो उनकी समस्त कविता की आधारशिला है। इन सब प्रमाणो के रहते हुए निराला को स्वच्छदतावाद की भूमि से हटाकर यथार्थवाद का अनुयायी बनाना, केवल वाक्छल और वादी-दुराग्रह का परिणाम है। प्रत्येक बडा कवि अपने विकास-क्रम मे सासारिक अनुभवो की अभिवृद्धि करता है। निराला के विकास क्रम मे इन्ही अनुभवो की अभिवृद्धि हुई है। वे आकाश को छोड कर पृथ्वी पर आये है। पर उनका लक्ष्य पृथ्वी को रहने योग्य बनाना है। यह विशुद्ध मानववादी लक्ष्य है। इसमे किसी प्रकार का भौतिकवाद देखना, धुधली दृष्टि का परिचायक है। निराला आरम्भ से मानव-सस्कृति और मानव-स्वतन्त्रता के उन्नायक कवि रहे है और उनकी अतिम समय की काव्य-रचना मे भी इन्ही आशयो की अभिव्यजना हुई है। निराला के निजी अनुभव क्रमश कटु होते गये है। उनकी सहानुभूति का क्षेत्र बढता गया है। साथ ही उनकी निजी वेदना भी गभीर होती गई है। वे अतिम समय मे भारतीय सामाजिक जीवन की विकृतियो से अधिक क्षुब्ध थे। यही कारण है कि उनकी परवर्ती रचनाओ मे उल्लास और सौन्दर्य की अपेक्षा करुणा और क्षोभ के स्वर प्रधान है।

● तुलनात्मक वैशिष्ट्य

आधुनिक हिन्दी-काव्य की विशिष्ट भूमिका पर निराला को परखने का उपक्रम नया नही है। समस्त रुचिभेदों को और विचार-भेदो को निराकृत कर देने के पश्चात् बीसवी शताब्दी के हिन्दी-काव्य मे तीन ही प्रमुख व्यक्तित्व पारस्परिक तुलना के अधिकारी बन सके है। स्पष्ट ही वे प्रसाद, निराला और सुमित्रानन्दन पत के व्यक्तित्व है। युगीन प्रयत्न काव्य के ये ही प्रमुख स्रष्टा माने गये है। इनके एक छोर पर श्री मैथिलीशरण गुप्त का नाम लिया जाता है तो दूसरे छोर पर महादेवी वर्मा का नामोल्लेख किया जाता है। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', 'भारतीय आत्मा' 'दिनकर' आदि के नाम भी कुछ क्षेत्रो मे परिगणित होते हैं। आधुनिक

चेतना को व्यापक रूप से प्रतिफलित करने वाले प्रतिनिधि कवियो मे प्रसाद, निराला और पत के नाम अग्रणीय हैं। बीसवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक ये तीनो कवि उभर कर हिन्दी जनसमाज के भावात्मक विकास के शीर्ष विन्दुओ का स्पर्श करने लगे हैं। ये तीनो ही कवि दार्शनिक और चितक हैं। उनके काव्य मे एक वैचारिक समग्रता है। इनके आगे और पीछे के कवियो के सम्बन्ध मे यही बात नही कही जा सकती। अतएव राष्ट्रीय चेतना के समग्र उद्भावक और निरूपक इन्ही तीन को कहा जा सकता है। प्रसादजी ने 'कामायनी' काव्य का निर्माण करके युग-चेतना को अधिक व्यापकता से रूपायित कर दिया है। पत का काव्य आधुनिक सौंदर्य चेतना और परिष्कृति का काव्य है। निराला के काव्य मे ओज, शक्तिमत्ता और पौरुष के साथ आधुनिक युग की भौतिकवादी जीवन दृष्टि के विरुद्ध एक मानवतावादी चुनौती दी गयी है। वह प्रसाद और पत के काव्य की अपेक्षा अधिक स्वच्छद और सर्वतोमुखी है। जब कि पतजी के काव्य का परवर्ती चरण विचार बोझिल है तब निराला का परवर्ती काव्य यत्र-तत्र उनके मानसिक विक्षेपो के बावजूद अपनी भावप्रवणता और रचना-कौशल मे अस्खलित है। यहाँ गगाप्रसाद पाडे का उद्धरण देना अनुचित न होगा—"महाकवि निराला हमारे प्रतिनिधि राष्ट्रीय कवि हैं। उनका काव्य हमारी सभ्यता तथा सस्कृति का प्रतीक है। विशेषता यह है कि इस कवि की राष्ट्रीय भावना और विश्वकल्याण की भावना मे किसी प्रकार का विरोध नही है।"[1]

तुलना सदैव मतभेदो की सृष्टि करती है और फिर तुलना का अधिकार पारगत विद्वानो को होता है। हम यहाँ आत्यतिक तुलना का साहस नही कर सकते। पर इतना तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि आधुनिक हिन्दी काव्य मे निराला का वैशिष्ट्य यदि सबसे श्रेष्ठतर नही है, तो किसी से हीनतर भी नही माना जा सकता। आज से तीस वर्ष पूर्व आचार्य वाजपेयीजी ने अपनी तरुण चेतना के प्रकाश मे हिन्दी काव्य की वृहत्त्रयी का निरूपण करते हुए प्रसाद निराला और पत का जो नामोल्लेख किया था, वह समय के समस्त व्यवधानो को पारकर आज भी तथ्यपूर्ण बना हुआ है और नयी पीढी के तरुण विद्यार्थी के रूप मे प्रस्तुत पक्तियो का लेखक भी अपने को उनसे पूर्णत सहमत पाता है।[2]

---

१ गगाप्रसाद पाडे महाप्राण निराला—पृ० ३७६।

२ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी—'हिन्दीसाहित्य बीसवी शताब्दी, म जयशकर प्रसाद' शीर्षक लेख—पृ० १०८—

"नवीन युग की हिन्दी-कविता की वृहत्त्रयी के रूप मे श्री जयशकर प्रसाद, श्री सूर्यकात त्रिपाठी 'निराला' और श्री सुमित्रानदन पत की प्रतिष्ठा मानी जाती है। उपर्युक्त वृहत्त्रयी ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दी-काव्य मे युगान्तर उपस्थित कर चुकी है।"

● शताब्दी का कवि

निराला के देहावसान से हिन्दी काव्य में एक विशिष्ट युग की परिसमाप्ति हो गई है। यह युग सामान्यतः छायावाद-युग के नाम से प्रचलित है, यद्यपि निराला के व्यक्तित्व और काव्य-रचना से प्रभावित होकर इस छायावाद-युग की सीमाएँ भी अतिक्रांत हो गई हैं। हिन्दी के समीक्षक निराला के काव्य में छायावाद का उत्कर्ष तो देखते ही हैं, उन्हें इस काव्य में छायावादोत्तर काव्य की वे भूमिकाएँ भी दृष्टिगत होती हैं जिन्हें मोटे तौर पर प्रगतिशील और प्रयोगशील काव्य कहा जाता है। इस प्रकार निराला की काव्य-रचना सन् १९१५ से लेकर १९६० तक जिन भावभूमियों पर प्रसरित है, और जिन काव्य-प्रवृत्तियों को उद्भावित करती रही है उन्हें किसी साहित्य-युगविशेष का नाम नहीं दिया जा सकता। आचार्य वाजपेयीजी के हाल के एक वक्तव्य के अनुसार हम यह कह सकते हैं कि उनकी पूरी शताब्दी की कविता है और उससे प्रभावित होने वाले कवि पूरी शताब्दी तक आत्मविस्तार करते रहेंगे। यद्यपि अभी इस शताब्दी के ६२ वर्ष ही व्यतीत हुए हैं, पर निराला की काव्य-रचनाएँ आज के नवयुवक कवियों में जो प्रेरणाएँ दे रही हैं, वे निकट भविष्य में समाप्त होने वाली नहीं जान पड़तीं। यदि आज के नवयुवक कवियों की काव्य कृतियाँ इस शताब्दी के अंतिम चरणों में अपनी परिणति प्राप्त करेंगी, तो इस समय तक निराला का वैयक्तिक प्रभाव अवशेष नहीं होगा। इसके पश्चात् निराला की काव्य-रचनाएँ साहित्यिक इतिहास की स्थायी निधियों में परिनिष्ठित होंगी और साहित्यिक अमरता की प्रतीक बनेंगी। परन्तु शताब्दी के अन्त तक वे अधिक व्यापक और गंभीर रूप में नये कलाकारों को अनुप्राणित करती रहेंगी। इस दृष्टि से यदि निराला को शताब्दी का कवि और उनके काव्य को शताब्दी का काव्य कहा जाय, तो यह अनुचित न होगा।

हमें यहाँ देखना है कि निराला के संपूर्ण काव्य में कितनी अनेकरूपता—भावगत, शैलीगत और भाषागत कितनी विभिन्नता है और वे कितने भिन्न २ रूपों में इस शताब्दी की हिन्दी काव्य-सर्जना को आधार देती रही हैं। आधुनिक कवियों में निराला ही ऐसे कवि हैं जिनमें काव्य सर्जना का अपूर्व वैविध्य देखा जाता है। एक ओर उनकी मनोरम और संयत शृंगार की रचनाएँ हैं, तो दूसरी ओर उनकी वे शृंगारिक कृतियाँ हैं जो विद्रोह की भूमिका पर निर्मित हैं। उनके क्रांतिकारी और प्रखर वीर रस के काव्य में भी अनेक भावभूमियाँ परिलक्षित होती हैं। 'राम की शक्ति पूजा' जैसी रचना में यदि वीरत्व का उदात्त पक्ष मिलता है, महाकाव्योचित गरिमा मिलती है, तो 'बादल राग' जैसी रचनाओं में विस्फोटक भावनाओं का प्राधान्य है। यदि 'महाराज शिवाजी का पत्र' में करुणा मिश्रित वीर रस की भूमिका है, तो 'जागो फिर एक बार' में नवोद्बोधन का प्रचण्ड वेग है। उनके राष्ट्रीय गीतों में भी जहाँ एक ओर स्वदेश की सुषमा और सौन्दर्य प्रतिच्छायामित है, सांस्कृतिक तत्वों का गहन

सयोग है, वहा दूसरी ओर राष्ट्रीय विघटन और विपन्नता के प्रति करुण सवेदना भी है। निराला के ऋतुगीत हिन्दी साहित्य मे एकदम अप्रतिम है। ऋतुगीतो मे एक ओर प्रकृति के विकास और उल्लास के चित्र हैं, तो दूसरी ओर उसका रौद्र और विस्मयकारक स्वरूप भी है। उनकी कविता मे जहा एक ओर 'सरोज-स्मृति' जैसी वैयक्तिक भूमिका की अतरग करुणा है, वहाँ 'तुलसीदास' जैसे काव्य म वस्तुमुखी तटस्थता पर आधारित राष्ट्रीय परवशता के करुण दृश्य-चित्र हैं। यदि एक ओर उनके काव्य मे दार्शनिक स्तर पर शान्त रस की भाव-योजनाएँ हैं, तो दूसरी ओर विशुद्ध वैयक्तिक आत्म-निवेदन भी है। शान्त रस की ये द्विविध रचनाएँ भावनाओ के दो छोरो का परिस्पर्श करती हैं। जिस कवि ने उदात्त और प्राजल भावो की विशाल गगा का अवतरण किया है, उसी कवि ने हास्य और व्यग्य की तरल-चचल स्रोतस्विनिया भी प्रवाहित की है। वादो की भूमिका पर आधुनिक युग के अनेकानेक वादो के निदर्शक तत्व निराला के काव्य मे सहज भाव से मिल जाते हैं। इस शताब्दी के काव्य इतिहास मे इतनी निर्मर्याद काव्य-रचना किसी ने नही की। यही कारण है कि आज निराला-काव्य की व्याख्याएँ विविध वैचारिक भूमिकाओ पर होती हैं। उनकी काव्यशैलियो मे अनेक वादो का सयोग और सगम देखा जाता है। आज निराला का काव्य वह प्रस्थान-बिन्दु मान लिया गया है, जहाँ से हिन्दी की अनेकविध काव्यधाराएँ अपना निर्गम स्थान देखती हैं। यद्यपि यह उनके काव्य की अपरिमेय विशालता का परिचायक है, पर साथ ही यह समीक्षण की कठिनाइयाँ भी उपस्थित करता है। निराला की मूल जीवन-दृष्टि तथा उसके क्रमिक विकास को आत्मसात् करने मे इसी कारण समीक्षको से भ्रातिया हुई हैं। निराला के काव्योत्कर्ष के मूल तत्वो को ग्रहण करने मे लोग दिग्भ्रात हो जाते हैं। सभी उन्हे अपनी-अपनी ओर खीचना चाहते हैं और यह स्वाभाविक भी है। निराला-काव्य की बहुरूपता और विविधता समीक्षको को चुनौती देती रही है, और साथ ही यह अवकाश भी देती रही है कि वे अपनी-अपनी रुचियो और विचार-सरणियो को प्रमुखता देकर उनके काव्य का अकन और आकलन करें। यद्यपि यह निराला-काव्य के पक्ष मे एक प्रशस्य उपलब्धि है, पर उनका समाहित मूल्याकन करने मे एक दुरतिगम्य बाधा भी है।

अन्तिम प्रश्न यह है कि साहित्यिक और भावात्मक उत्कर्ष की दृष्टि से निराला के पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य मे किस प्रकार का सम्बन्ध है ? यह साहित्यिक तुलना हिन्दी के पडितो और विद्वानों के समीक्षण का विषय है। मेरे जैसे तरुण लेखक और विद्यार्थी इस विषय मे अधिकारपूर्वक कुछ भी नही कह सकते, परन्तु निराला-काव्य मे एक अध्येता के नाते हम यह कह सकते हैं कि विद्वानों को चाहे जो रचनायें अपेक्षाकृत अधिक श्रेष्ठ और साहित्यिक गुणसम्पन्न प्रतीत हो, हमारी सामान्य बुद्धि मे निराला की भावनाधारा क्रमश अधिक गम्भीर और लोकोन्मुख होती गई है और कतिपय विशेषपूर्ण स्थलो को छोडकर उनका परवर्ती काव्य अधिक सरल, सहज और भाव-सकुल हो सका है।

परिशिष्ट—१

अनामिका (तृतीय संस्करण) सं० २०१५

पूर्ववर्ती काव्य

व्यंग्यमूलक कविताएं: पूर्ववर्ती काव्य

दान (१५-४-३५) पृ० २२

मित्र के प्रति (७-७-३५) पृ०

सच है (७-१०-३५) पृ० ४४

वनबेला (११-७-३७) पृ० ८३

हिन्दी के सुमनो के प्रति पत्र (६-८-३७), पृ० ११४

उक्ति (७-८-३७), पृ० ११६

ठूठ (१६-६-३७), पृ० १३६

प्रगतिशील कविताएं

तोडती पत्थर (४-४-३७), पृ० ७६

गीत

आवेदन-शृंगारिक (१०-४-३७), पृ०७८

विनय-विनयगीत (३-७-३७), पृ० ८१

उत्साह-ऋतुगीत (६-७-३७), पृ० ८२

स्फुट कविताएं

सरोजस्मृति-करुणात्मक (६-१०-३५), पृ० ११७

प्रेयसी-शृंगारिक लम्बी कविता (१६-१०-३५), पृ० १

राम की शक्तिपूजा-वर्णनात्मक आख्यानक काव्य (२३-१०-३६)

सेवा प्रारम्भ-लम्बी कविता (७-१२-३७), पृ० १७०

परवर्ती काव्य

यथार्थोन्मुख चित्रण

खुला आसमान ६-१-३८), पृ० १३८

मरण दृश्य-व्यथावादी गीत (५-१-३८) पृ० १३५

मुक्ति-सास्कृतिक गीत (६-१-३८), पृ० १३७

प्रगतिशील कविताएं

वे किसान की नई बहू और छवि की आखें (प्रगतिशील शृगारी गीत) (१७-८-३८), पृ० १६२ तथा (१-३-३८), पृ० १४६

उक्ति (१६-५-३८) पृ० १६०

सहज (१२-८-३८) पृ० १६१

गीत

प्राप्ति-शृगारिक (१-२-३८) पृ० १४७

अपराजिता-शृगारी नारी छवि का गीत (२-२-१६३८,) पृ० १४३

वीणावादिनी-प्रार्थनापरक (२३-२-३८), पृ० ३३

वसत की परी के प्रति-शृगारिक (२६-२-३८) पृ० १४४

नर्गिस-प्रकृतिवादी (२-५-३८), पृ० १८६

नासमझी-शृगारिक (१५-५-३८), पृ० १८६

मेरी छवि ला दो-शृगारिक रहस्यवादी गीत (१७-८-३८) पृ० १६३

वारिदवदना-सौन्दर्यपरक शृगार (१७-८-३८,) पृ० १६४

परिशिष्ट—२

अणिमा (भूमिका १–८–४२)

व्यंग्यमूलक कविताएं

(२७) मत हैं जो प्राण, १९४२
(२६) नया अंधेरा, १९४३
(३५) गहन है यह अंध (सामाजिक व्यंग विनय गीत), १९४२
(४५) चूंकि यहां दाना है, १९४२

यथार्थोन्मुख चित्रण

(३३) यह है बाजार—१९४२, यथार्थशैली मे व्यंगात्मक
(३६) घेर लिया जीवों-यथार्थशैली की चतुर्दशपदी, १९४२
(४०) नाम था प्रभात—१९४३ यथार्थवादी शैली
(४२) सड़क के किनारे दूकान है, १९४३
(४६) जलाशय के किनारे-यथार्थवादी, १९४३

प्रगतिशील कविताएं

(९) तुम्हे चाहता वह भी सुन्दर—१९४०, प्रगतिशील

प्रयोगवादी कविताएं

(१२) अज्ञता—१९४१
(१३) तुम और मैं १९४०

गीत

(१) नूपुर के सुर मद रह-शृंगारिक गीत १९४१
(२) बादल छाये—ऋतुगीत, १९४१
(३) जन-जन के जीवन के सुन्दर—प्रार्थनापरक गीत—१९३९
(४) उन चरणों मे—प्रार्थनापरक, १९३९
(५) सुन्दर है, सुन्दर—शात रस का गीत १९३९
(६) दलित जन पर करो करुणा—भक्तिपरक, १९३९
(७) भाव जो छलके पदो पर-प्रार्थना गीत, १९३९
(८) धूलि मे तुम मुझे भर दो-प्रार्थनापरक गीत, १९४०
(१०) मैं बैठा था पथ पर-विनय गीत, १९४०
(११) मैं अकेला-शात रस का गीत, आत्मनिवेदनात्मक, १९४०
(२४) तुम आये—रहस्यवादी-विनय-गीत, १९४२
(२५) स्नेह निर्झर बह गया-व्यथा-गीत, १९४२
(२६) द्रुमदल-शोभी फुल्ल शृंगारिक, १९४२
(२८, मरण को जिसने वरा है—रहस्यवादी, १९४२
(३०) तुम-अनुवाद-भक्तिपरक, १९४३
(३१) स्नेह-मन तुम्हारे नयन बसे, शृंगारिक गीत १९४३
(३२) जननि मोहमयी-आत्मपरक, १९४२
(३४) तुम्हीं हो शक्ति विनय गीत, १९४२

(३७) भारत ही जीवन-राष्ट्रीयगीत, १९४२
(४३) निशा का यह स्पर्श शीतल-प्राकृतिक, १९४३
(४४) तुम चले ही गये प्रियतम-विरहगीत, १९४३

स्फुट कविताएँ
(१४) सन्त कवि रविदास के प्रति प्रशस्तिमूलक, १९४२
(१५) श्रद्धाजलि–आचार्य शुक्ल के प्रति, प्रशस्तिमूलक, १९४१
(१६) आदरणीय प्रसाद जी के प्रति प्रशस्तिमूलक, १९४०
(१७) भगवान बुद्ध के प्रति–प्रशस्तिमूलक, १९४०
(१८) सहस्राब्दि–सास्कृतिक स्फुट रचना—१९४२
(१९) उद्बोधन–सास्कृतिक स्फुट रचना, १९४१
(२०) अ०भा०म०स० की सभानेत्री श्रीमती विजयलक्ष्मी पडित के प्रति–प्रशस्तिमूलक १९४२
(२१) माननीया श्रीमती विजयलक्ष्मी पडित के प्रति-प्रशस्तिमूलक, १९४२
(२२) माननीया श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित के प्रति बगला-चतुर्दश-पदी का अर्थ-प्रशस्तिमूलक
(२६) श्रीमती महादेवी वर्मा के प्रति-प्रशस्तिमूलक, १९४३
(३८) स्वामी प्रेमानन्द जी.महाराज-सास्कृतिक आख्यान १९४३

परिशिष्ट–३

बेला (प्रथमावृत्ति) जनवरी, १९४६

भक्ति-प्रार्थना-विनय की कविताएँ
(२) रूप की धारा के उस पार–(विनय)
(५) कैसे गाते हो (प्रार्थना)
(७) नाथ, तुमने गहा (विनय)
(१०) आये पलक पर (विनय)
(३७) सबसे तुम छूटे (आध्यात्मिक प्रार्थनापरक)
(४२) चलते पथ (आध्यात्मिक भावना का भक्ति गीत)
(४३) शाति चाहूँ मैं–(भक्तिगीत)
(६४) जग के, जय के (विनय)
(६५) प्रतिजन के— ,,
(७०) आये नत वदन— विनय
(७९) वही राह देखता (प्रार्थना)

आत्मपरक
(२६) जीवन-प्रदीप चेतन–(आत्म–निवेदनात्मक)
(३४) मन में आये सचित–(आत्म-निवेदन)
(४८) छला गया, किरणों का–(आत्म निवेदनात्मक)
(५३) मुसीबत मे कटे (आत्म निवेदन)

ऋतु और प्राकृतिक
(१) शुभ्र आनन्द–प्रकृति मूलक

(४) स्वर के सुमेद-प्रकृति मूलक
(८) तिना मगन ,,
(११) सुन्द हास में-प्रकृति वर्णन
(१४) उठकर छवि से-प्राकृतिक सौन्दर्य वर्णन
(१५) हँसी के तार के-वसंत वर्णन
(१६) हँसी के भूने-वसंत वर्णन
(२२) छाये आकाश में-प्राकृतिक
(३३) जिसको तुमने चाहा-प्राकृतिक
(४४) आरे, गंगा के किनारे यथार्थो-न्मुख प्राकृतिक गीत
(६३) राजे दिनकर-प्राकृतिक
(७३) लू के झोंकों- ,,
(८१) साहस कभी न छोड़ा-प्राकृतिक
(९१) पग आंगन पर-प्राकृतिक
(९३) खुल गया दिन- ,,
(९५) कैसी यह हवा- ,,

शृंगारिक

(३) आँखें वे देखी हैं
(९) बातें चली सारी रात
(१९) उनके बाग-सौन्दर्य मूलक शृंगारिक
(२१) निगाह तुम्हारी थी
(२३) स्नेह की रागिनी बजी
(२५) किरणें कैसी-प्रकृति की भूमिका पर शृंगारिक गीत
(६७) तुमसे (मिले) मेरे प्राण

दार्शनिक-सांस्कृतिक-आध्यात्मिक

(६) बीन की झकार-दार्शनिक
(१८) अशब्द हो गई वीणा-दार्शनिक
(२४) अपने को दूसरा-दार्शनिक
(२७) कहाँ की मित्रता-दार्शनिक
(२८) नये विचारो के-दार्शनिक
(२९) प्रभु के नयनो से-दार्शनिक
(३०) आये हो आस के-दार्शनिक
(३१) फूल मे घुन लिया-दार्शनिक
(३२) बन्दीगृह वरण किया- ,,
(४०) मृत्यु है जहाँ ,,
(४१) मया दुःख- ,,
(६६) साधना-आसन- ,,
(६९) ऐंठ की तिरछी- ,,
(७१) अति गुप्त-आध्यात्मिक
(७८) मिट्टी की माया-दार्शनिक
(८५) माया की गोद-दार्शनिक
(८७) मन हमारा ,,
(९२) उन्हें न देखूँगा-आध्यात्मिक
(९४) अहरह तुम्हारे-दार्शनिक

प्रगतिशील-प्रयोगशील

(१२) माथ न होना-प्रयोगशील
(१७) दाड़ी के थे-प्रयोगशील
(३५) बाहर मैं कर दिया-प्रयोगशील
(४६) वेश रूखे-प्रगतिशील
(५१) वह चलने से तेरे-प्रयोगशील
(५४) गिराया है जमी- ,,
(५५) नही देखे हैं-प्रयोगशील
(५८) आख के आँसू ,,
(५९) भेद कुल खुल-प्रगतिशील
(६२) जल्द जल्द पैर- ,,
(७५) बदली जो-प्रयोगशील
(७६) दोनो लताएँ- ,,
(७७) सकोच को विस्तार- ,,
(८०) बिना अमर-प्रगतिशील सामाजिक गीत
(८२) किसकी तलाश मे-प्रयोगशील
(८३) सारे दाँवपेज-प्रयोगशील
(८४) अगर समस्त-पदो प्रयोगशील
(८६) तुम हो गतिवान-प्रयोगशील

स्फुट

(१३) फूलो के कुल काटे-सामाजिक
(२०) तुम्हें देखा-प्रेमगीत

(३६) आगे-आगे मे—आत्मपरक
(३८) काले-काले बादल—आत्मपरक
(३९) टूटी चाह—शोकगीत
(४५) भीख मांगना—सामाजिक
(४७) तू कभी न थे—सामाजिक उद्-बोधन गीत
(४९) विनोद प्रण भरे—उपदेशात्मक
(५०) चली हैं आगे—सामाजिक
(५२) किनारा पर—सामाजिक
(५६) पढ़े थे—उद्बोधन गीत
(५७) अगर तू डर-उपदेशात्मक
(६०) राह पर बढ़े—उपदे०
(६१) विजयी तुम्हारे-उद्बो०
(६८) अन्तस्तल में-सामाजिक
(७२) सहज बात-सामाजिक
(७४) आग में आग—सामा०
(८६) यह जो है यह-सामाजिक उद्-बोधन गीत
(८८) समर करो-उपदेशात्मक
(९०) रहे युगधार-सामाजिक

परिशिष्ट—४

नये पत्ते-प्रथमावृत्ति मार्च १९४६

व्यंगमूलक कविताएं

हास्यविनोद की कविताएं

यथार्थोन्मुख चित्रण

यथार्थवादी शैली की हास्य रचना

गीत

स्फुट कविताएं

(२६) कैलाश में शरत्-अनिकाल्प-निक, पृ० ६१

(२७) खून की होली जो खेली-उर्दू फारसी की गजल शैली।

परिशिष्ट–५

अर्चना (प्रथम संस्करण), २६–८–५० की स्वयोक्ति

भक्ति-प्रार्थना-विनय की कविताएं

(१) भव-अर्णव की (प्रार्थना) १२-१-५०, पृ० १

(३) भज भिखारी-भक्ति, (प्रार्थना,) १२-१-५०, पृ० ३

(४) समझा जीवन (प्राकृ०) १२-१-५०, पृ० ४

(५) पडिक्त पडिक्त (प्रा०) १३-१-५०, पृ० ५

(६) दुरित दूर करो (प्राकृ०) १३-१-५०, पृ० ६

(७) भवसागर से (प्राकृ०) १३-१-५०, पृ० ७

(८) रमण मन के (प्राकृ०) १४-१-५०, पृ० ८

(१३) छाह न छोड़ो–(प्राकृतिक) १६-१-५०, पृ० १३

(१५) सोईं अँखिया-(भक्ति) १७-१-५०, पृ० १५

(१६) तिमिरदारण (प्रा०) १७-१-५०, पृ० १६

(२१) दो सदा सत्सग मुझको (भक्ति), १८-१-५०, पृ० २१

(२२) चग चढ़ी थी हमारी (भक्ति) १८-१-५०, पृ० २२

(२५) रग भरी किस अग भरी हो? (शृगा० भक्ति०) १६-१-५०, पृ० २४

(२६) पार ससार के (प्राकृ०) १६-१-५०, पृ० २६

(२७) प्रथम द्वन्द्व (प्राकृ०) २०-१-५०, पृ० २७

(२८) पैर उठे, (प्राकृ०) २०-१-५०, पृ० २८

(३५) प्यास लगी, (प्राकृ०) २२-१-५०, पृ० ३५

(३८) गिरते जीवन को (प्रा०) २३-१-५०, पृ० ३८

(४२) वेदना बनी (प्राकृ०) २४-१-५०, पृ० ४२

(४४) हरि का मन से (भक्ति) २४-१-५०, पृ० ४४

(४६) तन मन (प्राकृ०) २५-१-५०, पृ० ४६

(४८) मानव का मन (प्राकृ०) २५-१-५०, पृ० ४८

(४९) तुम ही हुये (प्राकृतिक), २३-१-५०, पृ० ४९

(५२) नवजीवन की वीन (प्राकृतिक) २४-१-५०, पृ० ५२

(५३) पाप तुम्हारे पाँव (प्राकृतिक) २५-१-५०, पृ० ५३

(६०) सहज सहज कर दो (प्राकृतिक) ६-२-५०, पृ० ६०

(६३) हार तुमसे बनी (प्राकृतिक) ७-२-५०, पृ० ६३

(६६) कौन गुमान करो (प्राकृतिक) ७-२-५०, पृ० ६६
(७२) तरणि तार दो (प्राकृतिक) १०-२-५०, पृ० ७२
(७४) हँसो अधर (प्राकृतिक) १०-२-५०, पृ० ७४
(७८) भजन कर हरि के चरण (प्राकृ०) ११-२-५०, पृ० ७८
(८१) जननि, मोह की रजनी (प्राकृ०) १२-२-५०, पृ० ८१
(८२) उनसे ससार (प्रा०) १२-२-५०, पृ० ८२
(८३) मधुर स्वर तुमने बुलाया (प्रा०) १२-२-५०, पृ० ८३
(८८) तु दिगम्बर (भक्ति) १३-२-५० पृ० ८८
(९५) पतित हुआ हू (भक्ति) १६-२-५०, पृ० ९५
(९६) पतित पावनी गगे (भक्तिपरक) १६-२-५०, पृ० ९६
(९७) चरण गहते थे (भक्ति) १७-२-५०, पृ० ९७
(९८) विपद-भय-निवारण (भक्ति), १७-२-५० पृ० ९८
(९९) श्याम-श्यामा के (भक्ति) १७-२-५०, पृ० ९९
(१००) वाम के छबि-धाम (भक्ति), १७-२-५०, पृ० १००
(१०१) हे जननि, तुम तपश्चरिता, (प्राकृ०), १७-२-५०, पृ० १०१
(१०७) तुम्हारी छाह है (प्राकृतिक) ५०, पृ० १०७
(१०८) माँ अपने आलोक (प्राकृतिक), ५०, पृ० १०८
—४४ गीत

आत्मपरक

(११) शिशिर की शर्वरी, १५-१-५०, पृ० ११
(१४) साथी मग डगमग, १६- -५०, पृ० १४
(१९) दीप जलता रहा, १७-१-५०, पृ० १९
(३७) बाधो न नाव इस ठाँव, बन्धु २३-१-५०, पृ० ३७
(४०) निविड़ विपिन, पथ अराल, १-५०, पृ० ४०
(४३) आज बचाते हो २४-१-५०, २३-पृ० ४३
(५१) घन-तन से आवृत धरणी है, २४-१-५०, पृ० ५१
(५४) क्यो मुझको तुम, २५-१-५०, पृ० ५४
(५७) तुमने स्वर के, ६-२-५०पृ० ५७,
(५९) गीत गाने दो मुझे, ६-२-५० पृ० ५९
(६१) वासना-समासीना, ६-२-५०, पृ० ६१
(६२) ये दुख के दिन ६-२-५०, पृ० ६२
(६७) छोड दो, न छेडो ७-२-५०, पृ० ६७
(६९) तार तार निकल, १०-२-५०, पृ० ६९
(७१) हार गई मैं, १०-२-५०, पृ० ७१
(७३) गीत गाये हैं मधुर, १०-२-५०, पृ० ७३
(७५) कठिन यह ससार, ०-२-५०, पृ० ७५
(७९) अनमिल-अनमिल, ११-२-५०, पृ० ७९

(८५) फँसी हुई हार तेरी, १३-२-५०, पृ० ८५
(८६) कौन फिर तुमको, १४-२-५०, पृ० ८६
(९०) हरिण नयन हरि ने छीने हैं, १४-२-५०, पृ० ९०
(९१) हुये पार द्वार-द्वार, १४-२-५०, पृ० ९१
(९३) कनक कसौटी पर कढ़ आया १४-२-५०, पृ० ९३
(९४) साध पुरी, फिर छुरी १४-२-५०, पृ० ९४
—२४ गीत

ऋतु और प्राकृतिक गीत
(३१) अलि की गूंज (प्राकृ०), २१-१-५०, पृ० ३१
(३२) आज प्रथम गाई (प्राकृतिक) २१-१-५०, पृ० ३२
(३३) फूटे हैं आमों के (प्राकृतिक)
(३४) खेलूंगी कभी न होली, ऋतुगीत २२-१-५०, पृ० ३४
(५०) नव तन कनक-किरण, प्राकृ०, २४-१-५०, पृ० ५०
(५६) वन-वन के झरे पात, प्राकृ०, २५-१-५०, पृ० ५६
(६४) अट नहीं रही है (प्राकृ०) ७-२-५०, पृ० ६४
(६५) कुंज कुंज कोयल ('') ६-२-५०, पृ० ६५
(७०) लघु तटिनी ('') १०-२ ५०, पृ० ७०
(७७) क्या सुनाया गीत, कोयल (प्राकृ०) ११-२-५०, पृ० ७७
(८६) तुम आये, कनका चले छाये (प्राकृ०) २३-२-५०, पृ० ८६
(१०२) मुक्तादल जल बरसो (प्राकृ०) १४-८-५०, पृ० १०२
(१०४) वीन वारण के (बादलगीत) १४-८-५०, पृ० १०४
(१११) तपी आतप से (प्राकृ०) -५०, पृ० १११
(११२) मन मधुवन, आली (प्राकृ०) -४६, पृ० ११२
—१४ गीत

शृंगारिक गीत
(२) तन की, मन की, १२-१-५०, पृ० २
(१७) तुम जो सुघेर, १७-१-५०, पृ० १७
(२०) आँख लगाई, १९-१-५०, पृ० २०
(२३) नयन नहाये, १८-१-५० पृ० २३
(२६) और न अब भरमाओ, शृंगा० प्रार्थनापरक, २०-१-५०, पृ० २६
(३०) दे न गये बचने की, २१-१-५०, पृ० ३०
(३६) केशर की, कलि की पिचकारी, २२-१-५०, पृ० ३६
(४१) सुरतरु वर शाखा, २३-१-५०, पृ० ४१
(५५) तुम से जो मिले नयन, २५-१-५०, पृ० ५५
(६८) प्रिय के हाथ लगाये जागी, ७-२-५०, पृ० ६८
(१०६) किरणों की परियां (५०) पृ० १०६
(११०) चली निशि में तुम (५०), पृ० ११०
—१२ गीत

दार्शनिक-सांस्कृ०-आध्यात्मिक गीत
(९) बन जाय भले (दार्श०) १४-१-५०, पृ० ९
(१०) लगी लगन (दार्श०) १४-१-५०, पृ० १०

(२५) सरल तार
(आध्या० दार्श० सा०)
१६-१-५०, पृ० २५
(८७) खोले अमलिन (दार्श०),
१३-२-५०, पृ० ८७
—४ गीत

प्रगतिशील-प्रयोगशील

(१२) आशा-आशा (प्रगतिशील)
१५-१-५०, पृ० १२
(१८) जिनकी नही मानी (प्रयोगशील),
१७-१-५०, पृ० १८
(४५) खुल कर गिरती है (प्रयोगशील),
२४-१-५०, पृ० ४५
(५८) लिया-दिया तुमसे (प्रयोगशील),
६-२-५०, पृ० ५८
(७६) नील जलधि-जल (प्रयोगशील),
११-२-५०, पृ० ७६
(८४) गवना न करो (प्रयोगशील),
१२-२-५०, पृ० ८४
(६२) पथ पर वे मौत न मर (प्रगति०),
१४-२-५०, पृ० ६२
(१०६) तपन से घन (प्रयोग०)
१५-८-५०, पृ १०६
—८ गीत

स्फुट

(३६) धीरे-धीरे निराशावादी, (आत्मपरक, भक्तिपरक) २३-१-५०, पृ० ३६
(४७) वे कह जो गये (विरह),
२५-१-५०, पृ० ४७
(८०) मूदे नयन (रहस्यवादी गीत),
१२-१-५०, पृ० ८०
(१०३) गगन-गगन है गान तुम्हारा
(रहस्यगीत) १४-८-५०,
पृ० १०६
(१०५) घन आये घनश्याम न आये
(विरह गीत) १४-८-५०,
पृ० १०५
—५ गीत

परिशिष्ट ६

आराधना—प्रथम सस्करण सं २०११

भक्ति-प्रार्थना-विनय गीत

(१) पद्मा के पद को (प्रा०) २४-८-५२
(पृ० १)
(५) कमल-कमल (प्रार्थनापरक)
२६-८-५२, पृ० ५
(८) रग-रग से यह गागर (प्रा०)
२६ ८-५२ (पृ० ८)
(६) छेड दे तार तू पुनर्वार (प्रा०)
२-६८-५२, पृ० ६
(१२) कृष्ण-कृष्ण राम-राम (भक्ति)
१३-६-५२, पृ० १२
(१४) वामरूप, हरो काम (भक्ति)
१३-६-५२, पृ० १४
(२०) राम के हुए तो बने काम (भक्ति)
१८-६-५२, पृ० २०
(२१) विपदा हरण हार (प्रा०)
१८-६-५२, पृ० २१
(२४) मेरी सेवा ग्रहण करो हे ! (प्रा०)
१६-६-५२, पृ० २४
(२६) हिम के आतप (प्राकृ०)
१४-१२-५२

(२८) दुख हर दे, जल शीतल, १४-११-५२
(२९) सुख का दिन डूबे (प्रा०) १४-११-५२, पृ० २९
(३३) हे मानस के सकाल (प्रा०) १५-११-५२, पृ० ३३
(३५) सत्य पाया जहाँ (भक्ति) १५-११-५२, पृ० ३५
(३६) बाधो रस के निर्झर (प्रा०) १५-११-५२, पृ० ३६
(३८) पालो तुम सकल-शकल (प्राकृ०) १६-११-५२, पृ० ३८
(४०) जावक-जय (प्रकृति के आधार पर प्रार्थना गीत) १६-११-५२, पृ० ४०
(४१) पल-प्रकाश को (प्रा०) १७-११-५२, पृ० ४१
(४४) मानव के तन केतन फहरे (प्राकृ०) १७-११-५२, पृ० ४४
(४६) मन का समाहार (प्राकृ०) १७ ११-५२ (पृ० ४६)
(४७) हँसो मेरे नयन (प्राकृ०) १७-११-४६, पृ० ४७
(४८) अशरण शरण राम (प्राकृ०) १८-११-५२, पृ० ४८
(५०) तुम से लाग लगी (प्राकृ०) २६-११-५२, पृ० ५०
(५१) हरि भजा करो (प्राकृ०) २८-११-५१, पृ० ५१
(५३) कालस्रोत मे (प्राकृ०) ७-१२-५२, पृ० ५३
(५४) ज्योति प्रात (ईश्वर परक) ७-१२-५२, पृ० ५४
(५५) नाचो हे, रुद्रताल (प्राकृतिक) ७-१२-५२, पृ० ५५
(६०) वही चरण शरण बने (प्राकृतिक) ७-१२-५२, पृ० ६०
(६१) लो रूप, लो नाम (प्राकृतिक) ८-१२-५२, पृ० ६१
(६७) जय अजेय, अप्रमेय (प्राकृतिक) ९-१२-५२, पृ० ६७
(६८) रहते दिन दीन, (प्राकृतिक) ९-१२-५२, पृ० ६८
(६९) तिमिर हरण तरणितरण (प्राकृ०) १५-१२-५२, पृ० ६९
(७१) सजी क्या तन, (प्राकृतिक) १५-१२-५२, पृ० ७१
(८१) आँखे जहाँ प्रेमिका, (भक्तिमूलक) १८-१२-५२, पृ० ८१
(८२) मन न मिले, (भक्ति) १८-१२-५२, पृ० ८२
(८७) ज्ञान की तेरी, (भक्ति) अक्टूम्बर ४६, पृ० ८७
(८८) जीवन के मधु, (भक्ति) जनवरी ५०, पृ० ८८
(९०) गत शत पथ पर, (प्राकृतिक) २३-१-५०, पृ० ९०
(९१) अभय शख बजा, (प्राकृतिक) ७-१२-५२, पृ० ९१
(९२) दे सवाल, काल, देश (प्राकृतिक) सन् ५१, पृ० ९२
—३६ गीत

आत्मपरक गीत

(२) दुख के सुख जियो २५-८-५२, पृ० २
(६) मरा हूँ हजार मरण २६-८-५२, पृ० ६

(१०) आज मन पावन हुआ २६-८-५२, पृ० १०
(११) सुख के दिन भी याद तुम्हारी, ७-९-५२, पृ० ११
(१५) हार गया १३-९-५२, पृ० १५
(१६) द्वार पर तुम्हारे १५-९-५२, पृ० १६
(१७) नील नील पड गए प्राण वे, १५-९-५२, पृ० १७
(१८) छोटा है तो जी छोटा कर, १५-९-५२, पृ० १८
(१९) साँस के माझ के (प्रयोगवादी शैली का आत्मपरक गीत) १८-९-५२, पृ० १९
(२२) दुखता रहता १९-९-५२, पृ० २२
(२७) नही रहते प्राणो में प्राण १४-११-५२, पृ० २७
(३१) सूने हैं साझ आज १५-११-५२, पृ० ३१
(३२) (जब) हाय समाई है, १५-११-५२, पृ० ३२
(३७) मेरा फुल न कुम्हला पाये १६-११-५२, पृ० ३७
(४३) बात न की तो क्या बन १७-११-५२, पृ० ४३
(५६) नहीं घर-घर मेह अब तक ७-१२-५२, पृ० ५६
(५७) सीधी राह मुझे चलने दो ७-१२-५२, पृ० ५७
(६२) भग्न तन, रुग्ण मन ८-१२-५२, पृ० ६२
(६५) भवन, भुवन हो गया ९-१२-५२, पृ० ६५
(८३) क्षीण भी छाह तुमने छीनी २६-१२-५२, पृ० ८३
(८९) हारता है मेरा मन १-३-५०, पृ० ८९
(९५) सभी तुम्हारे जीते, हारे ११-११-५१, पृ० ९५
—२२ गीत

ऋतु और प्राकृतिक गीत

(३) धाये धाराधर धावत है (प्रा०) २५-८-५२, पृ० ३
(२३) ओस पडी शरद आई (ऋतु) १९-९-५२, पृ० २३
(४५) नील नयन, नीलपलक (प्राकृ०) १७-१२-५२, पृ० ४५
(५८) कुंजों की रात प्रभात हुई (प्रा०) ८-१२-५२, पृ० ५८
(५९) चल समीर (प्रा०) ८-१२-५२ पृ० ५९
(६३) वन-उपवन खिल (प्रा०) ८-१२-५२, पृ० ६३
(६४) रंगे जग के फलक (प्रा०) ९-१२-५२, पृ० ६४
(६६) छोटी तरणी (प्रा०) ९-१२-५२, पृ० ६६
(९४) गोरे अधर मुस्काई, मार्च-५१ पृ० ९४
(९६) यह गाढ़ तम (प्रा०), पृ० ९६

शृंगारिक गीत

(२५) जब तू रचना (शृंगारिक रहस्य-वादी) १४-११-५२, पृ० २५
(७०) बासुरी जो बजी १५-१२-५२, पृ० ७०
(८६) गगन वीणा बजी २५-९-४९, पृ० ८६

दार्शनिक-सांस्कृतिक आध्यात्मिक गीत

(५२) दुख भी सुख का (आध्यात्मिक आत्मपरक) ७-१२-५२, पृ० ५२

(७६) रमणी न रमणीय १६-१२-५२, पृ० ७६

(६३) निर्झर केशर के शर के हैं (दार्श०) जनवरी ५१, पृ० ६३

प्रगतिशील-प्रयोगशील

(७) अरघान की फैल (प्रयोगशील शैली) २६-८-५२, पृ० ७

(३०) छलके छलके पैमाने का (प्रयोगशील) १४-११-५२, पृ० ३०

(३६) तपं के वधन वाधो (प्रयोगशील) १६-११-५२, पृ० ३६

(७२) ऊँट, बैल का साथ (प्रयोगशील शैली-प्रगतिशील विषय) १५-१२-५२, पृ० ७२

(७३) मानव जहाँ बैल-घोडा है (प्रगतिशील), १६-१२-५२, पृ० ७३

(७५) महकी साडी (प्रयोग०) १६-१२-५२, पृ० ७५

(७६) जैसे जोबन (प्रयोग०) १६-१२ ५२, पृ० ७६

(७७) धान कूटता है (प्रयोग०) १६-१२-५२, पृ० ७७

(८०) खिरनी के पेड के तले (प्रयोग०) १७-१२-५२, पृ० ८०

(४८) रग गये सावले (प्रयो०) २४-२-५३, पृ० ४

—१० गीत

स्फुट

(४) आई कल जैसी पल (रहस्य गीत) २५-८-५२, पृ० ४

(१३) उर्ध्व चन्द्र, अधर चद्र (रहस्य०) १३-६-५२, पृ० ६३

(३४) मार हाथ भव-वारिध (आत्म-सकल्प) १५-११-५२, पृ० ३४

(४२) पार-पार वार जो है (रहस्यवादी) १७-११-५२, पृ० ४२

(४६) जी कर जो प्राण न मर सके (व्यग्यात्मक) २६-११-५२, पृ० ४६

(७४) खेत जोतकर (यथार्थो०) १६-१२-५२, पृ० ७४

(७८) भरी तन की भरन (यथार्थवादी चित्रण) १६-१२ ५२, पृ० ७८

(८५) आँख अधर रग (यथार्थोन्मुख शैली का गीत)

—८ गीत

परिशिष्ट—७

गीतगुंज—द्वितीय परिवर्धित सस्करण, सवत २०१६

भक्ति-प्रार्थना-विनय गीत

(५) दाप तुम्हारा : गरज उठे सौ-सौ—प्रार्थना, ८-१-५४, पृ० २७

(१२) जिधर देखिये, श्याम विराजे (भक्ति) १५-८-५४, पृ० ३४

(२२) स्वर मे द्यायानट भर दो (प्रार्थ०) ५-३-५५, पृ० ४४

(३१) मधुर-मधुर, मृत्यु मधुर, (प्राकृ०) २०-८-५६, पृ० ५३
(३४) समझे, मनोहारि वरण जो हो सके (प्राकृतिक) ३१-१-५७, पृ० ५६
—५ गीत

आत्मपरक गीत

(१३) बादल रे, जो तड़पे, १७-८-५४, पृ० ३५
(१७) जी मे न लगी जो विकल प्यास २१-८-५४, पृ० ३६
—२ गीत

ऋतु और प्राकृतिक गीत

(१) वरद हुई शारदा जी हमारी (ऋतु) ५-२-५४ पृ० २३
(२) फेर दी आँख जो आया (प्राकृ०) ५-२-५४, पृ० २४
(३) बौरे आम कि भौंरे बोले (ऋतु) २६-२-५४, पृ० २५
(४) कूची तुम्हारी फिरी कानन मे (प्राकृ०) २६-२-५४ पृ० २६
(७) कमरख की आँखें भर आई (प्राकृतिक) १-६ ४६ पृ० २६
(१०) श्याम गगन नव-घन मडलाये (प्राकृतिक) १५-८-५४, पृ० ३२
(११) बढ़-बढ़ कर बहती पुरवाई (प्राकृतिक) १५-८-५४, पृ० ३३
(१४) आओ-आओ वारिद वन्दन (ऋतु) १७-८-५४, पृ० ३६
(१८) पड़ी चमेली की माला कल (प्राकृतिक) २४-१०-५४, पृ० ४०
(२१) धिक मतस्सब, मान (प्राकृ०) २१-७-५५, पृ० ४३
(२३) फिर नभ घन लहराये (प्राकृ०) २१-७-५५, पृ० ४५
(२४) खेल सिखी अखियाँ (प्राकृ०) २१-७-५५, पृ० ४६
(२५) फिर उपवन में खिली चमेली (प्राकृतिक) ५-१०-५५, पृ० ४७
(२६) शुभ्र शरत् आई अंबर पर (ऋतु) ८-११-५५, पृ० ४८
(२७) मालती खिली कृष्ण मेघ की (प्राकृतिक) २६-७-५६, पृ० ४३
(२८) भर गया जुही के गंध पवन (प्राकृतिक) २६-७-५६, पृ० ५०
(२६) प्यासे तुमसे भर कर हरसे (ऋतु) ३०-७-५६, पृ० ५१
(३०) सरसि सलिल कहता खिल, (प्राकृ०) ३-८-५६, पृ० ५२
(३३) शरत् की शुभ्र गंध फैली, (ऋतु) २६-११-५६, पृ० ५५
—२० गीत

शृंगारिक गीत

(८) पारस, मदन हिलोर न दे तन १२-८-५३, पृ० ३०
(६) प्राण तुम पावन, २-८-५४, पृ० ३१

(१५) गगन मेघ छाये (प्रा०)
१७-८-५४, पृ० ३७

(१६) केश के मेचक मेघ,
२१-८-५४, पृ० ३८

(२०) नखसिख लिखे, ३०-१२-५४,
पृ० ४२

(३२) प्यार की पाती, ८-६-५६,
पृ० ५४

—६ गीत

प्रगतिशील-प्रयोगशील

(६) खुशी दिल की न लगी मेरी
(फारसी शैली का प्रयोगशील
गीत) १६-८-५३, पृ० २८

—१ गीत

स्फुट

(१६) ज्वार के रथ रुग तुम्हारा,
(रहस्यवादी गीत)
२४-११-५८, पृ० ४१

—१ गीत